ग्रंथांक....334

जैन धर्म की संस्कृति व अभी की विकृति

(गद्य-पद्यमय)

जैन पत्रिकादि में प्रकाशित लेख सहित

पुण्य-स्मरण

सिद्धचक्र महामंडल विधान व श्रुत पंचमी महोत्सव के उपलक्ष्य में
(ग.पु.कॉ. 2020)

स्वप्रेरित अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

1. श्रीमती टीना देवी-श्री मणिभद्र सेठ तस्य पुत्र-पुत्री, दक्ष-छमछम,
निवासी चितरी जिला-डूँगरपुर (राज.)

ग्रंथांक-334 संस्करण-प्रथम 2020
प्रतियाँ-500 मूल्य-हितप्राप्ति व अहित परिहार

प्राप्ति स्थान एवं सम्पर्क सूत्र

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त

(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान

द्वारा-श्री हेमन्त प्रकाश देवड़ा (महावीर)

चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,

उदयपुर (राज.)-313001/मो. 94608-78187

(2) डॉ. नारायणलाल कछारा

सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान, 55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001

फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622

E-mail:nlkachhara@yahoo.com

आचार्य श्री विमलसागर गुरुदेव की आरती

(आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव के आद्य मार्गदर्शक-उपकारी आचार्य श्री विमलसागर जी की स्व-संस्मरणात्मक आरती!)

(चालः भातुकली...(मराठी...)

-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

विमल सिन्धु सन्मार्ग दिवाकर...कनक गुरु के आद्य गुरु...
मोक्षमार्ग के पथ प्रदर्शक...प्रोत्साहक-प्रेरक गुरु...(स्थायी)...

आद्य मार्ग दर्शक उपकारी...शिक्षा-दीक्षा के सहकारी...
कनक गुरु की श्रमण दीक्षा (1981) में...बहु श्रमण/(गुरु) आशीषकारी...

कुन्थुसागर-विद्यानन्द...देशभूषण-अभिनन्दन सूरी...
वरद आशीष वात्सल्यकारी...प्रोत्साहन अतिशयकारी...विमल...(1)...

वात्सल्य रत्नाकर विमल...भरत-कुन्थु गुरु पारखी/(गुणग्राही)...
कनक शिष्य की प्रतिभा लखकर...किया सम्मान बहुत भारी...

कलिकाल समन्तभद्र/(अकलङ्क) कहा...दिया आदेश महत् भावी...
आर्ष मार्ग की रक्षा हेतु...साहित्य लेखन प्रभावकारी...विमल...(2)...

विमल गुरु के शुभाशीष से...प्रवाहमान साहित्य सृजन...
प्रायः त्रिंशत पचास (350) ग्रंथों का...अब तक हुआ है सृजन...

देश के विश्व-विद्यालयों (59) में व...विदेशी शोधार्थी जन...
'सुविज्ञ' जन शोध-बोध रत...प्राप्त कर रहे समाधान...विमल...(3)...

ऐसे थे सन्मार्ग दिवाकर...विमल सरल-सहज गुरु...
जिनकी अनुकम्पा से बने...विश्व धर्म प्रभाकर गुरु...

अध्यापक-लेखक-महाकवि...वैज्ञानिक-गणितज्ञ...
जीनियसों के जीनियस...पुरोगामी कनक श्रमण...विमल...(4)...

ग.पु. कॉ. सागवाड़ा, दि-6/2/2020, रात्रि 10.46

निस्पृही अयाचक कनकनन्दी गुरुदेव की अलौकिक उपलब्धि

-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चालः छोड़ो कल की बातें...)

त्यागा बाह्य प्रपञ्च...जो है अनात्मकारी/(आडम्बरकारी)/(पतनकारी)...
वैश्विक गुरुवर कनकनन्दी की...उपलब्धि अतिभारी...
अलौकिक/(अद्वितीय) हैं...ज्ञानी-विज्ञानी...
सारी दुनिया में हैं पुरोगामी...त्यागा...(स्थायी)...

ज्ञान-ध्यान-तप-गुण-कला में सबसे आगे...
आधुनिक वैज्ञानिक-जज आदि से आगे...
आपके ज्ञान-गुण-लक्ष्य का नहीं है सानी...
सारी पृथ्वी में जीनियस अग्रगामी...
अद्भुत महिमा के धारी हैं...नायक-सन्त-विज्ञानी...अलौकिक...(1)...

कनक गुरु हैं निस्पृह सच्चे आतमज्ञानी...
स्व-मत पर-मत तात्कालिक ज्ञान के स्वामी...
धर्म-दर्शन-विज्ञान-गणित-न्याय के ज्ञानी...
सम्विधान कानून बहुविध मनोविज्ञानी...
वाग्मी-सारस्वत-महाकवि...जन-गण मनोहारी...अलौकिक...(2)...

शुभोपयोगी-ज्ञानोपयोगी सहज वृत्ति...
ज्ञान-ध्यान-चिन्तन-मनन-स्वाध्याय तपस्वी...
सतत लेखन काव्य सृजन जग हितकारी...
ब्रह्माण्डीय शोध-बोध अति दुर्लभकारी...
जीनियसों के जीनियस...कनकनन्दी गुरुराई...अलौकिक...(3)...

श्रम समय शक्ति साधन का अपव्यय नहीं...
लक्ष्यनिष्ठ हो कर्त्तव्य पथ में अग्रगामी...
आत्मिक गुण-भाव विशुद्धि में प्रवर्द्धमान्...

उत्पादक-रचनात्मक कार्य प्रवाहमान...

श्रेष्ठतम वैश्विक उपलब्धियों में आदर्शमान्...अलौकिक...(4)...

कनक गुरु की प्रगतिशीलता रॉकेट जैसी...

भौतिकवादियों की गति बैलगाड़ी जैसी...

सत्यग्राही प्रगतिशील होने के हेतु...

कनक गुरुकुल में आओ हे जिज्ञासु भाई !...

अपूर्वार्थ-अपूर्वकरण की सन्धि दुर्लभकारी...अलौकिक...(5)...

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि-18/2/2020

कनकनन्दी गुरुदेव की अनन्त महिमा

(चालः दहलीज पर मेरे दिल की....)

सृजयित्री-कुमारी माही D/o सन्दीप जैन, कक्षा-XI

सत्य और अहिंसा के पथ पर, चलना सिखाया गुरुवर ऽऽ

सद्ज्ञान देकर हम भक्तों का, जीवन बनाया सफल ऽऽ

गुरु की ऐसी महिमा महिमा अनंत महिमा, गुरु की कृपा बनी रहे हम पर ऽऽ

अज्ञानता अभिमान यश और कीर्ति से, दूर ही रहूँ ऐसी है कामना गुरुवर ऽऽ

हो हो हो हो ऽऽऽ ओ ओ ओओ ओ ऽऽऽ ओहो हो हो..ऽऽ (स्थायी)...

सेवा नित आपकी करूँ मैं, चरणामृत पाऊँ ऽऽ

ईर्ष्या द्वेष न रखूँ मन मैं, शुद्ध भाव पा जाऊँ ऽऽ

हो ऐसे निस्पृही गुरुवर की आराधना मैं करूँ ऽऽ

तन-मन और भक्ति भावों से ज्ञानामृत पा जाऊँ ऽऽ

गुरु ने सिखलाया बताया पढ़ाया कि स्व आत्मा में ही रम जाओ

गुरु की ऐसी महिमा...

अज्ञानता अभिमान... हो हो...(1)

दुःख से भरी है यह दुनिया, कोई भी नहीं है मेरा ऽऽ

नाता नहीं पर से मेरा, जो कुछ भी है वो आत्मा ऽऽ

गुरुराज के द्वार पर सम्यक्त्व की धारा बहे कल-कल ऽऽ

सद्ज्ञान देकर हम भक्तों की जीवन बनाया सफल
गुरु की ऐसी महिमा....
अज्ञानता अभिमान... हो हो...(2)
पाप सभी गल जाएँ, निर्मल भाव धरूँ मैं ऽऽ
दुर्भावों का क्षय हो, क्षमा भावी बनूँ मैं ऽऽ
मिथ्यात्व को छोड़कर सदाचार अपनाऊँ ऽऽऽ
तन-मन और भक्ति भावों से ज्ञानामृत पा गाऊँ ऽऽऽ
गुरु ने सिखलाया बताया पढ़ाया की स्व आत्मा में ही रम जाओ ऽऽऽ
गुरु की ऐसी महिमा...
अज्ञानता अभिमान... हो हो...(3)

समता धारी कनकनन्दी गुरु की आरती

(चाल-मैं तो आरती उतारूँ)

बालकवि-कुमार वर्ण जैन

मैं तो आरती उतारूँ रे, कनकनन्दी की।
जय-जय श्री कनकनन्दी जय-जय हो।।2
गुरुवर इतने हैं ज्ञानी, समता धारी है।2
18 भाषा के गुरु ज्ञाता, 14 भाषा व्याकरण सह।2
स्वाध्याय करूँ, सेवा करूँ, भक्ति करूँ, ज्ञानी बनूँ।। (आरती उतारूँ...)
गुरुवर हमें स्वाध्याय कराते, हमें ज्ञान मिलता है।
कनकनन्दी गुरु जैसा, विश्व में कोई नहीं।
आरती करूँ, मनन करूँ, चिन्तन करूँ, ध्यानी बनूँ।। (आरती उतारूँ ...)
कनक गुरुवर जैसी आहार चर्या, कोई नहीं करता है।
जिनवाणी का अध्ययन करते, गुरु इतने ज्ञानी है।
दान करूँ, शांत रहूँ, समता धारी बनूँ।। (आरती उतारूँ...)
'वर्ण' को आपको प्रणाम निश्चित सेवा करूँ।
गुरु के पास नित्य आऊँ, ज्ञानानन्द पाऊँ रे।

भावना पवित्र करूँ, आत्म विकास करूँ।। (आरती उतारूँ...)

ग.पु. कॉलोनी 31-01-2020 रात्रि 7.00

एक बालक की उत्कृष्ट भावना

आचार्य कनकनन्दी सद्गुरु कहीं मत जाओ! आजीवन मेरे निस्पृह में निवास करो!

(चाल-ओ गुरुसा थारो...)

भावाराधक-बालकवि कुमार गर्व S/o राजेश जैन
कक्षा-सातवीं, ग.पु.कॉ. सागवाड़ा

कनकनन्दी गुरुवर गुणनिधि हैं...प्रतिपल आपका ध्यान/(सेवा) करूँ मैं...
कनकनन्दी गुरुवर निस्पृह हैं...हरक्षण आपके गुण गाऊँ मैं...(ध्रुव)...
आपके आगे-आगे सरस्वती चले...आपके पीछे-पीछे लक्ष्मी चले...
आपका श्रीसंघ अद्वितीय रेऽऽ प्रतिपल/हरक्षण...(1)...
आप हैं ज्ञानी-ध्यानी-विज्ञानी...सारी दुनिया में जीनियस गुरु...
हमें भी ज्ञानी-विज्ञानी बनाओऽऽ प्रतिपल/हरक्षण...(2)...
कनक गुरु का श्रीसंघ निराला...आडम्बर-दिखावा से दूर रहने वाला...
निस्पृहता-सरलता का आदर्श रेऽऽ प्रतिपल/हरक्षण...(3)...
मैं भी कनक गुरुजी के सम बनना चाहूँ...इसीलिए आपकी सेवा नित चाहूँ...
आपके आदर्श को नित पालूँ मैंऽऽ प्रतिपल/हरक्षण...(4)...
ग.पु. कॉलोनी में श्रीसंघ विराजो...मेरे स्व गृह में आजीवन रहो...
मेरी/(हमारी) शुभ भावना साकार होवेऽऽ प्रतिपल/हरक्षण...(5)...
कनकनन्दी श्रीसंघ को 'गर्व' का नमन...भक्त व शिष्य सबका नमन...
बालक-बालिका हम सब विनती करेऽऽ प्रतिपल/हरक्षण...(6)...

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि. 8/2/2020, रात्रि 8.10

धर्म दर्शन सेवा संस्थान

(प्रेरणास्रोत- आचार्यरत्न श्री कनकनन्दीजी गुरुदेव ससंघ)
55, रवीन्द्र नगर, उदयपुर-313003(राजस्थान)
फोन-0294-2491422, 2413565
email: nlkachhara@yahoo.com
mo. 092144-60622

दिनांक 18/02/2020

शुभाशीष व शुभकामनाएँ

-आचार्य कनकनन्दी

विश्व गुरु महान् भारत के लोकसभा अध्यक्ष
श्री ओम बिरला को सद्धर्मवृद्धि हेतु शुभाशीर्वाद!

आप सभी महान् भारत के सपूतों का परम कर्त्तव्य है कि स्व-पर-विश्व कल्याण हेतु गौरवशाली विश्व गुरु भारत के महान् सिद्धान्तों-आदर्शों को अपनाकर धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूपी पुरुषार्थ के माध्यम से पुनः भारत को महान् आदर्श-सम्वृद्ध बनाओ। इस हेतु मेरा आप सभी को महान् भारत के सपूतों को व विश्व मानवों को आह्वान पूर्ण शुभाशीष व शुभकामनाएँ!

कुछ साहित्य आप सभी के अध्ययन-मनन व प्रयोग हेतु आशीर्वाद सह प्रेषित है।

सदुपयोग की मंगल भावना सह-
श्रमण आचार्य कनकनन्दी
ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा (प्रवासरत) दि. 18/2/2020

सुखद आनन्दकारी अनुभव

(अमेरिका निवासी दम्पति आचार्य श्री से प्रभावित)

प.पू. वैश्विक दृष्टि सम्पन्न वैज्ञानिक श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी गुरुवर श्री संघ के दर्शनार्थे अमेरिका निवासी दम्पति प्रो. दीपा भट्ट व डॉ. विनोद भट्ट पधारे।

ग.पु. कॉलोनी सागवाड़ा में प्रवासरत आचार्य श्री के प्रथम दर्शन में गुरुदेव के विराट व्यक्तित्व व कृतित्व से अतिशय प्रभावित व अभिभूत हुए। दोनों की जिज्ञासा-भक्ति व आह्लाद को देखकर आचार्य श्री ने धर्म-दर्शन-विज्ञान-अध्यात्म-कानून-राजनीति-न्याय-सम्विधान आदि विषयों का साहचर्य युक्त प्रबोधन दिया। चूँकि प्रो. दीपा स्वयं क्रिमिनालाँजी की प्रोफेसर हैं, ब्रिटेन की कैम्ब्रिज व यू.के यूनिवर्सिटी की प्रोफेसर व गोल्ड मेडेलिस्ट है। हार्वर्ड यूनिवर्सिटी अमेरिका में शिक्षा प्राप्त की व अनेक देशों (प्रायः 22 देश) में भ्रमण व शोध-बोध किया है। प्रो. सीमा ने कहा हे गुरुदेव! मेरे अन्तर्राष्ट्रीय अनेक देशों के अनुभव से यह समझा कि इस पृथ्वी पर आप जैसा ज्ञान-अनुभव-आध्यात्मिक निस्पृह साधना व बहुविधायी ज्ञान-विज्ञान आदि की उपलब्धि में आप अद्वितीय अलौकिक हैं। आप जैसाा शोध-बोध-शिक्षण-अध्यापन, प्राचीन से आधुनिक ज्ञान-विज्ञान अभिप्रेरणा व प्रोत्साहन कहीं भी देखने सुनने अनुभव करने में नहीं आया। आपकी शरण में आकर बहुत शान्ति-समता-उदारता-समन्वय आदि अनेक गुणों को जानकर व अनुभव कर मैं धन्य हूँ।

अमेरिका-लन्दन ब्राह्मण संघ की प्रेसीडेण्ट प्रो. दीपा ने बताया कि अफ्रीकन नेता डॉ. नेल्सन मण्डेला के पुत्र मुझे बहिन मानते हैं जिन्होंने मुझे अपना सलाहकार बनाने का प्रस्ताव रखा है। उन्हें भी आचार्य श्री के दर्शनार्थे बुलाने हेतु बात कराएंगे व वे भी यहाँ आएंगे। डॉ. विनोद भट्ट भी मनुष्य के शारीरिक अवयवों का पुनर्निर्माण विषय पर शोधरत हैं जिससे 70 वर्ष आयु का व्यक्ति भी 40 वर्ष आयु जैसा लगे।

इस सन्दर्भ में डॉ. भट्ट ने बताया कि उनकी आगामी परियोजना में हॉस्पिटल बनाना व आचार्य श्री कनकनन्दी साहित्य कक्ष व आश्रम आदि बनाना लक्ष्य है जिसमें सद्गुरु कनकनन्दी श्री संघ की सेवा व्यवस्था आदि करने का पारमार्थिक भाव है। गुरुदेव की अलौलिक-निस्पृह-अयाचक-वीतरागी वृत्ति व महान् आध्यात्मिक लक्ष्य से अभिभूत व नतमस्तक भट्ट दम्पति को आचार्य श्रीसंघ ने अनुमोदना सह शुभाशीर्वाद प्रदान किया।

शुभभावनासह- श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

श्रमणों के विहार-निवास-वर्षायोग की कथा

(आराधना कथा कोष)

एक दिन जैनतत्त्व के परम विद्वान् सुकुमाल के मामा गणधराचार्य सुकुमाल की आयु बहुत थोड़ी रही जानकर उसके महल के पीछे के बगीचे में आकर ठहरे और चातुर्मास लग जाने से उन्होंने वही योग धारण कर लिया। यशोभद्रा को उनके आने की खबर हुई। वह जाकर उनसे कह आई कि प्रभो, जब तक आपका योग पूरा न हो तब तक आप कभी ऊँचे से स्वाध्याय या पठन-पाठन न कीजिएगा। जब उनका योग पूरा हुआ तक उन्होंने अपने योग-सम्बन्धी सब क्रियाओं के अन्त में लोकप्रज्ञप्ति का पाठ करना शुरू किया। उसमें उन्होंने अच्युतस्वर्ग के देवों को आयु, उनके शरीर की ऊँचाई आदि का खूब अच्छी तरह वर्णन किया। उसे सुनकर सुकुमाल को जातिस्मरण हो गया। पूर्व जन्म में पाये दुःखों को याद कर वह काँप उठा। वह उसी समय चुपके से महल से निकल कर मुनिराज के पास आ गया और उन्हें भक्ति से नमस्कार कर उनके पास बैठ गया। और मुनि ने उससे कहा-बेटा, अब तुम्हारी आयु सिर्फ तीन दिन की रह गई है, इसलिये अब तुम्हें इन विषय-भोगों को छोड़कर अपना आत्महित करना उचित है। ये विषय-भोग पहले कुछ अच्छे से मालूम होते हैं पर इनका अन्त बड़ा ही दुःखदायी है। जो विषय-भोगों की धुन में ही मस्त रहकर अपने हित की ओर ध्यान नहीं देते, उन्हें कुगतियों के अनन्त दुःख उठाना पड़ते हैं। तुम समझो सियाले में आग बहुत प्यारी लगती है, पर जो उसे छूएगा वह तो जलेगा ही। यही हाल इन ऊपर के स्वरूप के मन को लुभानेवाले विषयों का है। इसलिये ऋषियों ने इन्हें 'भोगा भुजंगभोगाभाः' अर्थात् सर्प के समान भयंकर कहकर उल्लेख किया है। विषयों को भोगकर आज तक कोई सुखी नहीं हुआ, तब फिर ऐसी आशा करना कि इनसे सुख, मिलेगा, नितान्त भूल है। मुनिराज का उपदेश सुनकर सुकुमाल को बड़ा वैराग्य हुआ। वह उसी समय सुख देनेवाली जिनदीक्षा लेकर मुनि हो गया। मुनि होकर सुकुमाल वन की और चल दिया।

विषयानुक्रमणिका

अ.सं.	विषय	पृ. स.
1.	आचार्य श्री विमलसागर गुरुदेव की आरती	2
2.	निस्पृही अयाचक कनकनन्दी गुरुदेव की अलौकिक उपलब्धि	3
3.	कनकनन्दी गुरुदेव की अनन्त महिमा	4
4.	समताधारी कनकनन्दी गुरु की आरती	5
5.	अमेरिका निवासी दम्पति आचार्य श्री से प्रभावित	7

जैन धर्म की संस्कृति व अभी की विकृति

1.	अशुभ < शुभ < शुद्ध भाव-पाप < पुण्य < सिद्ध (मोक्ष)	12
2.	पॉजेटिव व पॉवर थिकिंग से परे-शुभ से शुद्ध-बुद्ध आनन्द बनूँ	13
3.	लौकिक सत्य v/s परम सत्य	14
4.	परम एकीकृत सिद्धान्त- वैश्विक समानता	16
5.	स्वशुद्धात्म श्रद्धानी ही होते ज्ञानी - वैरागी	18
6.	ज्ञान वैराग्य व ध्यान हेतु - मैं ही मेरा ''ज्ञान ज्ञेय, ध्यान-ध्येय'' बनने हेतु मेरा पुरुषार्थ	20
7.	कुधर्मी v/s सुधर्मी	28
8.	अनावश्यक -आवश्यक -अपरिहार्य - अशक्य परिहार	31
9.	मेरा परमलक्ष्य-साध्य-साधना-अनन्त चेतना के प्रभु-विभु बनने हेतु	38
10.	मेरी अनेकान्त दृष्टि व स्याद्वाद कथन पद्धति	40
11.	स्वदोष दूर करने के परम उपाय	43
12.	विभाव त्याग व स्वभाव प्राप्ति हेतु	45
13.	जो नहीं किया वह कर रहा हूँ-जो किया उसका त्याग कर रहा हूँ	46
14.	स्व शाश्वत शुद्ध स्वरूप प्राप्ति ही लक्ष्य	50
15.	जिनलिंगीसाधु अभी होते तो होता अनादर उनका	54
16.	साधु के अनियत सुख विहार-निवास	62
17.	वर्तमाल काल के विपरीत प्रवृत्तियाँ	75

18.	एक सवाल खजुराहो कमेटी से	81
19.	रागद्वेषमोह वाला स्थूल पाप बिना भी महापापी	91
20.	मायाचारी का साम्राज्य तीनों लोक में	116
21.	शुद्धभाव ही धर्म अशुद्धभाव ही कुधर्म	124
22.	श्रावक व साधु-साध्वियों की विपरीत परिणति	142
23.	जैन धर्म की कुछ अतिविशेषताएँ	162
24.	इन्द्रिय-मन विजय बिना...	183
25.	त्याग > दान v/s बोली v/s निर्माल्य	190
26.	कुगृहस्थ < भद्रगृहस्थ < श्रावक	192
27.	लौकिक जनों के बाह्यधर्म निष्फल	200
28.	मुझे वह प्रभावना...आदि नहीं चाहिए!?	209
29.	जैन धर्मावलम्बियों की दिशा-दशा एवं आशा	211
30.	पराश्रित है पराधीन, स्वाश्रित है स्वाधीन	231
31.	शुभ-अशुभ आदि भावना-अनुमोदना के फल	233
32.	भाव की अनन्तशक्ति	244
33.	जग सुहितकर सब अहितहर सुगुरुवचन v/s जग अहितकर सब सुहितहर कुगुरुवचन	250

सर्वत्र ध्यान रखने योग्य

वर्तमान की जैनधर्म सम्बन्धी समस्याओं व विषमताओं के समाधान-निवारण हेतु अनेक वर्षों (2004) से अनेक लोगों के व साधु-साध्वियों के निवेदन व रिपोर्ट से भी प्रेरित होकर (1) जैनधर्म के अभी की समस्याएँ एवं समाधान (2) श्रावक-साधु धर्म (3) ध्यान (4) भाव (5) भाव-द्रव्य प्रदूषणः समस्या-समाधान (6) जैन धर्म की संस्कृति व अभी की विकृति; कृतियों की रचना हुई।

दोष, निन्दा व अप्रभावना से बचने व बचाने हेतु मेरा यह शुभ प्रयास है, न कि अन्य की निन्दा आदि हेतु। -आचार्य कनकनन्दी

अशुभ < शुभ < शुद्ध भाव
पाप < पुण्य < सिद्ध (मोक्ष)

(भावानुसार ही योग (क्रिया) व पुण्य-पाप-मोक्ष)

(चालः जय हनुमान.../क्या मिलिए.../आत्मशक्ति.../भातुकली...)

अशुभ-शुभ-शुद्धभाव को जानो, उससे युक्त योगों को भी मानो।
अशुभ-पाप तो शुभ-पुण्य को मानो, दोनों से परे शुद्ध भाव (मोक्ष) मानो।। (1)
अशुभ भाव मोह-राग-द्वेष मानो, ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा-मद को मानो।
इन्द्रियासक्ति को भी अशुभ मानो, पंचपापसप्तव्यसन अशुभ मानो।। (2)
कृष्ण-नील-कापोतलेश्या अशुभ, चतुः सज्ञा नौ नोकषाय अशुभ।
पन्द्रह प्रमाद संक्षेप से अशुभ, अशुभभाव युक्त वचन अशुभ।। (3)
अशुभ भाव परे होता शुभ भाव, व्रत समिति शील संयम शुभभाव।
दानदयासेवापूजापरोपकार शुभ, इनसे युक्त इनके वचन शुभ।। (4)
शुभ-अशुभ भी होते नव प्रकार, मन-वच-काय-कृत-कारित-अनुमत।
अतएव पुण्य-पाप भी नौ प्रकार, शुभ-अशुभभाव मुख्य प्रकार।। (5)
भाव बिन न होते शुभ-अशुभ, यथा शव के न होते शुभाशुभ।
अतः शव के न होते पुण्य-पाप, शुभाशुभ भाव युक्त पुण्यपाप होता जीव।। (6)
अशुभभावयुक्त सभी धर्म कर्म, न होते पुण्य सभी होते पाप।
वध हेतु पालना यथा पशु-पक्षी-मत्स्य, राग-द्वेष-मोह-स्वार्थ हेतु धर्म।। (7)
ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि हेतु, वैर-विरोध व वर्चस्व हेतु।
भोगोपभोग सत्ता-सम्पत्ति हेतु, जो होते धर्म वे सभी पाप हेतु।। (8)
शुभ अशुभ परे होता शुद्धभाव, निर्मल आत्मा के आध्यात्मिक भाव।
अभेदरत्नत्रयमय समताभाव, अनन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्यादि भाव।। (9)
शुद्ध भाव ही जीव का स्वभाव, यह ही परमधर्म व मोक्षस्वभाव।
इस लक्ष्य युक्त भाव होता शुभभाव, इस लक्ष्य रिक्त भाव होता कुभाव/(अशुभभाव)।। (10)
अतएव धर्म होता वस्तुस्वभाव, जो आत्मिक सुख देता है सुधर्म।
सत्य-समता-शान्तिमय सुधर्म, शुद्धबुद्धआनन्दमय 'कनक' का धर्म।। (11)

(ग.पु.कॉ., दि.7-2-2020, रात्रि-8.06)

पॉजिटिव व पॉवर थिकिंग से परे-
शुभ से शुद्ध-बुद्ध-आनन्द बनूँ

(सांसारिक अभ्युदय से परे निःश्रेयस प्राप्ति हेतु शुद्ध आध्यात्मिक भाव)

(चाल : (1) मन रे! तू काहे.../2. सायोनारा....)

-आचार्य कनकनन्दी

आत्मन्! तू शुभ से शुद्ध भाव करऽऽऽ
इससे ही होंगे तेरे सभी विकास, स्वर्ग से ले मोक्ष तकऽऽऽ (ध्रुव)

अशुभ त्याग से होगा शुभ भाव, जिससे परे होगा शुद्ध भावऽऽऽ
मिथ्यात्व-कुज्ञान-रागद्वेषादि कुभाव, इसके त्याग से करो शुभ भावऽऽऽ
शुद्ध भाव हेतु शुभ भावऽऽऽ(1)

आत्मविश्वासयुक्त आत्मज्ञानसहित, करो भौतिक से ले आध्यात्मिक कामऽऽऽ
ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा-दीन-हीन-दम्भ, संकीर्ण कट्टर वैर विरोध निन्दा त्यागऽऽऽ
इससे बढ़ेगा तीव्र शुभ भावऽऽऽ (2)

मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ शुभभाव, दयादानसेवा व परोपकारऽऽऽ
सहज सरल क्षमा मृदुता नम्रता, गुणग्रहण व दोषपरिहरणऽऽऽ
उदारसहिष्णुताशान्तिदम/(यम)ऽऽऽ(3)

मनवचनकायकृतकारितअनुमत से, विश्व से आकर्षित होगी कर्मवर्गणाऽऽऽ
वे अनन्तानन्तकर्मपरमाणुपुण्यरूप में, तेरे असंख्यआत्मप्रदेश में होंगे बन्धऽऽऽ
जिससे होगा विकास निर्बाधऽऽऽ(4)

पुण्यफल से प्राप्त अभ्युदय से, न करो अहंकार ममकार भावऽऽऽ
ख्यातिपूजालाभप्रसिद्धिवर्चस्व परे, आत्मविशुद्धि हेतु ज्ञानवैराग्यऽऽऽ
इससे बढ़ेंगे आत्मा के गुणगणऽऽऽ(5)

भौतिक वैज्ञानिक व मनोवैज्ञानिक, मोटिवेशनल थिंकर व स्पीकरऽऽऽ
इस हेतु शोध-बोध-प्रयोगरत, किन्तु पूर्ण न जानते परम सत्यऽऽऽ
''शुद्ध भाव से मोक्ष'' से तो अनभिज्ञ (6)

मोक्ष हेतु करो शुभभाव-व्यवहार, जिससे आत्मिक शक्ति होगी प्रबलऽऽऽ

इस हेतु ही करो ध्यान-अध्ययन, निस्पृह निरालम्ब निर्मलऽऽऽ
निश्चल निच्छल निर्द्वन्द्व ऽऽऽ (7)
प्रबल होगी आत्मानुभूति व शान्ति, श्रद्धा-प्रज्ञा व आत्मशक्तिऽऽऽ
अन्त में बनोगे शुद्ध-बुद्ध-परमात्मा, इससे अनभिज्ञ वैज्ञानिक थिंकर स्पीकरऽऽऽ
'कनक' बनो शुद्ध-बुद्ध-आनन्द ऽऽऽ (8)

लौकिक सत्य V/S परम सत्य

(लौकिकता परे आध्यात्मिक)

(मानवकृत या मान्यता प्राप्त सभी ''अहंकार'' ''ममकार'' पूर्ण V/S परम सत्य अकृत्रिम शाश्वत)

[मानवकृत या मान्यता प्राप्त सभी 'अहंकार 'ममकार' पूर्ण होने से परम सत्य नहीं भले लोकमान्य-कानून मान्य आदि क्यों नहीं हो']

(चाल : आत्मशक्ति....)

मानवकृत नीति नियम या मानव द्वारा मान्यता प्राप्त।
वे सभी नहीं है परमसत्य भले वे हो व्यवहार /(भौकिक) सत्य।।
परम सत्य है स्वयंभू सनातन अनन्त गुणगण युक्त।
उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त होने पर भी अन्य (पर) रूप में न होते परिवर्तित।।
जीव पुद्गल धर्म अधर्म काल आकाश में होते हैं परम सत्य।
इन्हें केवल सर्वज्ञ ही जानते जो अनन्त ज्ञान दर्श सुख वीर्य युक्त।।(1)
इनसे अतिरिक्त अन्य कोई न जानते भले वे वैज्ञानिक तक।
दार्शनिक कवि गणितज्ञ जज से ले नेता आविष्कारक।
सर्वज्ञ ही होते हैं राग द्वेष मोह काम क्रोध मद भय मुक्त।
पक्षपात व अपना-पराया परे समता शान्ति व सत्य युक्त।।(2)
इनसे अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं होते उक्त सभी गुण युक्त।
अतएव उनके द्वारा कृत या मान्यता प्राप्त न होते परम सत्य।।
स्व-स्व क्षमता व आवश्यकतानुसार जो वे निर्माण करते।

अथवा जिसे भी मान्यता देते वे सभी न परम सत्य होते।।(3)
भले वे हो ''उपचरित असद्भूत व्यवहारादि'' जो लोकमान्य।
यथा मेरे पुत्र, स्त्री, धन, समाज, राष्ट्र, जाति, भाषा, तन-मन।।
ये सभी कर्मजनित तथाहि मान्यता प्राप्त हो अन्तर्राष्ट्रीय तक।
तथापि ये नहीं परम सत्य क्योंकि हर द्रव्य स्वतंत्र-मौलिक।।(4)
तथाहि छोटा बड़ा मालिक मजदूर अपना-पराया व शत्रु-मित्र।
काला-गोरा धनी-गरीब साक्षरी-निरक्षरी से संकीर्ण पंथ-मत।।
इसे हेतु मानव जो बनाते कानून शिक्षा सभ्यता से ले नीति नियम।
संकीर्ण धार्मिक कट्टर रीति रिवाज वे सभी भी नहीं परम सत्य।।(5)
यथा जिल्ला, प्रदेश, देश, महाद्वीप मानव कृत न परम सत्य।
राजा-प्रजा, दास-प्रभु, पति-पत्नि आदि सचित्त-अचित्त परिग्रह।।
जहाँ देह अपनी नहीं तहाँ न अपना कोय।
घर सम्पत्ति पर प्रगट ये, पर है परिजन लोय।।
जल-पय जो जिय-तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहीं भेला।
तो प्रकट जुदे धन धामा क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा।।(छ.ढा.)
शुभ अशुभ करम फल जेते, भोगै जिय एक ही ते ते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वास्थ्य के है भीरी।।
किन हूँ न करौ न धरै को षट्द्रव्यमयी न हरै को।
सो लोकमाहिं बिन समता, दुःख सहै जीव नित भ्रमता।।
जो भाव मोह तैं न्यारे दृग-ज्ञान-व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबे जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारे।।
जिन-परम पैनी सुबुद्धि छैनी, डारि अन्तर भेदिया।
वरणादि अरु रागादितैं निज भाव को न्यारा किया।।
निजमाहिं निज के हेतु निजकर आपको आपै गह्यो।
गुण-गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय मँझार कछु भेद न रह्यो।।
अतएव मानव कृत या मान्यता प्राप्त में होते मानवीय दोष।

जिससे उसमें/(से) होते रागद्वेष मोह काम क्रोध मद विद्वेष।।(6)
जिस मानव में जितने अंश में होती सत्य श्रद्धा प्रज्ञा चर्या।
उतने अंश में वे होते है शुचि सम्य व सत्यनिष्ठ।।
उतने अंश में वे होते निर्दोष पूर्ण निर्दोष से बनते सर्वज्ञ।
निर्दोष बनकर सर्वज्ञ बनना है ''सूरी कनक'' का परम लक्ष्य।।(7)

ग.पु.कॉ.दि. 31.1.2020 रात्रि 9.11

Unified theory of Universe
(Thoery of everything)

जैन धर्म की परम विशेषता-विज्ञान के एकीकृत सिद्धान्त से परे!

परम एकीकृत सिद्धान्त-वैश्विक समानता

(छह द्रव्य-अनन्तजीव व उनके अनन्तानन्त गुण स्वतन्त्र व अद्वितीय)

(चालः1.भातुकली...2.क्या मिलिए...)

छह द्रव्य व अनन्त जीव उनके अनन्तानन्त गुण,
सभी हैं स्वतन्त्र सभी है मौलिक सभी हैं अद्वितीय।
सभी हैं स्वयम्भू सभी हैं शाश्वत सभी हैं स्वयम्पूर्ण,
अशुद्ध जीव-पुद्गल में उक्त गुण न होते सम्पूर्ण।। (1)...
शुद्ध अवस्था में छहों द्रव्य में उक्त गुण होते सम्पूर्ण,
अशुद्ध जीव-पुद्गलों में उक्त गुण न होते विकास/(सम्पूर्ण)
किन्तु होते हैं अशुद्ध व अविकसित व अपूर्ण,
शुद्ध होने पर सभी गुण हो जाते विकसित पूर्ण।। (2)...
शुद्ध निश्चयनय से अशुद्ध में भी होते हैं सद्भाव,
अभिव्यक्ति के बिना होते हैं शक्ति रूप से सद्भाव।
इस दृष्टि से शुद्ध या अशुद्ध जीव होते हैं समान,
''सव्वे सुद्धा ण सुद्धणया'' रूप से सर्वज्ञदेव ज्ञानगम्य।। (3)...
इस दृष्टि से निगोद से लेकर सिद्ध पर्यन्त,

कोई न छोटा कोई न बड़ा सभी ही हैं जीव द्रव्य।
सभी में ही अनन्त गुण अस्तित्व-वस्तुत्व आदि,
सभी हैं अनादि से रहेंगे अनन्तकाल तक।। (4)...
सभी जीव भी हैं अद्वितीय एक न होता अन्य,
भले निगोद में व सिद्ध में समाहित होते अनन्त।
तथापि वे स्व द्रव्य व गुण न करते हैं त्याग
''गुणपर्ययवत् द्रव्य'' होने से वे सभी होते शाश्वत्।। (5)...
ऐसे ही छहों द्रव्य व उनके अनन्तानन्त गुण,
अनादि अनन्त से भविष्य अनन्त काल तक।
भले परस्पर प्रवेश करे व देते अन्योन्य अवकाश,
परस्पर वे मिलने पर भी न त्यागते स्व-स्वभाव।। (6)...
ऐसा ही हर द्रव्य के अनन्त गुण होते पृथक्-पृथक्,
एक गुण अन्य गुण रूप न होते भले प्रदेश एक।
''द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः'' सर्वज्ञ द्वारा उपदिष्ट,
ऐसी है परम स्वतन्त्रता मौलिकता-अद्वितीयता।। (7)...
इसी दृष्टि से सभी जीव समान-मौलिक-अद्वितीय,
चतुर्गति व चौरासी लक्ष योनि सभी कर्म सापेक्ष।
कोई न किसी का गुलाम-मालिक कोई न दीन-हीन,
कोई न अपना कोई न पराया सभी हैं एक समान।। (8)...
कर्म सापेक्ष-व्यवहार नय से गुण से होता छोटा-बड़ा,
गुणज्येष्ठ वाले गुणहीन का सहयोग करना अच्छा।
''परस्परोपग्रहो जीवानाम्'' सर्वज्ञदेव उपदिष्ट,
''जीयो और जीने दो'' व ''वसुधैवकुटुम्बकम्'' श्रेष्ठ।। (9)...
ऐसी पावन उदार दृष्टि से ही व्यवहार करणीय,
न्याय-राजनीति-सामाजिक व्यवस्था में यथायोग्य।
धर्म में तो यह परम कर्त्तव्य अन्यथा सभी व्यर्थ,
ये है वैश्विक सार्वभौम सत्य-समता-न्याय/(धर्म)।। (10)...

ये ही परम दर्शन-विज्ञान व पर्यावरण सुरक्षा,
विश्व शान्ति व विश्वमैत्री परम विकास की यात्रा।
एकीकृत सिद्धान्त से ले परिनिर्वाण के सूत्र,
''सूरी कनकनन्दी'' की ऐसी ही श्रद्धा-प्रज्ञा व ध्येय/(लक्ष्य)।। (11)

स्वशुद्धात्म श्रद्धानी ही होते ज्ञानी-वैरागी

(ज्ञानी-वैरागी की परिणति व प्राप्ति)

(स्व-शुद्धात्म श्रद्धान बिना ज्ञान-वैराग्य नहीं होता यथार्थ से)

(चालः-1. झिलमिल सितारों का... 2. जय हनुमान...)

जब तक जीव आत्म (स्वात्म) श्रद्धानी न होता,
तब तक जीव ज्ञानी-वैरागी न होता।
जब तक जीव ज्ञानी-वैरागी न होता,
तब तक जीव धार्मिक न होता।। (1)

स्वश्रद्धान बिना पर श्रद्धान भी न होता,
जिसके बिना वह तत्त्वार्थश्रद्धानी न होता।
तत्त्वार्थश्रद्धानी बिन सम्यग्ज्ञानी न होगा,
सम्यग्ज्ञान बिन सम्यग्चारित्र न होता।। (2)

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र होता है धर्म,
यही ही मोक्षमार्ग से लेकर मोक्ष।
मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्र अधर्म,
यह ही आस्रव बन्ध व संसार।। (3)

आत्मश्रद्धान से वीतरागविज्ञानी होता,
स्व-आत्मा से भिन्न अन्य को पर मानता।
जिससे अन्य की इच्छा न करता,
स्व ज्ञायक स्वभाव को ही पाना चाहता।। (4)

सांसारिक सुख-दुःख का वेदन करता,
किन्तु उसमय (तन्मय) स्वयं को नहीं मानता।

ऐसा ही सुख-दुःख के बाह्य निमित्तों को
जानता किन्तु उसमय वह नहीं बनता।। (5)

(पुद्गलकर्म विपाक का उदय मानता
उदयागत रागद्वेषादि भावों का त्यजता।।)

ऐसा ज्ञान-वैराग्य से जो रिक्त होता,
सर्व आगम ज्ञाता होने पर भी मिथ्यात्वी होता।
जिससे उसके समस्त धर्म कुधर्म होता,
तप त्याग ज्ञान ध्यानादि कुधर्म होता।। (6)

जो स्वात्मा को ही जानता व मानता,
उस में ही रत संतुष्ट व तृप्त होता।
वह ही सुधर्मी मोक्षमार्गी मोक्ष पाता,
जिससे वह आत्मा के अनन्तगुण पाता।। (7)

आत्मश्रद्धानी से होता निःशंक से निर्भय,
परभाव व विभाव की अनिच्छा से निःकांक्षित।
वस्तु स्वभाव में अग्लानि से निर्विचिकित्सत,
सभी भावों में मूढ़रहित से होता अमूढ़दृष्टि।। (8)

सभी धर्मों का उपगूहन से उपगूहनकारी,
स्व पर को सुधर्म में स्थापित से स्थितिकरणकारी
तीन परमेष्ठी त्रिरत्नवात्सल्य से वात्सल्यकारी,
विद्यारूपी रथ से धर्म मार्गभ्रमण से प्रभावनाकारी।। (9)

यह है सर्वज्ञ द्वारा उपदिष्ट मोक्षमार्ग,
रागीद्वेषी मोही से अज्ञात सत्य।
निकट भव्य ही पञ्चलब्धि से बनते सुदृष्टि,
स्व उपलब्धि प्राप्ति हेतु साधनारत 'कनकनन्दी'।। (10)

अनुभव से भी मैंने सभी सत्य ही पाया,
गृहस्थ से ले आचार्य तक में पाया।
ज्ञान-वैराग्य सच्चा व झूठा में पाया,
सर्वज्ञ कथित सत्य में मम विश्वास बढा।। (11)

ज्ञान वैराग्य व ध्यान हेतु-
मैं ही मेरा ''ज्ञान-ज्ञेय, ध्यान-ध्येय''
बनने हेतु मेरा पुरुषार्थ

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः 1.तुम्ही मेरे मन्दिर... 2.तू ही माता तू ही पिता है...
3.तुम दिल की धड़कन... 4.छिप गया कोई रे...)

तू/(मैं) ही हो/(हूँ) आत्मा तेरे/(मेरे) परमात्मा,
तेरे/(मेरे) बिन तेरे/(मेरे) कोई न भर्त्ता।
तू/(मैं) ही हो/(हूँ) कर्त्ता तेरे/(मेरे) विधाता,
तेरे/(मेरे) बिना तेरे/(मेरे) कोई न भोक्ता।। (1)

तू ही हो ज्ञाता तेरे तू ध्याता, ध्यान ध्येय ध्यानफल के भोक्ता।
तेरा तू द्रव्य तेरा तू क्षेत्र, तेरा तू काल तेरे भाव विधाता।।(2)

तेरा तू शत्रु तेरा तू मित्र, तेरा तू गुरु तेरा तू शिष्य।
तेरा तू श्रोता तेरा तू वक्ता, तेरा सम्बोधक तू सुधार कर्ता।।(3)

स्वयं को ध्याओ तू स्वयं को पाओ, स्वयं को खोजो स्वयं में विराजो।
विभाव त्यजो स्वभाव पाओ, पर को त्यागो परमात्मा पाओ (बनो)।।(4)

तन भी पर है मन भी पर है, इन्द्रियाँ पर उसके विषय पर।
रागद्वेषमोहकाम भी पर, संकल्प-विकल्प व संक्लेश पर।।(5)

पर-परिणति ही पराधीनता, स्व-परिणति होती स्वाधीनता।
यह ही तेरा है परमध्यान, तथाहि लक्ष्य व परिनिर्वाण।।(6)

इससे परे सभी परपदार्थ, उसकी चिन्ता है विभाव भाव।
परचिन्ता होती अधम से अधम, आत्मध्यान है उत्तम से उत्तम।।(7)

अतः त्यजू मैं परचिन्ता अधम, श्रमण बनकर क्यों बनूँ अधम।
स्वार्थी पराधीन सम न बनूँ अधम, श्रमण से बनना मुझे भगवान्।।(8)

इस हेतु त्याग परआश्रित काम, धनजनमाननामसम्मान।

ख्यातिपूजालाभप्रसिद्धि(वर्चस्व) होर्डिंग विज्ञापन माईक मंच।।(9)

मठ मन्दिर गिरि पंचकल्याण, आडम्बर धनआश्रित प्रवचन।

संकीर्ण कट्टर पंथमत परम्परा, दिखावा ढोंग प्रपंच विचार धारा।।(10)

मा मुज्झह मा रज्जह मा दुस्सह इट्ठणिट्ठअट्टेसु।

थिरमिच्छहि जइ चित्त विचित्तझाणप्पसिद्धिए।।(48) द्र.स.

जं किंचिवि चिंतंतो णिरीहवित्ती हवे जदा साहु।

लद्धूणय एयत्तं तदाहु तं तस्स णिच्छयंज्झाणं।।(55)

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिन्तह किं-वि जेण होइ थिरो।

अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं।।(56)

वैराग्यं तत्त्वविज्ञानं नैर्ग्रन्थ्य समचित्तता।

परीषहजयश्चेति पञ्चैते ध्यानहेतवः।।

निजमांहि निज के हेतु निजकर, आपको आपै गह्यो।

गुण-गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय मँझार कछु भेद न रह्यो।।(छ.ढा.)

जहाँ ध्यान ध्याता ध्येय को न विकल्प, वच भेद न जहाँ।

चिद्भाव कर्म चिदेश करता, चेतना किरिया तहाँ।।

अतएव चित्त पावन व स्थिर हेतु, करूँ मैं समग्रता से सदापुरूषार्थ।

अपेक्षा उपेक्षा प्रतीक्षा द्वन्द्व परे, स्वयं में ही रमना ''कनक'' का लक्ष्य।।(11)

संदर्भ-

ध्याताकी प्रशंसा

अथ निर्णीततत्त्वार्था धन्याः संविग्रमानसाः।

कीर्त्यन्ते यमिनो जन्मसंभूतसुखनिःस्पृहाः।। (1) ज्ञानार्णव

अथानन्तर जो संयमी मुनि तत्त्वार्थका (वस्तुका) यथार्थ स्वरूप जानते हैं, मनमें संवेगरूप हैं, मोक्ष तथा उसके मार्ग में अनुरागी हैं और संसारजनित सुखों में निःस्पृह (वांछारहित) हैं वे मुनि धन्य हैं। उनका कीर्तन वा प्रशंसा की जाती है।

भवभ्रमणनिर्विण्णा भावशुद्धिं समाश्रिताः।

सन्ति केचिच्च भूपृष्ठे योगिनः पुण्यचेष्टिता।। (2)

इस पृथ्वीतल पर अनेक योगीश्वर संसार के चक्र से विरक्त हैं, भावों की शुद्धतासहित हैं तथा पवित्र चेष्टावाले हैं। यहाँ कोई यह पूछे कि ''इस काल में तो ऐसे कोई साधु दीख नहीं पड़ते।'' तो इसका यह उत्तर है कि यह ग्रन्थ जिस समय रचा गया था, उस समय ऐसे अनेक योगीश्वर थे और अब भी किसी दूर क्षेत्र में हो तो क्या आश्चर्य है?

विरज्य कामभोगेषु विमुच्य वपुषि स्पृहाम्।
यस्य चित्तं स्थिरीभूतं स हि ध्याता प्रशस्यते।। (3)

जिस मुनिका चित्त कामभोगों में विरक्त होकर और शरीर में स्पृहा को छोड़कर स्थिरीभूत हुआ है, निश्चय करके उसी को ध्याता कहा है। वही प्रशंसनीय ध्याता है।

क्रोधादिभीमभोगीन्दै रागादिरजनीचरैः।
अजय्यैरपि विध्वस्तं न येषां यमजीवितम्।। (6)

जिन मुनिजनों का संयमरूपी जीवन क्रोधादि कषायरूप भयानक सर्पों से तथा अजेय रागादि निशाचरों से नष्ट नहीं हुआ।

मनः प्रीणयितुं येषां क्षमास्ता दिव्ययोषितः।
मैत्र्यादयः सतां सेव्या ब्रह्मचयेऽप्यनिन्दिते।। (7)

जिन मुनियों के अनिन्दित (प्रशंसनीय) ब्रह्मचर्य के होते हुए मनको तृप्त करने वाली प्रसिद्ध मैत्री, प्रमोद, कारुण्य, माध्यस्थ, ये चार भावनारूपी सुन्दर तथा समर्थ स्त्रियाँ हैं। अर्थात् इन भावनाओं के भावने से जिनके चित्त में कामादि विकारभाव नहीं उपजते।

तपस्तरलतीव्रार्चिःप्रचये पातितः स्मरः।
यै रागरिपुभिः सार्द्धं पतङ्गप्रतिमीकृतः।। (8)

जिन मुनियों ने तपरूपी तीव्र अग्निकी ज्वाला के समूह में रागादि शत्रुओं के साथ काम को डाल दिया और पतंग के समान भस्म कर दिया।

निःसङ्गत्वं समासाद्य ज्ञानराज्यं समीप्सितम्।
जगत्त्रयचमत्कारि चित्रभूतं विचेष्टितम्।। (9)

जिन्होंने निष्परिग्रहपन को अंगीकार करके तीन जगत् में चमत्कार करने वाले तथा आश्चर्यरूप चेष्टावाले ज्ञानरूपी राज्य की वांछा की।

अशेषसंगसंन्यासवंशाज्जितमनोद्विजाः।

विषयोद्दाममातङ्गघटासंघट्टघातकाः।। (12)

जो मुनि समस्त परिग्रह के त्याग के कारण मनरूप चंचल पक्षी को जीतने वाले हैं तथा विषयरूपी मदोन्मत्त हस्तियों के संघट्ट के (समूह के) घातक हैं।

वाक्पथातीतमाहात्म्या विश्वविद्याविशारदाः।

शरीराहारसंसारकामभोगेषु निःस्पृहाः।। (13)

जिनका वचनपथ से अगोचर माहात्म्य है, जो समस्त विद्याओं में विशारद हैं और शरीर-आहार-संसार-काम-भोगों में निःस्पृह (वांछारहित) हैं।

विशुद्धबोधपीयुषपानपुण्यीकृताशयाः।

स्थिरेतरजगज्जन्तुकरुणावारिवार्द्धयः।। (14)

जिनका चित्त निर्मल ज्ञानरूप अमृत के पान से पवित्र है और जो स्थावर त्रस भेदयुक्त जगत् के जीवों के करुणारूपी जल के समुद्र हैं।

स्वर्णाचल इवाकम्पा ज्योतिःपथ इवामलाः।

समीर इन निःसङ्गा निर्ममत्वं समाश्रिताः।। (15)

जो मेरुपर्वत के समान अचल है, आकाशवत् निर्मल हैं, पवन के समान निःसंग हैं और निर्ममता को जिन्होंने आश्रय दिया है।

हितोपदेशपर्जन्यैर्भव्यसारङ्गतर्पकाः।

निरपेक्षाः शरीरेऽपि सापेक्षाः सिद्धिसङ्गमे।। (16)

वे मुनि हितोपदेशरूप शब्दायमान मेघों से भव्य जीवरूपी चातक वा मयूरों को तृप्त करने वाले हैं तथा शरीर में निरपेक्ष हैं, तो भी मुक्ति के संगम करने में सापेक्ष हैं।

तवारोढुं प्रवृत्तस्य मुक्तेर्भवनमुन्नतम्।

सोपानराजिकाऽमीषां पदच्छाया भविष्यति।। (18)

आचार्य महाराज कहते हैं कि हे आत्मन्! मुक्तिरूपी मंदिर पर चढने की प्रवृत्ति करते हुए तुझे पूर्वोक्त प्रकार के मुनियों के चरणों की छाया ही सोपान की पंक्ति

समान होवेगी। जिनको ध्यान की सिद्धि करनी हो, उन्हें ऐसे मुनियों की सेवा करनी चाहिये।

ध्यानसिद्धिर्मता सूत्रे मुनीनामेव केवलम्।
इत्याद्यमलविख्यातगुणलीलावलम्बिनाम्।। (19)

सूत्र में (सिद्धान्त में) उपर्युक्त गुणों को आदि लेकर निर्मल प्रसिद्ध गुणों में प्रवर्त्तनरूप क्रीडा के अवलम्बन करने वाले केवल मुनियों के ही ध्यान की सिद्धि मानी है। अर्थात् मुक्ति के कारणस्वरूप ध्यान की सिद्धि अन्य के नहीं हो सकती।

पूर्वोक्त गुणों के धारक योगीन्द्र गण हमारे तथा भव्य पुरुषों के निर्वृति (सुख) रूप मोक्ष को करो। कैसे हैं, वे योगीन्द्र? निश्चलरूप किया है चित्तरूपी प्रचंड पक्षी जिन्होंने, पंचेन्द्रियरूप वन को दग्ध करने वाले हैं, ध्यान से समस्त पापों का नाश करने वाले हैं, विद्यारूप समुद्र के पारगामी हैं, क्रीडामात्र से कर्मो के मूल को उखाड़नेवाले हैं, करुणा भावरूप पुण्य से पवित्र चित्त वाले हैं और संसाररूप भयानक दैत्य को चूर्ण करने वाले हैं।

बुद्धि के बल वस्तुसमूह को लोपने वाले (नास्तिक), सत्यार्थ ज्ञान से शून्य चित्तवाले तथा अपने विषयादिक के प्रयोजन में उद्यमी ऐसे प्राणी तो घर घर में विद्यमान हैं; परन्तु आनन्दरूप अमृत के समुद्र के कणसमूह से संसाररूप ज्वर के दाह को (अग्नि को) बुझाकर मुक्तिरूपी स्त्री के मुखरूपी चन्द्रमा के विलोकन करने में जो तत्पर हैं, वे यदि हैं तो दो तीन ही होंगे।

यहाँ दो-तीन का अर्थ विरल वचन जानना, संख्या का कुछ नियम नहीं है-

जिन्होंने पूर्वावस्था में हिमालय के शिखरसमान सुंदर महलों में उत्कृष्ट उपधान हंसतुलिकादि से रची हुई शय्या में सुंदर स्त्रियों के साथ शयन किया था, वे ही समस्त संसार के विषयों के निरस्त करने वाले पुण्यशाली पुरुष अन्तरंग में ज्ञानज्योति के स्फुरण होने से पृथ्वी में तथा पर्वतों की गुफाओं में एवं शिलाओं पर अथवा वृक्ष के कोटरों में प्राप्त होकर रात्रि बिताते हैं, उन्हें धन्य है।

जिसका आत्मा में अपना प्रवर्तन है, परद्रव्य में नहीं है और बाह्यपरिग्रह के त्याग से तथा अंतरंगविज्ञानज्योति के प्रकाश होने से जिसका महामोहरूप निद्रा का उत्कर्ष नष्ट हो गया है और जिसको स्वरूप का निश्चय होने से यह जगत् शून्यवत् वा

जडवत् प्रतिभासता है, ऐसे श्रीज्ञानसमुद्र मुनि के चरणकमलकी लक्ष्मी (शोभा) तुमको मोक्षपद प्रदान करे, ऐसा आशीर्वादात्मक उपदेश है।

हे सुबुद्धि! अपने को प्रथम तो आत्मायत्त कहिये पराधीनता से छुड़ा कर स्वाधीन कर। दूसरे-इन्द्रियों के विषयों से विरक्त कर। तीसरे-तत्त्वचिन्ता में मग्र (लीन) कर। चौथे-सांसारिक व्यापार से रहित निश्चल कर। पाँचवें-अपने हित में लगा। छट्ठे-निर्वृत अर्थात् क्षोभरहित आनंद से परिपूर्ण कर। सातवें-ज्ञानारूढ़ कर। आठवें-शम यम दम तपमें अवकाश मिलें ऐसा करके फिर दिव्यबोध कहिये केवलज्ञान के अधिपतिपने को प्राप्त कर।

भावार्थ-उपर्युक्त आठ कार्यो से केवल ज्ञान की प्राप्ति होती है।

वैराग्य भावना का स्वरूप-

यद सुभरजः पाथो दृप्तेंद्रिय द्विरदांकुशम्।
कुशलकुसुमोद्यानं माद्यन्मनः कपि शृंखलं।।
विरति रमणी लीला वेश्म स्मरज्वरभेषजम्।
शिवपथरथस्तद्वैराग्यं विमृश्य भवाऽभयः (भवाऽभवः)।।

(89)सिन्दूर प्र.

हे मुने! उस वैराग्य का चिन्तन कर जिससे संसार के भय मुक्त हो जावे। यह वैराग्य अशुभ भाव पाप कर्म रूपी धूली को धोने के लिये जल के समान है। मत्त इन्द्रिय रूपी हाथी को वैराग्य रूपी (संयमरूपी) अंकुश के लगने पर वे हाथी वश में हो जाते हैं।

यह वैराग्य मदोन्मत्त मनरूपी हाथी को वश में करने के लिये अंकुश के समान है अथवा बंदर के समान चंचल मन को बाँधने के लिये साँकल के समान है। मोक्ष रूपी रति के क्रीड़ा करने का स्थान यह वैराग्य ही है अथवा देश संयम व सकल संयम रूप चारित्र एवं विरति रूप स्त्री का क्रीड़ा करने का घर है। पुनः कैसा है वैराग्यः कामदेव के मद ज्वर को नाश करने के लिये औषध के समान है। मोक्षमार्ग में चलने वालों के लिये यह वैराग्य रथ के समान है। उस वैराग्य का चिंतवन कर संसार के दुःखों से निर्भय हो आचार्य ने संसार में होने वाले भयों से मुक्त होने के लिए कहा है कि वैराग्य स्वीकार करो।

चंडानिलस्फुरितमब्दचयं दवार्चि।

वृक्षव्रजं तिमिर मंडलमर्क्कबिम्बम्।

वज्रं महीघ्रनिवहं नयते यथांतम्।

वैराग्यमेकमपि कर्म तथा समग्रम्।। (90)

जिस प्रकार प्रचण्ड वायु मेघों के समूह को उड़ाकर नष्ट कर देती है फिर दावाग्नि हरे-भरे वृक्षों को नष्ट कर देती है। सूर्य उदय होकर अंधकार के समूह का नाश कर डालता है।

जो पर्वत विशालकाय से खड़े हुए हैं उन पर्वतों के ऊपर जब बिजली पड़ जाती है तब बड़े-बड़े पर्वतों के खण्ड-खण्ड हो जाते हैं। उसी प्रकार वैराग्य की इतनी शक्ति है कि ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के समूह को नष्ट कर देता है। इसलिये वैराग्य भावना का चिंतवन करो।

नमस्या देवानां चरण वर वस्या शुभ गुरो।

रतपस्यानिः सीम क्लमपद मुपास्या गुणवतां।।

निषद्यारण्ये स्यात् करणदम विद्या च शिवदा।

विरागः क्रूरागः क्षपण निपुणोंऽतः स्फुरति चेत्।। (91)

यदि अन्तः करण में संसार, शरीर और भोगों से वैराग्य स्फुरायमान है तो उसको देवों का स्वामीपना की प्राप्ति तो होती है परन्तु मोक्ष सुख की भी प्राप्ति होती है। जब वैराग्य युक्त मानव होता है तभी गुरुओं की सेवा चाकरी करने में तत्पर होता है, तपश्चरण करने के सन्मुख होता है जिससे मोक्ष सुख मिलता है। जो गुणों में श्रेष्ठ हैं ऐसे अरिहंत सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठियों के गुणों में अनुराग और उनकी भक्ति करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह वैराग्य ही पाँचों इन्द्रियों के विषय की लम्पटता का निरोध करने में निपुण है। यदि मन में वैराग्य हो तो संसार जाल से प्राणी निकल सकता है।

कैसा है वैराग्य उस दुष्ट का नाश करने में चतुर है जिस राग ने जीवों को संसार भ्रमण जाल में फँसा रखा है जिससे कि गुरुओं का उपदेश मिलने पर भी प्राणी उस जाल से निकलने में समर्थ नहीं है।

वैराग्य के गुणों को कहते हैं-

भोगान् कृष्ण भुजंग भोग विषमान् राज्यं रजः सन्निभम्।
बन्धून् बंध निबंधनानि विषय ग्रामं विषाननोपमम्।।
भूतिं भूति सहोदरां तृणमिव स्त्रैणं विदित्वा त्यजं।
स्तेष्वा शक्तिमनविलो विलभते मुंक्ति विरक्तः पुमान्।। (92)

संसार, शरीर और पंचेन्द्रिय संबंधी विषय भोगों से जिस मानव का मन विरक्त हुआ है, वही मोक्ष को प्राप्त करता है अथवा सिद्धगति को प्राप्त करता है। क्या करता है? शब्द, रस, गंध 'स्पर्श वर्णादि जो इन्द्रिय के विषय हैं उनको काले सर्प के समान दुःख के कारण जानकर उनसे आसक्ति का त्याग करता है। राज्य वैभव के स्वामित्वपना का त्याग उसी प्रकार कर देता है जैसे मानव पैर में लगी हुई धूल को वस्त्र से झाड़ कर दूर कर देता है अथवा पानी से धोकर साफ कर देता है। वह माता-पिता, भाई, स्त्री, पुत्र, पुत्री आदि को बंधन में डालने वाले जानकर उनसे भी ममत्व छोड़ देता है। विषय सुखों को विष भोग के समान जानकर त्याग कर देता है। जिस प्रकार विष जिस भोजन में मिलाया गया है उसे कोई ग्रहण नहीं करता है उसी प्रकार पंचेन्द्रिय विषयों को विष मिश्रित जानकर त्याग देता है। वह ऋद्धियों के वैभव को जली राख के समान जानकर छोड़ देता है जो स्त्रियों के समूह को भी पुराने जीर्ण घास के समान निस्सार जानकर छोड़ देता है अथवा स्त्रियों के प्रति मूर्च्छा भाव का त्याग कर देता है वह मानव निर्विकल्प निराकुल ऐसे मोक्ष मार्ग में रत होकर मोक्ष को प्राप्त करता है।'

मेडिटेशन करेंगे तो गलतियां कम होंगी

मिशिगन यूनिवर्सिटी (अमेरिका) में मेडिटेशन पर हुए अब तक के सबसे बड़े अध्ययन के अनुसार इससे आपकी भूलने की आदत में सुधार होता है। आप कम गलतियां करते हैं। मेडिटेशन आपके मस्तिष्क में चल रही गतिविधियों को बदलने की क्षमता रखता है। 'ओपन मॉनीटरिंग मेडिटेशन' नामक इस रिसर्च के लिए 200 लोगों पर प्रयोग किया गया था। ब्रेन साइंसेज जर्नल में प्रकाशित इस रिसर्च के अनुसार ध्यान आपकी भावनाओं, विचारों, संवेदनाओं को तो केंद्रित करता

ही है, आपकी याद्दाश्त में इजाफा करता है। साफ शब्दों में कहें तो यह मस्तिष्क के उन तंतुओं की रिपेयरिंग कर देता है, जो भूलने की आदत के लिए जिम्मेदार होते हैं। रिसर्च में शामिल जेफ लिन जोकि मनोविज्ञान में डॉक्टरेट हैं, ने कहा- रोजाना कुछ समय किया जाने वाल मेडिटेशन मस्तिष्क में नए विचार, नए आइडिया लाने की क्षमता रखता है। लिन का कहना है, शोध परिणाम बताते हैं कि ध्यान लगाने के विभिन्न तरीकों में अलग-अलग तंत्रिका संबंधी प्रभाव पड़ते हैं। हमारी रिसर्च ओपन मॉनीटरिंग मेडिटेशन विषय पर जारी है, क्योंकि इस विषय पर दुनियाभर में बहुत कम शोध हुआ है। देखा जाए तो मेडिटेशन में आमतौर पर एक ही वस्तु पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, आपकी सांस का उतार-चढ़ाव बताता है कि आपके मस्तिष्क में कुछ चल रहा है। लेकिन यह ओपन मॉनीटरिंग मेडिटेशन थोड़ा अलग कंसेप्ट है- यह आपके भीतर की एक 'धुन' है और आपके शरीर में चल रही हर एक गतिविधि को वॉच करता है। आपका लक्ष्य इस दौरान साइलेंट रहता है, लेकिन आपका मन यहां-वहां की यात्रा करने में व्यस्त रहता है। लिन और उनके एमएसयू लेखकों ने 200 से अधिक लोगों को 20 मिनट की ओपन मेडिटेशन मॉनीटरिंग एक्सरसाइज कराई। इसमें ईईजी के माध्यम से इन प्रतिभागियों के मस्तिष्क की गतिविधि को मापा गया। ईईजी में मिलीसेकंड स्तर पर भी मस्तिष्क की गतिविधियां मापी जा सकती हैं, इसलिए हमें तंत्रिका गतिविधियों की सटीक व सकारात्मक रिपोर्ट मिली। टीम ने पाया कि मन और मस्तिष्क पर नियंत्रण रख किए गए मेडिटेशन के दौरान आपकी स्मरण शक्ति में वृद्धि होती है। हालांकि, यह सुधार तत्काल नहीं होता है, इसके लिए लगातार मेडिटेशन करने की जरूरत होगी। शोध टीम के सदस्य जेसन मोजर ने कहा, हमारा प्रयोग इसलिए भी सफल रहा, क्योंकि हम यह बताने में कामयाब हुए कि सिर्फ 20 मिनट का ध्यान भी याद्दाश्त की क्षमता को बढ़ा सकता है।

कुधर्मी V/s सुधर्मी

(चालः 1.आत्मशक्ति... 2.क्या मिलिए...)

भाव पाप को न जानते हैं कुज्ञानी मोही,
राग-द्वेष-मोह घृणा-तृष्णा को करते मोही,
मूल को काटकर पत्तियों को सींचते मोही,

ढोंग पाखण्ड दिखावा आडम्बर से ग्रसित मोही।। (1)
आत्मा-परमात्मा ज्ञान-अनुभव से रहित मोही,
उदार सहिष्णु सत्य समता से रहित मोही,
कट्टर संकीर्ण क्रूर गतिविधियों से सहित मोही,
तथापि घडियाल बगुला समान धार्मिक दिखाते मोही।।(2)
दया-दान-सेवा-परोपकार से रहित मोही,
करने पर भी उक्त काम उनके भाव होते शिकारी माही,
सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि-वर्चस्व हेतु करते धर्म,
यथा धन कमाने हेतु व्यपारी करते धर्म।।(3)
आत्मा की श्रद्धा-प्रज्ञा-चर्या से रहित मोही,
आत्मविशुद्धि आत्मसंयम से रहित मोही,
अन्य को प्रभावित करना या नीचा दिखाना करते मोही,
इससे स्ववर्चस्व स्वार्थसिद्ध करना चाहते मोही।।(4)
तानाशाही चोर डाकू वेश्या समान होते हैं मोही,
भले बाह्य वेश-उपदेश करते धर्म के माही,
गोमुखव्याघ्र सम होते अन्दर-बाहर से भिन्न,
शिकारी को खाते समय आँसू बहाते घडियाल सम।।(5)
इनसे परे जो होते हैं सच्चे धार्मिक,
आत्मविश्वास-ज्ञान-आचरण से युक्त,
समता शान्ति उदारता पवित्रता सहित,
स्वपरउपकार भाव-व्यवहार से युक्त।।(6)
सरल सहज क्षमा मृदुता विनय से सहित,
आत्मविशुद्धि आत्मानुशासन आत्मप्रगति सहित,
परप्रतिस्पर्द्धा अन्धानुकरण से रहित,
कुधर्मी-सुधर्मी का वर्णन किया ''कनकसूरी'' संक्षिप्त।।(7)

सुजणो वि होइ लहुओ दुज्जणसंमेलणाए दोसेण।
माला वि मोल्लगरुया होदि लहू मडयसंसिट्ठा।। (347)

दुर्जनों की गोष्ठी के दोष से सज्जन भी अपना बड़प्पन खो देता है। फूलों की कीमती माला भी मुर्दे पर डालने से अपना मूल्य खो देती है।

दुज्जणसंसग्गीए संकिज्जदि संजदो वि दोसेण।
णाणागारे दुद्धं पियंतओ बंभणो चेव।। (348)

दुर्जन के संसर्ग से लोग संयमी के भी सदोष होने की शंका करते हैं। जैसे मद्यालय में बैठकर दूध पीने वाले बाह्मण के भी मद्यपायी होने की शंका करते हैं

परदोसगहणलिच्छो परिवादरदो जणो खु उस्सुणं।
दोसत्थाणसं परिहरह परिवादरदो जणो खु उस्सूणं।
दोसत्थाणं परिहरह तेण जणजंपणोगोसं।। (349)

लोग दूसरों के दोषों को पकड़ने के इच्छुक होते हैं और परोक्ष में दूसरों के दोषों को कहने में रस लेते हैं। इसलिए जो दोषों का स्थान है उनसे अत्यन्त दूर रहो क्योंकि ऐसा न करने से लोगों को अपवाद करने का अवसर मिल जाता है।

अदिसंजदो वि दुज्जणकरएण दोसेण पाउणइ दोसं।
जह घूगकए नोसे हंसो या हओ अपावो वि।। (350)

महान् संयमी भी दुर्जन के द्वारा किए गए दोष से अनर्थ का भागी होता है। जैसे उल्लू के द्वारा किए गए दोष के लिए निर्दोष हंस भी मारा गया।

दुज्जण संसग्गीए वि भविदो सुयणमज्झयारम्मि।
ण रगदि रगदि य दुज्जणमज्झे वेरग्गमवहाय।। (351)

दुर्जनों की संगति से प्रभावित मनुष्यों को सज्जनों का सत्संग रुचिकर नहीं लगता। यह वैराग्य को त्यागकर दुर्जनों में ही रमता है। मन की पवित्रता और कर्मों की पवित्रता आदमी की संगति की पवित्रता पर निर्भर है। पवित्र हृदय वाले पुरुष की संगति उत्तम होगी और जिसकी संगति अच्छी है वो हर प्रकार का गौरव प्रदान करती है।

धर्म मनुष्यों को स्वर्ग ले जाता है और सत्पुरुषों की संगति उसको धर्माचरण में रत करती है।

सम्यक्त्व रहित जीव का लक्षण

उग्गो तिव्वो दुट्ठो दुब्भावो दुस्सुदो दुरालावो।
दुम्मदरदो विरूद्धी सो जीवो सम्मउम्मुक्को।। (43) रयण.

पद्य : उग्र तीव्र-दुष्ट-दुर्भाव-दुश्रुत, दुर्भाषण, दुर्मदरत (जीव)।
होता है सम्यक्त्व रहित जो विरोध से सहित।।

क्षुद्र स्वभावी व दुर्भावना युक्त जीव सम्यक्त्व हीन हैं

खुद्दो रुद्दो रट्ठो अणिट्ठुपिसुणा सग्गत्थि असूयो।
गायण जायण भंडण दुस्सुणसीलो दु सम्मउम्मुक्को।। (44) रयण.

पद्य - क्षुद्र, रौद्र, रूष्ट-अनिष्ठ-पैशुन्य, अहंकारी-ईर्ष्या युक्त।
गायक, याचक, कलह, युक्त, दूषण युक्त वह सम्यक्त्व मुक्त।।

जिन धर्म विनाशक जीवों के स्वभाव

वाणर गद्दह साण गय वग्घ वराह कराह।
पक्खि जलूय सहावणर जिणवरधम्म विणासु।। (45) रयण.

अन्वयार्थ :- (वाणर) बंदर (गद्दह) गर्दभ (साण) कुत्ता(गय) हाथी (वग्घ) व्याघ्र (वराह) शूकर (कराह) उंट (पक्खि) पक्षी (जलूय) जलोक (सहावणर) स्वभाव वाले मानव (जिणवरधम्म विणासु) श्रेष्ठवर जिनेन्द्र भगवान् के कहे हुए धर्म का विनाश करने वाले होते हैं।

अनावश्यक-आवश्यक-अपरिहार्य-अशक्यपरिहार

(अनावश्यक-पापकारक अनर्थभाव-वचन-काम न करूँ)
(सत्य-समता-शान्ति-आत्मविशुद्धि बाधक सभी अनर्थ)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः-आत्मशक्ति....)

अनावश्यक पापकारक न करूँ काम नवकोटि से।
यह है अनर्थदण्डविरतिव्रत, जो गृहस्थ हेतु भी करणीय।। (1)

आत्मसाधना हेतु योग्य उपकरण आहार औषधि भी ग्राह्य।
''शरीरमाध्यं खलु धर्मसाधनं'' अतएव ये दोष अपरिहार्य।।
इसके कारण मलमूत्र त्याग करना भी अपरिहार्य।
अशक्य परिहार के कारण इससे न बन्धे अधिक पापकर्म।। (2)
तथाहि विहार प्राणायाम योगासन संघसंचालन हेतु काम।
अध्ययन-अध्यापन साहित्य लेखन से ले धर्मप्रभावना काम।।
उत्सर्ग अपवाद व द्रव्यक्षेत्रकालभावानुसार करूँ साधना।
किन्तु अप्रयोजनभूत थोड़ा भी कार्य न करूँ मेरी पावन भावना।। (2)
पापोपदेश, हिंसादान, दुश्रुति, अपध्यान व प्रमादचर्या।
कन्दर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य, असमीक्ष्याधिकरण, सेव्याधिकता।।
पाप-ताप-संतापकारक कलह विसंवाद हिंसाकारक।
जय-पराजय व अन्याय-अत्याचार-अनीतिकारक।। (3)
समय साधन व शक्ति अपव्ययकारी समस्त भाव-काम।
अमर्यादित, अनुशासन विहीन, सत्य-तथ्य परिज्ञान हीन।।
स्वपर अहितकारी संकीर्ण पंथ-मत हठाग्रह व दुराग्रह।
समता शान्ति एकता नाशक व अहंकार-ममकार कारक।। (4)
अन्धानुकरण प्रतिस्पर्द्धापूर्ण ढोंग पाखण्ड व आडम्बर।
दबाव प्रलोभन भय शंका व परनिन्दा अपमानकर।।
आत्मविशुद्धि व आत्मप्रगति के बाधक समस्त भाव काम।
संकल्प-विकल्प-संक्लेशकारक लन्द फन्द व द्वन्द्व के काम।। (5)
भाव-द्रव्यप्रदूषणकारक व ख्यातिलाभपूजा सम्पादक।
लोकानुरंजक व वर्चस्वकारक सभी होते अनर्थदण्डकारक।।
''कौन क्या करता कौन क्या कहता'' से जो भाव काम होते प्रभावित।
वे सभी पररिमोट संचालित होते आत्मविराधक।। (6)
मोहीरागीकामीस्वार्थीकुज्ञानी करते नवकोटि से अनर्थकाम।
तथापि आत्मकल्याण के काम को वे मानते अनर्थकाम।।
गुणगुणी को वे गलत मानते तथाहि उनके अच्छे भाव व काम।

दानदयासेवापरोपकार व ज्ञानज्ञानी के काम को अनर्थकाम।। (7)

परोपदेशी पंडित वे बनते कुज्ञानी होकर भी रायचन्द।

मद्यपी सम स्वदोषों को न जानते/(मानते) सज्जन को वे मानते दुर्जन।।

इससे वे घोरपापबान्धकर संसार में दुःख भोगते हैं।

उनसे भी शिक्षा ग्रहणकर ''कनकसूरी'' अनर्थकाम त्यागते हैं।। (8)

(ग.पु. कॉ, दि-13-2-2020, रात्रि-8.58 व 10.56)

व्याख्यान: सुप्रीम कोर्ट के जज बोले असहमति लोकतंत्र का सेफ्टी वॉल्व

विरोध को राष्ट्र विरोधी करार देना संविधान पर चोटः जस्टिस चंद्रचूड़

अहमदाबाद। विरोध और अहसमति को लोकतंत्र के सेफ्टी वॉल्व की संज्ञा देते हुए सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश जस्टिस धनंजय वाई चंद्रचूड़ ने कहा कि असहमति या विरोध को पूरी तरह राष्ट्र विरोधी या अलोकतांत्रिक करार देना संवैधानिक मूल्यों पर चोट के समान है। गुजरात हाईकोर्ट सभागार में शनिवार को जस्टिस पीडी देसाई मेमोरियल व्याख्यान में विविध रंग, वर्ण जो भारत को बनाते हैं बहुलता से बहुलवाद विषय पर अपने संबोधन में उन्होंने कहा कि कानून के दायरे में भारत जैसे उदार लोकतंत्र में नागरिकों को अपने विचारों को रखने का पूरा अधिकार है। वर्तमान कानूनों के खिलाफ विरोध करने का भी पूरा अधिकार है। उन्होंने कहा कि विचारों को दबाने के लिए राज्य की मशीनरी का दुरुपयोग कानून विरोधी है। राज्य की ओर से विरोध को दबाने के लिए मशीनरी का उपयोग करना डर पैदा होता है।

विविधता से है देश की अवधारणा

इस देश की अवधारणा इसकी विविधताओं से है न कि इसे खत्म करने से है। राष्ट्रीय एकता मूल्यों को परिभाषित करती है। यही संविधान का आधार है। संविधान मौलिक अधिकारों की गारंटी ही नही बल्कि इसका उपयोग करने की भी आजादी देता है। - **जस्टिस चंद्रचूड़**

'भारत के विचार पर कोई नहीं कर अपना दावा'

जस्टिस चंद्रचूड़ ने कहा कि विरोध को दबाना और लोगों के दिमाग में भय

पैदा करना व्यक्तिगत विचारों की आजादी और संवैधानिक मूल्यों से पूरी तरह उलट है। यह संवाद आधारित समाज पर एक चोट के समान है जो सभी लोगों को समान आदर प्रदान करता है। उन्होंने कहा कि भारत का विचार सिर्फ एक धर्म, नस्ल, भाषा या विश्वास नहीं बल्कि विविध धर्मों , नस्लों, भाषाओं से बना है। कोई भी व्यक्ति या संस्थान भारत के विचार पर अपना दावा नहीं कर सकता। उन्होंने कहा कि संविधान के निर्माताओं ने हिन्दू भारत या मुस्लिम भारत के मत को खारिज किया। सिर्फ भारतीय गणतंत्र को ही स्वीकार किया। इन संविधान निर्माताओं ने नई पीढ़ी पर यह विश्वास रखा कि वे एक-दूसरे को बांधेंगे जो भारत को परिभाषित करता है। भारतीय का मतलब एकरूपता को खत्म करना है और विविधता का जश्न मनाता है। उन्होंने विभिन्न तरह की भारतीय पहचान को रूसी गुड़िया मेत्रोइश्का की उपमा देते हुए कहा कि यही हमें भारतीय बनाता है। भारत की समझ बहुलवाद की है। एकरूपता भारतीयपन की विशेषता नहीं है। हमारी अलग-अलग विचार हमारी कमजोरी नहीं बल्कि यह हमें मजबूती प्रदान करता है। इस कार्यक्रम में सुप्रीम कोर्ट के जज जस्टिस एमआर शाह, गुजरात हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस विक्रम नाथ, सुप्रीम कोर्ट के पूर्व जज, महाधिवक्ता कमल त्रिवेदी, सुप्रीम कोर्ट बार एसोसिएशन के अध्यक्ष दुष्यंत दवे, वरिष्ठ अधिवक्ता सुरेश एन शेलत व निरूपम नानावटी तथा अन्य अधिवक्ता व विधि के विद्यार्थी मौजूद थे।

चीफ जस्टिस बोले-गडकरी आकर बताएं कि इलेक्ट्रिक वाहनों से प्रदूषण कैसे घटेगा

(पराली तो मौसमी समस्या)

प्रदूषण पर सुप्रीम कोर्ट ने बुधवार का फिर चिंता जताई। सरकारी अधिकारियों के जवाब से असंतुष्ट कोर्ट ने पहली बार केंद्रीय परिवहन मंत्री नितिन गडकरी से कोर्ट में आकर इलेक्ट्रिक वाहनों पर योजना की जानकारी देने का आग्रह किया। हालांकि, इसका कोई लिखित आदेश जारी नहीं किया गया है। चीफ जस्टिस एसए बोबडे की अध्यक्षता वाली बेंच ने सार्वजनिक परिवहन में इलेक्ट्रिक वाहनों के इस्तेमाल से जुड़ी जनहित याचिका पर सुनवाई के दौरान यह मौखिक आग्रह किया

। इससे पहले, केन्द्र के जवाब से असंतुष्ट चीफ जस्टिस ने कहा कि पटाखे और पराली तो मौसमी समस्या है। असली चिंता तो वाहनों से होने वाला प्रदूषण है। इसे कैसे कम कर सकते है? सार्वजनिक परिवहन में इलेक्ट्रिक वाहनों के इस्तेमाल की नीति अधिकारी ढंग से नहीं समझा नहीं पा रहे। हम चाहते हैं कि गडकरी कोर्ट में आकर समझाएं कि इस मामले में उनके क्या नए विचार हैं।

घातक कोरोना संक्रमण का दूसरा पहलूः तुरंत मुनाफे के लालच, दोषपूर्ण जीवन शैली

-डॉ. ए.के. अरुण

लेखक जन स्वास्थ्य वैज्ञानिक एवं राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त चिकित्सक हैं।

2003 में एक घातक वायरस संक्रमण सार्स (सिवियर एक्यूट रेस्पिरेट्री सिन्ड्रोम) की वजह से लगभग 8000 लोग संक्रमित थे और दुनिया भर में कोई 800 लोगों की मौत हो गई थी। उस वर्ष चीन की विकार दर 0.5 से 1 प्रतिशत कम हो गई थी। वैश्विक अर्थव्यवस्था को 40 बिलियन डालर (2.8 लाख करोड़ रुपए) का नुकसान हुआ था।

दुनिया भर में कोरोना वायरस रोग (सीओवीआइडी-19) से लगभग एक लाख से भी ज्यादा लोगों के संक्रमित होने और 3000 से ज्यादा लोगों की मौत के बाद अब विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्लूएचओं) भी मान रहा है कि यह संक्रमण और तेजी से फैल सकता है और लाखों नए लोग इसकी चपेट में आ सकते हैं। अब तक 70 से ज्यादा देशों में फैले कोरोना वायरस संक्रमण को लेकर भारत में चिंता इसलिए अधिक है कि भारत में आबादी घनत्व (455 व्यक्ति प्रति किलोमीटर) चीन के मुकाबले (36 व्यक्ति प्रति किलोमीटर) 13 गुना है। इस वायरस से पीड़ित व्यक्ति महज कुछ फीट की दूरी पर खड़े 2 से तीन व्यक्ति को प्रभावित करता है। इसके अलावा भारत में लोग आदतन भी एहतियात नहीं बरतते।

अंतराष्ट्रीय पत्रिका 'द इकोनोमिस्ट' का दावा है कि कोरोना वायरस संक्रमण को काबू करने के रास्ते लगभग बंद हो चुके हैं। इस वायरस के संक्रमण को 'सख्ती' से रोकना चीन में तो सम्भव हो गया लेकिन भारत सहित अन्य देशों में

मुश्किल यह है कि अफवाहों में जीने वाले लोगों/समूहों की भरमार है और उनमें सही-गलत को पहचानने की क्षमता भी कम है। हालांकि स्वास्थ्य विशेषज्ञ मानते हैं कि इस वायरस में मृत्यु दर (3.4%) अन्य वायरस में मृत्युदर से कम है। इसलिए संक्रमण के बाद लोगों के जीवित रहने की संभावना तुलनात्मक रूप से ज्यादा है। स्वाइन फ्लू की मृत्युदर 0.02%, इबोला की 40.40%, मर्स की 34.4% तथा सार्स की 9.6% है।

इस नई आपदा को दुनिया भर में आर्थिक विकास का सबसे बड़ा रोड़ा माना जा रहा है। 'ऑक्सफोर्ड इकोनोमिक्स' ने आशंका जताई है कि यह वैश्विक विकास दर को 1.3 प्रतिशत कम कर सकती है। 'डन एण्ड ब्रैडस्ट्रीट' ने भी अपनी ताजा रिपोर्ट में कहा है कि चीन से शुरू कोरोना वायरस के संक्रमण का असर जून महीने तक बने रहने की संभावना है और इसकी वजह से वैश्विक आर्थिक वृद्धि दर एक फीसदी नीचे आ सकती है। चीन में कोरोना के घातक असर के भारत की अर्थव्यवस्था पर गंभीर परिणाम के संकेत हैं। हालांकि भारत सरकार दावे कर रही है कि नकारात्मक असर नहीं होगा।

भारत के दवा बाजार पर गंभीर असर की आशंका यहां की फार्मा कंपनियों को सताने लगी है। वर्ष 2018-19 में भारत का एक्टिव फार्मास्यूटिकल इंग्रीडिएंट्स (एपीआई) और बल्क ड्रग का आयात 25,552 करोड़ रुपए था जिसमें चीन का हिस्सा 68 प्रतिशत था। विगत तीन वर्षों में फार्मा सेक्टर में भारत की चीन पर निर्भरता 23 प्रतिशत बढ़ी हैं। एपीआई पर लो-प्रॉफिट मार्जिन के कारण भारतीय फार्मा इंडस्ट्री एपीआई का आयात कर यहां दवा बनाकर दूसरे देशों को निर्यात करती है। अमरीकी बाजार को ड्रग्स आपूर्ति करने वाली 12 प्रतिशत निर्माण इकाइयां भारत में हैं और इनका एपीआई स्टॉक अब समाप्त हो गया है। दवा उद्योग के साथ-साथ यही स्थिति लगभग सभी अन्य कंपनियों की भी है।

कोरोना वायरस से वैश्विक अर्थव्यवस्था और चीन कैसे प्रभावित हैं, इसे समझने के लिए 2003 को याद करें। 2003 में एक घातक वायरस संक्रमण सार्स (सिवियर एक्यूट रेस्पिरेट्री सिन्ड्रोम) की वजह से लगभग 8000 लोग संक्रमित थे और दुनिया भर में कोई 800 लोगों की मौत हो गई थी। उस वर्ष चीन की विकास

दर 0.5 से 1 प्रतिशत कम हो गई थी। वैश्विक अर्थव्यवस्था को 40 बिलियन डालर (2.8 लाख करोड़ रुपए) का नुकसान हुआ था। सार्स संक्रमण के समय चीन दुनिया की छठी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था थी और वैश्विक जीडीपी में योगदान केवल 4.2% था। अब चीन दूसरी बड़ी अर्थव्यवस्था है और ग्लोबल जीडीपी में उसका योगदान 16.3% है।

कोरोना वायरस संक्रमण दरअसल कथित आधुनिक सभ्यता में झटपट विकास और तुरंत मुनाफे के लालच में अपनाए जा रहे दोषपूर्ण जीवन शैली का रोग है। यह रोग प्रकृति के खिलाफ महज तात्कालिक सुविधा और बढ़ती मांसाहार की प्रकृति का भी प्रतीक है। यह एक चेतावनी भी है कि पशु-पक्षियों को महज खाद्य समझने का परिणाम यह भी हो सकता है जिसमें आदमी क्या, सभ्यताएं नष्ट हो सकती है। याद कीजिए जब 1996 में पागल गाय रोग (मेड काउ डिजीज) फैला था, तब ब्रिटेन में लाखों गायों को मार कर जला दिया था। लेकिन लोगों ने अपनी प्रवृत्ति नहीं बदली।

कोरोना वायरस के बहाने एक बात जो महत्त्वपूर्ण है वह यह कि एंटीबायोटिक दवाओं के आविष्कार और विस्तार के बावजूद रोगाणुओं का बढ़ना जारी हैं। जैसे-जैसे चिकित्सा विज्ञान नए एंटीबायोटिक्स बनाता गया, बैक्टीरिया और वायरस उसके विरुद्ध अपनी प्रतिरोध शक्ति भी बढ़ाते गए। जवाब में दवा कंपनियों ने भी नई दवाओं पर शोध में निवेश बढ़ा दिया। अब वायरस और दवा बनाने वाली कंपनियों में मानों होड़ चल रही है।

अमरीकी सूक्ष्म जीव विज्ञान अकादमी मान रही है कि वायरस क्रमिक विकास की प्राकृतिक ताकत से लैस हैं और वे हमेशा बिना रुके बदलते-बढ़ते रहेंगे और दवाओं पर भारी पड़ेंगे। इसलिए इन वायरसों से निबटने का कुछ नया तरीका सोचना होगा। ये वायरस हौआ बन गए हैं। विज्ञापनों में इन्हें विध्वंसक दुश्मन के रूप में दिखाया जाता है ताकि इन्हें मारने वाले मंहगें रसायन बेचे जा सकें। कोरोना वायरस के मामले में भी यही हो रहा है। आज वायरस के घातक असर से लोगों को बचाने के लिए नए चिंतन की जरूरत है। क्या हम वायरस, उसके प्रभाव, रोग और उपचार की विधि का स्वस्थ चिंतन और चर्चा के लिए तैयार हैं?

मेरा परमलक्ष्य-साध्य-साधना-(स्वतन्त्र चेतना) अनन्त चेतना के प्रभु-विभु बनने हेतु

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : 1. भातुकली... 2. आत्मशक्ति... 3. क्या मिलिए...)

स्वतन्त्र मेरी चेतना समतासह परमसत्ययुक्त।
इससे ही होगा मेरा विकास अन्त्योदय से सर्वोदय तक।।
मेरी चेतना है अक्षय अनन्त आकाश से भी महत्त।
अनन्त ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय अमूर्तिक सम्पूर्ण।।(1)
यहाँ तक मेरा विकास चाहूँ अतः मैं किसी से न बन्धूँ।
निर्बाध निर्भय निर्मल निर्द्वन्द्व हो विकास करूँ।।
रागद्वेष मोह काम क्रोध मद मत्सर ईर्ष्या घृणा तृष्णा से।
न बन्धूँ मैं ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि व वर्चस्व से।।(2)
संकीर्ण क्रूर कठोर अनुदार जाति मत पंथ राष्ट्र से।
शिक्षा राजनीति कानून विज्ञान सभ्यता संस्कृति भाषा से।।
पूजापाठ रीतिरिवाज व रूढ़ि परम्परा इतिहास से।
नहीं बन्धूँ मैं तर्क-वितर्क व वाद-विवाद के द्वन्द्व में।।(3)
हठाग्रह पूर्वाग्रह व अहंकार-ममकार तेरा-मेरा सीमा में।
देखादेखी सुनासुनी कथा वार्ता सीमा में।।
अन्धानुकरण व प्रतिस्पर्द्धा दिखावा ढोंग पाखण्ड में।
नहीं बन्धूँ मैं काला-गोरा धनी-गरीब की सीमा में।।(4)
अनन्तचेतना के विकास हेतु सम्पूर्ण सीमा को मैं लाघूँ।
संकल्प-विकल्प-संक्लेश परे शुद्ध बुद्ध आनन्द मैं बनूँ।।
इस हेतु किसी की भी न करूँ प्रतीक्षा तथाहि अपेक्षा उपेक्षा।
निर्द्वन्द्व निष्काम वीतरागी व आत्मानुशासी जीजिविषा।।(5)
आत्मनिर्मलता से आत्मशक्ति वृद्धि से बनूँ प्रभु विभु।
यह ही मेरा आत्मस्वभाव स्वस्वभाव ही चाहे ''कनकसाहु''।।

इसके अतिरिक्त अन्य सभी परभाव-विभाव होने से।

उससे मैं न बन पाऊँगा अनन्तचेतना के प्रभु-विभु।।(6)

ग.पु.कॉ., दि. 16-2-2020, रात्रि

(यह कविता डॉ. विनोद भट्ट व दीपा पण्ड्या भट्ट, (केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी, यू. के यूनिवर्सिटी क्रिमिनालॉजी की प्रोफेसर) अमेरिका प्रवासी के कारण बनी।)

82 साल की उम्र में सबसे ज्यादा खुश होता है इंसान

वाशिंगटन। लोग 82 वर्ष की आयु में सबसे ज्यादा खुश होते हैं और जैसे-जैसे हम बड़े होते हैं तो मस्तिष्क के कुछ हिस्सों में भी सुधार होता है। यह बात जाने-माने न्यूरोसाइंटिस्ट डेनियल लेविटिन के अध्ययन में सामने आई है। दरअसल, डेनियल ने उम्र बढ़ने के बारे में मिथकों को दूर करने के लिए अध्ययन किया। उन्होंने अपनी नई किताब 'द चेंजिंग माइंड : ए न्यूरोसाइंटिस्ट्स गाइड टू एजिंग वेल' के लिए अपने शोध में पाया कि बुढ़ापे में सामान्य मानसिक संतुष्टि और समस्या को हल करने के मामले में जीवन बेहतर होता जाता है। डेनियल के अनुसार, जरूरी नहीं कि आपकी स्मृति बढ़ती उम्र के कारण क्षीण हुई हो। यह भी एक बड़ा मिथक है कि अधिक आयु के लोग उदास होते हैं, क्योंकि 72 देशों में खुशी की औसत चाल चरम आयु 82 वर्ष है और मुझे लगता है कि हम उसे 10 साल और आगे बढ़ा सकते हैं, अगर हम चिकित्सा प्रोद्यौगिकी के साथ-साथ बढ़ती उम्र का मुकाबला कर सकें।

दलाई लामा के बारे में डेनियल ने कहा 'वह सबसे खुश लोगों में से एक हैं और बहुत हंसते हैं। वह 84 वर्ष के हैं और उन्होंने 125 किताबें प्रकाशित की हैं।'

नामी बुजुर्गों से जाना उनकी खुशी का राज

शोध के लिए क्लिंट ईस्टवुड (89), दलाई लामा (84), और स्टीवी वंडर (69) सहित बहुत से बुजुर्गों से संपर्क किया गया। क्लिंट ईस्टवुड ने उन्हें बुढ़ापे में खुशी का राज बताते हुए कहा था कि वह बूढ़े इंसान वाली सोच को भीतर जाने नहीं देते।

नए लोगों से मिलना होता है फायदेमंद

शोध से पता चला कि धार्मिक लोग बिना किसी विश्वास के खुश थे। नए लोगों से मिलना मस्तिष्क के सभी क्षेत्रों को व्यस्त रखता हैं, क्योंकि किसी अजनबी से मिलने पर आप चेहरे के भाव, बोलचाल और आवाज के जरिए प्रतिक्रिया करते हैं।

बुढ़ापे में खुशी के लिए डेनियल के गुर

- अपना काम मत छोड़िए, ताकि आपका मस्तिष्क सक्रिय बना रहे।
- स्वाभाविक रूप से बहुत खुशी महसूस करने के व्यायाम करें।
- खाने में संयम और विविधता संतुलित जीवन शैली की कुंजी है।
- सामाजिक दायरे को रोमांचक बनाने के लिए नए लोगों से मिलें।

सुविचार

इकट्ठा किया धन पाले हुए दुश्मन के समान होता है, क्योंकि इसे छोड़ना बहुत मुश्किल होता है।

मेरी अनेकान्त दृष्टि व स्याद्वाद कथन पद्धति

(शुद्धदृष्टि से सभी जीव शुद्ध समानः मेरी शुद्ध आध्यात्मिक दृष्टि से)

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल : 1. आत्मशक्ति...2. क्या मिलिए...)

मैं जानता हूँ अनेकान्त से यथायोग्य स्वयोग्यता (ज्ञान) से।
मैं कहता हूँ स्याद्वाद से यथायोग्य स्वक्षमता से।।
अभी तक न जाना हूँ परमसत्य को जानने हेतु करूँ पुरुषार्थ।
स्वयं को ही न जाना हूँ सम्पूर्ण रूप से स्व को जानना परमलक्ष्य।।(1)
जो देखता हूँ पढ़ता सुनता हूँ सभी में ही मेरी ये ही प्रवृत्ति।
धर्म दर्शन विज्ञान गणित कानून संविधान से लेकर राजनीति।
पाप-पापी व पुण्य-पुण्यात्मा धर्म-धार्मिक से ले हर जीव।
सूक्ष्म-निगोदिया जीव से लेकर चौरासीलक्षयोनि से ले सिद्ध जीव।।(2)
जन्म-मरण व सुख-दुख हानि-लाभ जय-पराजय तक।

जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल शुद्धाशुद्ध मूर्तिक-अमूर्तिक।।
यथा सोना चाँदी मिट्टी पत्थर अणु वर्गणा से सम्पूर्ण भौतिक विश्व।
पर्यायदृष्टि से भले पृथक्-पृथक् किन्तु द्रव्यदृष्टि से पुद्गल।।(3)
पर्यायदृष्टि से सूक्ष्मनिगोदिया से सिद्ध जीव होते शुद्ध-अशुद्ध।
कर्म सापेक्ष व कर्मनिरपेक्ष से पृथक-पृथक द्रव्यदृष्टि से सभी जीवद्रव्य।।
संकीर्णदृष्टि (व्यवहार) से होते स्वजन-परजन शत्रु-मित्र भाई बन्धुकुटुम्ब।
स्वधर्मी-विधर्मी अधर्मी-कुधर्मी उदारदृष्टि से वसुधैवकुटुम्ब।।(4)
तथाहि मैं स्वयं को भी जानता हूँ व कहता हूँ उक्तदृष्टि से/(उक्तविधि से)।
व्यवहार से मैं अभी अशुद्ध हूँ किन्तु शुद्ध हूँ मैं शुद्धदृष्टि से।।
अशुद्ध होने से छद्मस्थ अवस्था में भले मुझमें अल्पज्ञान।
किन्तु मुझमें शक्तिरूप से विद्यमान अक्षय अनन्त ज्ञान।।(5)
तथाहि मेरे अनन्त सुखवीर्यादि अनन्तगुण मुझमें ही सुप्त-गुप्त।
आत्मविशुद्धि से सम्पूर्ण गुणों को प्रगट करना मेरा परमलक्ष्य।।
मेरे समान ही मैं हर जीव को श्रद्धा-प्रज्ञा से जानूँ व मानूँ।
अतएव मैं व सभी जीव शुद्ध बने ऐसा ही ''कनक'' सदा भाऊँ।।(6)
मेरी उक्त श्रद्धा-प्रज्ञा-भावना को न जानते/(मानते) अधिकतर जीव।
तथापि मैं उक्त भावना भाऊँ मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ भाव।।
इससे मुझे शक्ति मिलती व श्रद्धा-प्रज्ञा-भावना बढ़ती।
अतएव अन्य की अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा बिना स्व की करूँ उन्नति।।(7)

(ग.पु.का., दि.-18-2-2020, रात्रि-9.24 (केशलोंच)

आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस या इंसानी दिमाग, किसका पलड़ा भारी रहेगा?

डीप लर्निंग में सामान्य ज्ञान में कटौती या गलतियों को पकड़ने की तकनीक नहीं है, जिससे चलते कई बार हास्यास्पद गलतियां हो जाती हैं। मशीनी मस्तिष्क एक बनावटी विद्वान है, जो मानवीय क्षमताओं से दूर है। नतीजा इससे बेतुके परिणाम हो सकते हैं, बल्कि गलत उदाहरणों

से इसे मूर्ख भी बना सकता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ब्रिटेन के ब्लेसली पार्क में एनिग्मा कोड क्रेक करने और आधुनिक कंप्यूटर की कल्पना करने वाले ब्रिटिश गणितज्ञ एलन ट्यूरिंग ने पहली बार कृत्रिम बुद्धि की कल्पना की थी। अब जबकि कृत्रिम बुद्धिमत्ता हमारे जीवन का महत्वपूर्ण अंग बनने जा रही है, जो सवाल उठता है कि क्या सवाल-जवाब देने भर से मशीनी मस्तिष्क, इंसान से बेहतर साबित होगा। उस वक्त ट्यूरिंग की थ्योरी को ज्यादा अहमियत नहीं मिली, आज उनके परीक्षण और सिद्धांत काफी उपयोगी साबित हो सकते हैं, लेकिन उन्हें सही ढंग से अभी भी नहीं समझा गया। ट्यूरिंग ने कृत्रिमता को कभी भी इंसान का विकल्प नहीं बताया था। यह एक काल्पनिक विचार है कि मशीनी दिमाग इंसान की तरह सोच सकता है। यदि मशीन की प्रतिक्रियाओं पर गौर करें तो इंसान से अलग बता सकते हैं। आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस (एआइ) के शोधकर्ता आज ट्यूरिंग टेस्ट का इस्तेमाल नहीं करते। यह आश्चर्य की बात नहीं कि आज हम मानव या एआइ प्रणाली के साथ ऑनलाइन संवाद कर रहे हैं।

यूक्रेनी किशोर के रूप में 'यूजीन गॉस्टमेनइ' इसका उदाहरण है, जो मशीन होकर इंसान की तरह बात करता है। आज अधिकांश एआइ सिस्टम का इस्तेमाल चाहे भाषा के अनुवाद, शतरंज खेलना, कार चलाना, चेहरा पहचानना या मेडिकल डायग्नोसिस करना हो, मशीन लर्निंग तकनीक का सहारा लिया जा रहा है। लेकिन इनकी प्रामाणिकता का कोई पैमाना नहीं है।

मशीन मानवीय अनुभूति पैदा नहीं कर सकती

हम जो चीज नजर नहीं आती उसका अनुमान लगाते हैं। हम जानते है कि टाइल्स पर गिरा ग्लास टूट जाएगा, लेकिन कालीन पर नहीं। हम परस्पर संबंधों के बीच भेद कर सकते हैं कि बारिश में छाता लगाने के पीछे जरूरत हैं, लेकिन बिना बारिश छाता लगाना इच्छा पर निर्भर है। यह अनुभूति के एक महत्वपूर्ण घटक को छूता है।

हम दूसरों के अंतर्ज्ञान के मनोविज्ञान को विकसित करते हैं, जिसे थ्योरी ऑफ माइंड कहते हैं। ये एल्गोरिदम हैं, जो हमारी सोच में परिलक्षित होता है।

क्योंकि हम अनपेक्षित का अनुमान भी लगा सकते हैं, जब हम सड़क पर गाड़ी चला रहे हैं, जहाँ एक मां अपने तीन बच्चों के साथ सड़क पार कर रही है। तो इस हादसे को एआइ नहीं रोक सकती। क्योंकि मानवीय चेतना एक अनुभूति है, यह मशीनी ज्ञान नहीं है।

एक फीसदी चूक भी घातक हो सकती है

यदि एआइ प्रणाली 99 फीसदी अच्छा प्रदर्शन करती है तो भी मामूली चूक सकती है, जैसे यदि इसका इस्तेमाल कार चलाने या चिकित्सा निदान में किया जाता है। हालांकि अब तक यह प्रणाली विकसित नहीं हो पाई है कि इसे बेहतर कैसे किया जाए। हालांकि शोधकर्ताओं का तर्क है कि यह तभी संभव है, जब इस प्रणाली को इंसानी दिमाग जितना संवेदनशील बनाया जाए। एक बात को हम एक ही तरीके से नहीं सीख सकते। जबकि 'तंत्रिका नेटवर्क' हमारे दिमाग में न्यूरॉन्स के उच्च परस्पर वेब के सिलिकॉन चिप संस्करण को डेटा पैटर्न के अनुसार प्रशिक्षित करता है। मौजूदा आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस 2010 से प्रभाव में दिखने लगी है। यही कारण है कि डीपमाइंड का कंप्यूटर प्रोग्राम 'अल्फागो' एक जटिल बोर्ड के साथ इंसानी विशेषज्ञों को मात देने में सक्षम है। जबकि गूगल अनुवाद भी नौसिखिए युवाओं के लिए बेहतर है, हालांकि अभी इसमें खामियां है।

स्वदोष दूर करने के परम उपाय-
स्वदोष परिज्ञान व परिहार न कर पाने के कारण
स्वशुद्धात्माश्रद्धान-ज्ञान-आचरण ही परमधर्म
सच्चे धार्मिक के अन्तरंग-बहिरंग धर्म

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल : 1. झिलमिल सितारों का... 2. आत्मशक्ति... 3. क्या मिलिए...)

जब तक न स्वशुद्धात्मा श्रद्धान होगा,
तब तक स्वशुद्धात्मा का सही ज्ञान न होगा।
जब तक श्रद्धान-ज्ञान न होगा,
तब तक स्वपरभेदज्ञान न होगा।।(1)

स्वशुद्धात्माश्रद्धान मैं शुद्ध चेतन द्रव्य,
अनन्तज्ञान दर्शन सुख श्रद्धानवीर्य।
तन-मन-इन्द्रिय से परे अमूर्तद्रव्य,
स्वयम्भू सनातन परम सत्य पूर्ण।।।(2)

ऐसे श्रद्धान से होता है सम्यग्ज्ञान,
इससे होता है स्वपरभेदविज्ञान।
जिससे होता है सही आचरण,
स्वशुद्धात्मा प्राप्ति हेतु होता आचरण।।(3)

ये सभी होता जब होता मोहादिउपशम,
अनन्तक्रोध मान माया लोभ के उपशम।
उत्तरोत्तर होता क्षयोपशम से क्षय,
जिससे आत्मविशुद्धि से बढ़े आत्मिकगुण।।(4)

इससे न होते अन्याय अत्याचार,
शोषण मिलावट दुराचार।
स्वपरअहितकर भाव-काम दूर,
सप्तव्यसन व पंचपापादि दूर।।(5)

मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ भाव,
क्षमामार्दवआर्जव शौच संयम।
आत्मिक शान्ति धैर्य सहिष्णु भाव,
होते गुणग्राही उदार भाव।।(6)

परप्रपंच परनिन्दा-चिन्ता रहित,
ईर्ष्या घृणातृष्णा वैर रहित।
आत्मानुशासन आत्मगौरव युक्त,
आत्मविकास आत्मशुद्धिभाव संयुक्त।।(7)

ख्यातिपूजा लाभ प्रसिद्धिवर्चस्व,
संकल्प-विकल्प-संक्लेश रिक्त।
इन सभी गुणों से युक्त सच्चेधार्मिक,
उक्त गुणों से रिक्त होते मिथ्याधार्मिक।।(8)

धर्म तो वस्तुस्वभाव आत्मिकभाव,
इससे विपरीत विभाव अनात्मभाव।
स्वशुद्धात्मा स्वभाव ही परमधर्म/(साध्य धर्म),
उसके प्राप्ति के उपाय साधन धर्म।।(9)

ये है कार्यकारण, निमित्त-उपादान,
साधन-साध्य व गौण-प्रधान।
अन्तरंग-बहिरंग भाव-कर्म,
''कनकसूरी'' का लक्ष्य शुद्धात्मा धर्म।।(10)

ग.पु.कॉ. दि. 18-2-2020, प्रातः-10.01 (केशलोंच)

(यह कविता मेरे आचार्य व वैज्ञानिक से लेकर गृहस्थ शिष्यों के कारण बनी।)

विभाव त्याग व स्वभाव प्राप्ति हेतु

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल : 1. आत्मशक्ति...2. तुम दिल की...)

करूँ न लोभ न माया व दम्भ, दुश्चिन्ता दुर्भावना ईर्ष्या भय।
सरल सहज निर्विकार निर्द्वन्द्व, परप्रपंच परावलम्बी काम भाव।।
रूढ़ि परम्परा दिखावा ढोंग, आत्मग्लानिकारक भाव व काम।
द्रव्य-क्षेत्र-काल व शक्ति अनुसार, बाह्य तप-त्याग करूँ भले अल्पतर।।(1)
आत्मश्रद्धा युक्त आत्मशुद्धि करूँ, आत्मानुशासन से आत्मनिर्भर बनूँ।
अन्धश्रद्धा प्रतिस्पर्द्धा न करूँ, स्वमूल्यांकन मैं स्वात्मा का करूँ।।
समता-शान्ति-सहिष्णुता बढ़ाऊँ, विनम्र सत्यग्राही गुणग्राही बनूँ।
ध्यान-अध्ययन-मनन-चिन्तन करूँ, श्रेष्ठता-ज्येष्ठता को बढ़ाता चलूँ।।(2)
सिद्ध परमेष्ठी को स्वपरम आदर्श मानूँ, शुद्ध-बुद्ध-आनन्द बनना चाहूँ।
अन्य परमेष्ठी मम साधना अवस्था, इस हेतु ही मेरी सभी आवश्यकता।।
सिद्ध परमेष्ठी है मेरी शुद्धावस्था, जिसके अनन्तर नहीं अन्य दशा।
उत्थान-पतन जन्म-मरण भी नहीं, तन-मन-इन्द्रियादि भी नहीं।।(3)
ज्ञानदर्शनसुखवीर्य अनन्त जहाँ, समस्त भेदभाव रहित जहाँ।
संकल्प-विकल्प-संक्लेश शून्य, स्वयं में ही स्वयम्पूर्ण ही जहाँ।।

परमशान्ति समता भी जहाँ, स्वयं ही कर्त्ता भोक्ता विधाता जहाँ।
यह ही मेरा स्वभाव, अन्य सभी विभाव, ''कनक'' चाहे स्वभाव, त्यागे विभाव।।(4)

(यह कविता प्रो. दीपा भट्ट (कैम्ब्रिज व यू.के. युनिवर्सिटी)व डॉ. विनोद भट्ट अमेरिका निवासी के कारण बनी।)

(ग.पु.कॉ., दि. 23-2-2020, रात्रि-10.41)

जो नहीं किया वह कर रहा हूँ
जो किया उसका त्याग कर रहा हूँ

(मैं मेरा अभूतपूर्व-अद्वितीय-अपुनर्भव भाव-काम पुरुषार्थरत अतः इसके बाधक सम्पूर्ण भाव-काम के त्यागरत)

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल : 1. भातुकली...2. आत्मशक्ति...)

महान् से महान् लक्ष्य/(काम) हेतु मैं सदा संलग्न हूँ,
इसके बाधक समस्त काम को नवकोटि से त्यागता हूँ।
अभी तक नहीं कर पाया हूँ मेरा एक ही काम,
आत्मोपलब्धिरूपी महान् काम बिन सभी किया हूँ अन्य काम।।(1)
अनादिकाल से अनन्तभवों में चौरासीलक्षयोनि में,
किया हूँ अनन्त जन्म-मरण भोगोपभोग सभी मैं।
मरा व मारा, सुख-दुःख सहा, ख्यातिपूजालाभ पाया,
दूसरों को खाया अन्य मुझे खाये भक्ष्य-भक्षक रहा।।(2)
धर्म भी किया आत्मकल्याण हेतु न किया अनात्म भाव से किया,
सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि हेतु भोगोपभोग हेतु किया।
धन-जन-मान-सम्मान पाना सांसारिक सुख पाना,
सबकुछ किया अनात्म हेतु आत्महित हेतु न किया।।(3)
करोड़ों भव तप भी किया (किन्तु) आत्मविशुद्धि बिन किया,
काया को सुखाया माया को न मारा ईर्ष्या-द्वेष-घृणा न मारा।
ढोंग पाखण्ड से धर्म किया दिखावा हेतु सब किया,

आत्मदर्शन हेतु न किया प्रदर्शन हेतु सभी किया।।(4)
संकीर्ण पंथ मत जाति राष्ट्रभाषा हेतु धर्म व काम किया,
स्वपरविश्वहित हेतु उदार पावन भाव/(काम) न किया।
समता शान्ति व मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ भाव नहीं किया,
कट्टर-क्रूर-संकीर्णस्वार्थ हेतु धर्म से ले हर काम किया।।(5)
राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध-मद-ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा परे,
मेरा स्वभाव है समता-शान्ति-शुचिता-सहिष्णुतापूरे।
शुद्ध-बुद्ध व आनन्द सच्चिदानन्द वीर्यपूरे,
इसे प्राप्त करना ही मेरा एकमेव लक्ष्यपूरे।।(6)
इस काम के अनन्तर कोई काम मुझे नहीं करना होगा,
तीन लोक तीन काल के संसारी जीवों से अधिक सुख मिलेगा।
अनन्तकाल तक मैं अक्षय-अव्यय सुख पाऊँगा,
कृतकृत्य हो प्रभु विभु शिव ईश्वर रहूँगा।।
इस हेतु ही करूँ ध्यान-अध्ययन व तप-त्याग,
एकान्त मौन निस्पृहता से वीतराग धर्म काम।
यह ही मेरा निर्माण व निर्वाण व प्रभावना,
यह ही मेरा धर्म व मेरा कर्म 'कनकसूरी' माना।।(8)

संघर्षों से निकले, देश को पेटेंट के लिए लड़ना सिखाया

– डॉ. रघुनाथ माशेलकर

वरिष्ठ वैज्ञानिक, लेखक और संगठनकर्ता

मेरा जन्म गोवा के माशेल गांव में 1 जनवरी 1943 को एक बहुत ही गरीब परिवार में हुआ। जब छह वर्ष का था तभी पिता चल बसे। रोजीरोटी के लिए मां अंजनीबाई मुझे लेकर मुंबई के गिरगांव आ गईं। वहीं के म्यूनिसिपल स्कूल में दाखिला लिया। मजदूरी के साथ-साथ घरों में जो काम मिल जाता था, मां कर लेती थीं, फिर भी दो वक्त का भोजन हमें नसीब नहीं होता था। गरीबी ऐसी थी कि 12 वर्ष का होने तक मुझे चप्पल पहनने को नहीं मिली। यह वह समय था जब मजदूरी

भी कुछ सिक्कों में मिलती थी। सातवीं कक्षा में प्रवेश फीस के लिए 21 रुपए भी नहीं थे। पढ़ाई के प्रति मेरा जुनून मां को पता था, इसलिए उन्होंने एक कामवाली बाई से 21 रुपए उधार लिए। उस समय 21 रुपए बहुत मायने रखते थे। गणित और विज्ञान विषय में मेरी विशेष रुचि थी। पागलपन ही हद तक पढ़ना चाहता था। इसलिए घंटों पुस्तकालय में बैठकर पढ़ाई करता रहता था। इसके बाद आधी रात तक स्ट्रीट लाइट में पढ़ता था।

लेखन और अभिनय में मेरी खास रुचि थी (यही कारण है कि अनेक पुस्तकें लिख चुका हूं)। इतने अभावों में पढ़ने के बावजूद बोर्ड परीक्षा में महाराष्ट्र में मैंने 11वां स्थान हासिल किया। अब आगे पढ़ने पैसे नहीं थे। मैंने सोचा कुछ समय पढ़ाई बंद कर कोई काम कर लेता हूँ, लेकिन मां ने मना किया। वे बोलीं कि आप पढ़ने में अव्वल हैं, स्कॉलरशिप मिल जाए, ऐसा कुछ करो। मैंने जानकारी निकाली और 'सर दोराबजी टाटा स्कॉलरशिप' परीक्षा पास करने में जी-जान लगा दिया। नतीजा, जयहिंद कॉलेज में केमिकल इंजीनियरिंग के लिए रासायनिक प्रौद्योगिकी संस्थान में प्रवेश मिल गया। यहीं से मैंने अव्वल नंबर से पीएचडी पूरी की तो लंदन की सेलफोर्ड यूनिवर्सिटी ने छात्रवृत्ति देकर अपने यहां दाखिला दे दिया। जब हम अव्वल नंबर आते हैं तो दुनिया आपको हाथोंहाथ उठा लेती है। इस तरह झोपड़ी से निकलकर मैं लंदन में पढ़ने चला गया। एक दिन नेशनल केमिकल लेबोरेटरी (एनसीएल) के तत्कालीन संचालक डॉ. बी.डी. तिलक ने सूचना भेजी कि तुरंत सीएसआईआर (वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद) के महासंचालक डॉ. नायुदम्मा से मिलो। आगे की रिसर्च उन्हीं के मार्गदर्शन में करने लगा।

लंदन में पढ़ाई के दौरान कॅरियर बनाने के लिए कई देशों से आमंत्रण मिले थे, लेकिन मैंने स्वदेश लौटना पसंद किया। पहली नौकरी 1976 में 2100 रुपए महीने से शुरू की। मेरा काम और लगन देखकर 1989 में मुझे एनसीएल निदेशक, पुणे की जिम्मेदारी सौंप दी गई। मैंने औद्योगिक क्षेत्र को आगे बढ़ाने के लिए रिसर्च किए और कम समय में एक नया मॉडल स्थापित कर दिया। लगातार कुछ नया करते रहने से 1995 में इंस्टीट्यूट ऑफ साइंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल

रिसर्च (CSIR) का महासंचालक बना दिया गया। यहां मैंने 11 वर्ष तक सेवाएं देते हुए देशभर की सभी प्रयोगशालाओं का नेतृत्व किया और अनुसंधान के क्षेत्र में आमूलचूल परिवर्तन किए। मैंने जमीनी स्तर पर प्रयोग करने वालों को हर संभव आगे बढ़ाने की कोशिश की। पहली बार विचार आया कि हमारा शोध कानूनन पेटेंट होना चाहिए, क्योंकि 1950 से 39 वर्षों में हमारा कोई पेटेंट नहीं था।

मैं खासतौर पर बताना चाहूंगा कि हमारी हल्दी, नीम और बासमती चावल को अमेरिका ने अपने नाम पेटेंट करा रखा था। मैंने विश्व स्तर पर इसके खिलाफ 14 महीने तक लड़ाई लड़कर इसे भारत के नाम कराया और जनरल इलेक्ट्रिक (GE) जैसे विश्व स्तरीय संगठन में हम शामिल हो गए। इससे GE ने बेंगलुरु में एक रिसर्च सेंटर स्थापित कर दिया।

इस दौरान मेरे थोड़े से प्रयासों से देश ने लगातार पेटेंट हासिल किए जिससे अमेरिका व यूरोप में हमारी धाक जमने लगी। मेरे मार्गदर्शन में हर विषय से संबंधित भारत के पारंपरिक ज्ञान-विज्ञान के तीन करोड़ दस्तावेज संग्रहीत कर उनकी ई-लाइब्रेरी बनाई गई।

यह डिजिटल लाइब्रेरी बनाने का मेरा उद्देश्य यही था कि हमारा प्राचीन विज्ञान पन्नों के साथ ही नष्ट न हो जाए। इसी के साथ पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों को आधुनिक प्रणालियों से जोड़कर नए प्रयोग की शुरुआत हुई। 1991 में पद्मश्री और 2000 में पद्मभूषण पुरस्कार मिल चुका है। अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश ने भी 'स्टार्स ऑफ एशिया' अवॉर्ड प्रदान किया। मेरी कुछ उपलब्धियां जैसे- सुपरकंडक्टिविटी, हरित क्रांति, परमाणु ऊर्जा, आधुनिक चिकित्सा और आधुनिक विज्ञान का संयोजन, अतिचालकता, सीएसआईआर के परिवर्तन की स्वर्ण त्रिभुज अवधारणा को जोड़ना तथा पंचशीलता का सिद्धांत हैं। आने वाले समय में स्पर्धा उत्पादकों में नहीं, बल्कि कौशल्य आधारित होगी। आपकी सफलता इस पर निर्भर करेगी कि आप किन कौशलों का साथ में उपयोग करते हैं।

जीवन में बहुत उपलब्धियां हासिल की हैं। इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका सहित विश्व के 25 महाविद्यालयों ने डॉक्टरेट की मानद उपाधि दी, लेकिन इन

सब के पीछे मैं मां को देखता हूं। मेरी पहली गुरु, मेरी पहली यूनिवर्सिटी मां थीं, उन्होंने जीवन मूल्य और मुसीबत से कैसे निकला जाए यह सिखाया। मेरा मानना है कि पूरे समाज की उन्नति में फाइव-ई महत्वपूर्ण होता है- एन्वायर्नमेंट, इकोलॉजी, इकोनॉमिक्स, इक्वेलिटी और एथिक्स। ज्ञान के माध्यम से ही धन का सृजन होना चाहिए। रिसर्च, पैसे को ज्ञान में बदल सकती है, लेकिन इनोवेशन, ज्ञान को पैसे में बदल देता है।

(जैसा उन्होंने दिव्य मराठी पुणे की जयश्री बोकिल को बताया)

स्व शाश्वत शुद्ध स्वरूप प्राप्ति ही लक्ष्य

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल : 1. मन तड़पत... 2. मैं अमृत हूँ ...)

मैं शाश्वत हूँ... कभी न जन्मता...
जन्म-बिना मम... मरण न होता...
जन्म-मरण सभी कर्म की दशा... मैं शाश्वत हूँ...(ध्रुव)

शाश्वत होने से स्वयम्भू मैं हूँ... अतएव अयोनिसम्भूत मैं हूँ...
अक्षय-अव्यय-ध्रुव मैं हूँ... नित्य-सनातन-सत्य-शिव हूँ...(1)...

अनन्तानन्त गुण गण मैं हूँ... अनन्त ज्ञान दर्शन सुख वीर्य हूँ...
शुद्ध-बुद्ध-आनन्दकन्द मैं... निर्भय स्वतन्त्र आत्मनिर्भर हूँ...(2)...

निर्मल निश्चल निश्छल रूप... पावन सत्य-शिव-सुन्दर हूँ...
द्रव्य-भाव कर्म रहित हूँ... टङ्कोत्कीर्ण मैं ज्ञायक रूप...(3)...

अनादिकालीन कर्म संयोगे... विकार हुआ है विभाव भाव से...
संयोग का वियोग होता नियोगे... विकार वियोग से शुद्ध बनूँ मैं...(4)...

इस हेतु ही करूँ धर्म साधना... लक्ष्य प्रयोजन महान् भावना...
इस हेतु ही सर्व तप त्याग आराधना... ध्यान-अध्ययन-बारह भावना...(5)...

आलोचना-प्रतिक्रमण-निन्दा-गर्हा... समता-शान्ति-निस्पृहता-क्षमा...
एकान्त मौन में निवास-प्रवास... शुद्ध-बुद्ध-आनन्द ही 'कनक'-लक्ष्य...(6)...

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि.-21/2/2020, रात्रि 8.58

संदर्भ-

उपशम से क्रोध का हनन करे, मृदुता से मान को जीते, ऋजु भाव से माया को और सन्तोष से लोभ को जीते।

आत्मस्वरूप एवं परस्वरूप

एकोऽहं निर्ममः शुद्धो ज्ञानी योगोन्द्र गोचरः।

बाह्यः संयोगजा भावा मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा।।(27)

I am, one, I am without delusion, I am the knower of things, I am knowable by master ascetics; all other conditions that arise by the union of the not-self are froeign to my nature in every way!

द्रव्यार्थिक नय से मै एक हूँ, मैं ही पूर्व परावस्थाओं में अनुश्रुत रूप में रहने के कारण मैं एक हूँ यह मेरा है, मैं इसका हूँ इसी प्रकार अभिप्राय से शून्य होने के कारण निर्मम हूँ। शुद्ध नय की अपेक्षा द्रव्य कर्म, भावकर्म से निर्मुक्त होने के कारण मैं शुद्ध हूँ। स्व-पर प्रकाश होने के कारण मैं ज्ञानी हूँ। अनन्त पर्यायों को युगपत् जानने वाले केवलज्ञानी और श्रुतकेवली के शुद्धोपयोगस्वरूप ज्ञान का विषय हूँ, मैं स्वसंवेद्य के द्वारा जानने योग्य हूँ। जो द्रव्यकर्म के सम्बन्ध से प्राप्त भाव तथा देह आदि हैं वे सर्व मेरे से सर्वथा सर्व प्रकार के बाह्य है, भिन्न है।

समीक्षाः- इस श्लोक में आचार्य श्री ने स्वयं को अनुभव करने के/ध्यान करने के/प्राप्त करने के कुछ उपाय बताये हैं। भले व्यवहार नय से द्रव्य कर्म आदि के संयोग से जीव में विभिन्न वैभाविक भाव तथा शरीर आदि पाये जाते हैं तथापि शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से यह आत्मा के स्वभाव नहीं हैं। ये सब पर संयोगज अशुद्ध भाव है। आचार्य कुन्दकुन्द देव ने समयसार में कहा भी है-

अहमिक्को खलु सुद्धो णिम्मओ णाणदंसणमग्गो।

तह्मि ठिओ तच्चिट्ठो सेस सव्वे खय णेमि।।93।।

टीका- यह मैं आता हूँ सो प्रत्यक्ष अखंड, अनंत, चैतन्यमात्र ज्योति हूँ। अनादि, अनंत, नित्य उदयरूप, विज्ञानघन स्वभाव रूप से तो एक हूँ और समस्त कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, आदान, अधिकरण स्वरूप जो कारकों का समूह उसकी प्रक्रिया से पार उतरा दूरवर्ती निर्मल, चैतन्य अनुभूति मात्र रूप से शुद्ध हैं।

जिनका द्रव्य स्वामी है ऐसे जो क्रोधादि भाव उनकी विश्वरूपता (समस्तरूपता) उनका स्वामित्व से सदा ही अपने नहीं परिमणने के कारण उनसे ममता रहित हूँ। तथा वस्तु का स्वभाव सामान्य विशेष स्वरूप है इसीलिए चैतन्यमात्र तेज पुंज भी वस्तु है इस कारण सामान्यविशेष स्वरूप जो ज्ञानदर्शन उनसे पूर्ण हूँ। ऐसा आकाशादि द्रव्य की तरह परमार्थ स्वरूप वस्तु विशेष हूँ। इसलिए मैं इसी आत्मस्वभाव में समस्त पर द्रव्य से प्रवृत्ति की निवृत्ति करके निश्चल स्थित हुआ समस्त परद्रव्य के निमित्त से जो विशेष रूप चैतन्य में चंचल कल्लोलें होती भी, उनके विरोध से इस चैतन्य स्वरूप को ही अनुभव करता हुआ अपने ही अज्ञान से आत्मा में उत्पन्न क्रोधादिक भावों का क्षय करता हूँ ऐसा आत्मा में निश्चय कर तथा जैसे बहुत काल का ग्रहण किया जो जहाज या वह जिसने छोड़ दिया है, ऐसे समुद्र के भंवर की तरह शीघ्र ही दूर किये हैं समस्त विकल्प जिसने, ऐसा निर्विकल्प, अचलित निर्मल आत्मा को अवलम्बन करता विज्ञानघन होता हुआ यह आत्मा आस्रवों से निवृत्त होता है।

आदिमध्यान्तहीनोऽहमाकाशसदृशोऽस्म्यहम्।
आत्मचैतन्यरूपोऽहमहामानंदचिद्धनः।
आनन्दामृतरूपोऽहमात्मसंस्भोऽहगन्तरः।
आत्मकामोहमाकाशात्परमात्मेश्वरोऽस्म्यहम्।।(92)
ईशानोऽस्म्यह मीड्योऽहमनुत्रमपुरुषः।
उत्कृष्टोऽहमुपद्रष्टाद्रहनुतरोऽस्म्यहम्।।(93)
केवलोऽहं कविः कर्माध्यक्षोऽहं करणाधियः।
गुहाशयोऽहं गोप्ताऽहं चक्षुषश्चक्षुरस्म्यहम्।।(94)
चिदानन्दोऽस्म्यहं चेताश्रिद्धनश्रिन्मयोऽस्म्यहम्।
ज्योतिर्मयाऽस्म्यहंज्यायान्ज्योतिषांज्योतिरस्म्यहम्।।(95) (उपनिषद्)

मैं आदि मध्य और अन्त से रहित हूँ आकाश के सदृश हूँ, मैं आत्म चैतन्य रूप हूँ, आनन्द चेतन घन हूँ। मैं आनन्दामृत रूप हूँ, आत्म संस्थित हूँ, अन्तर हूँ, आत्मा काम हूँ और आकाश में परमात्मा परमेश्वर स्वरूप हूँ। मैं ईशान हूँ, पूज्य हूँ, उत्तम पुरुष हूँ, उत्कृष्ट हूँ, उपदृष्टा हूँ और पर से भी परे हूँ। मैं केवल हूँ, कवि हूँ, कर्माध्यक्ष हूँ, कारण का अधिपति हूँ, मैं गुप्त आशय हूँ, गुप्त रखने वाला हूँ, और नेत्रों

का नेत्र हूँ, मैं चिदानन्द हूँ, चेतना देने वाला हूँ, चिद्धन और चिन्मय हूँ, मैं ज्योतिर्मय हूँ, और मैं ज्योतियों में श्रेष्ठ ज्योति हूँ।

मैं छोटे से भी छोटा और बड़े से भी बड़ा हूँ। इन अद्भुत संसार को मेरा ही स्वरूप मानना चाहिए। मैं ही शिव और ब्रह्मा का स्वरूप हूँ। मैं ही परमात्मा और विराट पुरुष हूँ। वह शक्ति जिसके न हाथ-पैर हैं और न जिसके सम्बन्ध में चिन्तन किया जा सकता है, वह परब्रह्म मैं ही हूँ। सर्वदा चित्त स्वरूप रहता हूँ मुझे कोई जान और समझ नहीं सकता, मैं बुद्धि के बिना ही सब कुछ जानने, स्थूल कानों के बिना सब कुछ सुनने और स्थूल आँखों के बिना सब कुछ देखने की सामर्थ्य रखता हूँ। मैं ही देव का उपदेश करता हूँ, मैंने ही वेदान्त की रचना की है और सारे वेद मेरे ही सम्बन्ध में चर्चा करते हैं मैं जन्म और नाम से परे हूँ। पाप और पुण्य मुझे छू नहीं सकते। मैं शरीर, मन, बुद्धि और इन्द्रियों से रहित हूँ। मेरे भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश कुछ सम्बन्धि नहीं है।

जो संन्यासी लोक, वेद, विषयों के भोग और इन्द्रियों का आश्रय छोड़कर आत्मस्थित रहता है वह परम गति को पाता है। संन्यासी अपने नाम, गोत्र-कुल, देश-काल, अवस्था, शील, व्रत, शास्त्र-ज्ञान आदि के सम्बन्ध में किसी से वार्ता न करे। किसी स्त्री से बात न करे, पूर्व परिचित स्त्री का स्मरण न करे, स्त्रियों के चित्रों को भी न देखे तथा स्त्रियों से सम्बन्धित चर्चा न सुने। क्योंकि स्त्री सम्बन्धी चर्चा, उनका स्मरण, चिन्तावलोकन तथा संभाषण आदि से मन में विकार की उत्पत्ति होती है और वह उसकी योग भ्रष्टता का कारण होता है। संन्यासियों के लिए मोह-ममता, माया-लोभ, तृष्णा, क्रोध, असत्य, राग, अहंकार भावना, संग्रह व्याख्यान, शिल्प, चिकित्सा-व्यवसाय, परगृह निवास, प्रायश्चित्त, औषधि वितरण, मंत्र प्रयोग, धर्मार्थ साहसिक कार्य, आशीर्वाद देना आदि कर्म निषिद्ध हैं। जो ऐसा करता है वह अपने धर्म से पतित होता है। मुमुक्षु संन्यासी अपने किसी सुहृद् जन का भी स्वागत, सन्मान न करे और न उसे अपने पास ठहरावे। किसी का दिया हुआ दान न ले। किसी दूसरे को भी न दिलावे। किसी को दान देने या लेने की भी प्रेरणा न करे। स्त्री-पुरुष आदि किसी भी प्रियजन के शुभ या अशुभ समाचार को देख-सुनकर कभी विचलित न हो, हर्ष-शोक का सर्वथा त्याग करे। अहिंसा भाव, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह,

अनौद्धत्य शान्ति, प्रसन्नता, स्थिरता, सरलता, स्नेहाभाव, गुरु-सेवा, श्रद्धा, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह, मनोनिग्रह, उदासीनता, धीरता, मधुरता, सहनशीलता, करुणा, लज्जा, धारणा, स्वल्पाहार और ज्ञान-विज्ञान -परायणता-संन्यासी के लिए यह धर्मरूप से पालनीय है।

दुःखदायी देह त्यजनीय

दुःख संदोह भागित्वं संयोगादिह देहिनाम्।
त्यजाम्येनं ततः सर्वं मनोवाक्काय कर्मभिः।।(28)

The soul involved in transmigration have to suffer a multitude of afficatons, owing to the association of the not self, the body and the like: therefore, I(shall) renounce then along with all the activities of the mind, the body and speech!

देहादि संबन्ध से संसारी जीव दुःखों के समूहों को भोगता हैं। इसलिये समस्त संयोगों को मैं सम्पूर्ण रूप से त्याग करता हूँ। मन, वचन, काय के कर्म से मनोवर्गणा के अवलम्बन से आत्म प्रदेशों में परिस्पन्दन होता है। इस से कर्मास्रव होता है। अत एव मन-वचन-काय के परिस्पन्द को भाव से निरोध करना चाहिए। अतः उसके भेदाभेद अभ्यास के द्वारा सुख-दुःखरूप फल की निवृत्ति का आश्रय लेना चाहिए।

प्रकृत ग्रन्थकर्त्ता पूज्यपादाचार्य देवनन्दी ने समाधिशतक में कहा भी है-

जब तक अपनी बुद्धि से अपने काय, वचन और मन इन तीनों को यह जीव ग्रहण करता है तब तक इन जीवों का संसार रहता है और इसके भेद-विज्ञान से मुक्ति मिलती है।

जिनलिंगीसाधु अभी होते तो होता अनादर उनका

(कुज्ञानीमोहीस्वार्थी उन्हें मानते अज्ञानी-दम्भी-अयोग्य)

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल : 1. क्या मिलिए... 2. देहाची तिजोरी...)

अभी यदि होते जिनलिंगीसाधु, होती उनकी निन्दा भारी।

निस्पृही निराडम्बर मौनी/(ध्यानी) होने से उनको मानते अज्ञानी दम्भी।।
तीर्थंकर मुनि सम साधु अवस्था में वे न करते हैं प्रवचन कभी।
एकान्त शान्त समता भाव से करते आध्यात्मिक साधना सभी।।(1)
तथाहि न करते मन्दिर मठ धर्मशाला निर्माण व जिर्णोद्धार।
विधान पंचकल्याण चन्दा चिट्ठा बोली रथयात्रा आडम्बर।।
माइक मंच पाण्डाल होर्डिंग विज्ञापन T.V. में प्रसारण।
मान-सम्मान, पुरस्कार प्रदान, संगठन-मंच-दल निर्माण।।(2)
प्रतियोगिता व प्रश्नमंच आनन्दयात्रा तीर्थयात्रा आयोजन।
संकीर्ण पंथ मत परम्परा रूढ़ि धनी-गरीब भेदभाव शून्य।।
घरगृहस्थी व स्वार्थ की चर्चा नहीं करने से मानते उन्हें बेकार।
मान-सम्मान धनलाभ न होने से करते उनका अनादर/(बहिष्कार)।।(3)
इससे कुज्ञानी मोही स्वार्थी उनको मानते अज्ञानी मोही।
स्वस्वार्थ पंथ-मत मान-सम्मान बिन मानते ये अयोग्य मुनि।।
पंचमकाल में तो अधिकतर जन करते धर्म निम्नोक्त कारणों से।
लोकभय, योग्यताप्रदर्शन, कीर्ति, लज्जा, सांसारिक कामनाओं से।।(4)
इसके अतिरिक्त ज्ञान वैराग्य संयम शुचि समता आकिञ्चन्य।
आत्मविशुद्धि आत्मदर्शन आत्मविकास से नहीं कुछ प्रयोजन।।
इससे पंचमकाल के लोग जिनलिंगीमुनि का न करते आदर।
अभी भी जो साधु यथायोग्य निराडम्बर उनका भी न होता समादर।।(5)
''ध्यान अध्ययन मुख्य मुनिधर्म'' में इसका भी महत्व नहीं सर्वत्र।
भीड़ प्रदर्शन बोली धनी मान सम्मान खाना पीना का महत्व प्रायः सर्वत्र।।
इस हेतु ही करते धर्म तप त्याग प्रवचन प्रतिष्ठा व विधान।
केशलोंच, चातुर्मास, कलशस्थापन, अभिषेक शान्तिधारा, पादप्रक्षालन।।(6)
आत्मदर्शन के बदले में होता प्रदर्शन वीतराग के बदले में वित्तराग।
मोक्षमार्ग के बदले में पंथाग्रह अनेकान्त के बदले में एकान्तवाद।।
अहिंसा के बदले में भावहिंसा समता के बदले में सर्वत्र विषमता।
स्याद्वाद व भाषासमिति के बदले में निन्दा व अहित भाषा।।(7)

निर्माण के नाम पर भौतिक निर्माण वह भी सत्ता-सम्पत्ति हेतु।
बाह्य तप त्याग के बदले में कषायवृद्धि संगठन निर्माण विघटन हेतु।।
सुद्रव्य क्षेत्र कालभाव अभी नहीं है जिनलिंगी वीतरागी मुनि हेतु।
ये सभी आगम अनुभव से जाना है 'कनक' स्व-आत्मकल्याण हेतु।।(8)

सन्दर्भ-

पञ्चमकाल में विशुद्धि की हीनता (काल प्रभाव)

सम्मविसोही तवगुणचारित्तं सण्णाण दाणं परिहीणं।
भरहे दुस्समकाले मणुयाणं जायदे णियदं।।(38) रयण

पद्य- भरत क्षेत्र में दुषमा काल में मनुष्यों में होते नीच गुण।
सम्यक्त्व विशुद्धि तप-गुण चारित्र सुज्ञान दान परिहीन।।

(13) बछड़ों से वहन किये हुए रथ को देखने से बहुधा करके लोग तारुण्य अवस्था में संयम ग्रहण करेंगे किन्तु शक्ति के घट जाने से वृद्धा अवस्था को धारण नहीं कर सकेंगे।

(14) ऊँट पर चढ़े हुए राजपुत्र को देखने से ज्ञात होता है कि राजा लोग निर्मल धर्म को छोड़कर हिंसा मार्ग स्वीकार करेंगे।

रजसाऽच्छादित सद्रत्नराशेरी क्षणतो मृशम्।
करिष्यन्ति नपाः स्तेयां निर्ग्रन्थमुनयो मिथः।।(47)

(15) धूलि से आच्छादित रत्नराशि को देखने से निर्ग्रन्थ मुनि भी परस्पर में निन्दा करने लगेंगे।

(16) काले हाथियों का युद्ध देखने से मेघ मनोभिलाषित नहीं बरसेंगे।

भद्रबाहु स्वामी के मुख से स्वप्न के विचित्र फल को सुनकर चन्द्रगुप्त मौर्य ने विशाल भारत का शासन छोड़कर वे भद्रबाहु स्वामी से निर्ग्रन्थ दिगम्बरी दीक्षा लेकर आत्मकल्याण करके स्वर्ग सिधारे।

चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा देखे हुए स्वप्नों का जो फल भद्रबाहु स्वामी ने भविष्यवाणी रूप से जो घोषणा की थी वह घोषणा आज सत्य साबित हो रही है। चन्द्रगुप्त मौर्य का स्वप्न ही नहीं रहा किन्तु वास्तविक रूप से परिणमन होते

हुए अनुभव में आ रहा हैं। तीसरे स्वप्न में चन्द्रमण्डल को बहुत छिद्र युक्त देखने का फल कलिकाल में जिनमत में अनेक मत, सम्प्रदाय पंथप्रादुर्भाव होने का निर्णय भद्रबाहु स्वामी ने किया था।

उसका वास्तविक रूप आज अहिंसा परायण साम्यवादी अनेकांत एवं स्याद्वाद के पुजारी जैनियों में अनेक मतभेद होते जा रहे हैं, जो धर्म समस्त विवादों का विनाशक एवं समता, एकता का विधाता था। आज उसी धर्म में छोटी-छोटी बातों को लेकर तनाव, विवाद, मन-मुटाव, मुकदमा, शीतयुद्ध चल रहा है। इसमें केवल साधारण जैन ही भाग नहीं ले रहे हैं किन्तु विशिष्ट श्रावक नेता, कर्णधार पंडित, ब्रह्मचारी, क्षुल्लक, मुनि, आर्यिका, उपाध्याय, आचार्य आदि भी सक्रिय भाग ले रहे हैं। पहले दीपक के नीचे अंधकार रहता था। किन्तु वैज्ञानिक युग में बल्ब, ट्यूब आदि के नीचे अंधकार है, इसी प्रकार पहले मिथ्या कुधर्म में विवाद आदि होता था। परन्तु आज जैन धर्म में भी अधिक विवाद हो रहा है, यह सब कर्म दोष से संकुचित स्वार्थान्ध मनोभाव से कलियुग के प्रभाव से हो रहा है। कलियुग की दयनीय परिस्थिति का चित्रण करते हुए चित्रकों ने यथार्थ से कहा है-

सीदंति संतो विलसत्यसंतः पुत्रा म्रियंते जनकश्चिरायुः।
परेषु मैत्री स्वजनेषु वैरं पश्यन्तु लोकाः कलिकौतुकानि।।

हे विश्व के लोगों! कलिकाल के आश्चर्यपूर्ण कौतुक को देखिये! इस कलिकाल में सज्जन लोग दुःखित होते हैं तथा दुर्जन लोग प्रभाव को प्राप्त होते हैं, पुत्र का मरण होता है तथा पिता दीर्घजीवी होता है। दूसरे से मित्रता करते हैं तथा स्वजन से वैरभाव रखते हैं।

अनृते पटुता चौरे चित्तं सतामपमानता।(पुत्राः पितुर्द्वेषिणः)
मतिरविनये धर्मे शां गुरुष्वपि वंचना।।
ललित मधुर वाक् प्रत्यक्षे परोक्ष विभाषिणी।
कलियुग महाराजस्यैताः स्फुरन्ति विभूतयः।।

झूठ बोलने में चतुर, दक्ष, चोरी में दत्त, सज्जनों का अपमान, पुत्र पिता से द्वेष करने वाला, अविनीत मति, धर्म में शठता (मायाचारी) गुरु की भी वंचना, प्रत्यक्ष में ललित मधुर वचन बोलना एवं परोक्ष में विपरीत भाषण करना यह सब कलियुग

महाराज के वैभव का विस्तार है।

धर्मः प्रज्वलिस्तपः प्रचिलितं, सत्यं च दूरे गतं।
पृथ्वी मन्दफला नृपोऽति कुटिलो, लौल्यं गता ब्राह्मणाः।।
लोकोः स्त्रीषुरताः स्त्रीयोऽति चपलाः शास्त्रागमे विप्लवः।
साधुः सीदति दुर्जनः प्रभवति प्रायः प्रविष्टे कलौ।।

कलिकाल के प्रवेश से धर्म एवं प्रज्ज्वलित तप चलायमान हो जाते हैं, सत्य दूर भाग जाता है, पृथ्वी कम फल देने वाली हो जाती है, राजा अत्यन्त कुटिल तथा ब्राह्मण अत्यन्त लोलुपी हो जाते हैं, लोग स्त्री में आसक्त रहते हैं, स्त्री अत्यन्त चंचल हो जाती है, शास्त्र-आगम में अनेक विप्लव होते हैं, साधु दुःख पाते हैं, दुर्जन लोग प्रभाव को प्राप्त करते हैं।

निर्वीर्यो पृथिवी, निरोषधिरसो, नीचा महत्त्वं गताः।
भूपाला निज कर्म धर्म रहिता, विप्राः कुमार्गे रताः।।
भार्या भर्तृ विरोधिनी पररता, पुत्राः पितृद्वेषिणो।
हा कष्टं खलु वर्तते कलियुगे धन्या नराः सज्जनाः।।

दुःख की बात है कि कलियुग में पृथ्वी वीर्यहीन(सारहीन) हो जाती है, रस, प्राण-शक्ति को देने वाली औषधि से रहित पृथ्वी हो जाती है, नीच लोग महत्व को प्राप्त हो जाते है, राजा लोग स्व-कर्त्तव्य एवं धर्म से रहित हो जाते हैं, ब्राह्मण लोग कुमार्ग में गमन करते हैं, स्त्री(भार्या) पति विरोधिनी होकर पर पुरुष में रत होती है, पुत्र पिता के द्वेषी हो जाते हैं। इसी प्रकार भयंकर कलियुग में जो नर धर्म, नीति, नियम को पालन करते हैं, वे धन्य हैं।

कलिकाल में धर्म करने वाले धन्य

धन्या भारतवर्ष संभवजना योऽद्यापि काले कलौ।
निस्तीर्थेश्वर केवले निरवद्यो भ्रश्यन्मनः पर्यये।
त्रुट्यच्छ्रोत्र विशेष संपदि भव दौर्गत्य दुःखापदि।
श्री जैनेन्द्रवचोनुरागवशतः कुर्वित धर्मोद्यमम्।।

वर्तमान घोर पंचम कलिकाल में तीर्थंकर, केवली, अवधि, मनःपर्यय ज्ञानियों

का अभाव है, योग्य श्रोताओं का भी अभाव है, विशेष वैभव से रहित, दरिद्रता आदि संकट से सहित कलियुग के मनुष्य है। इसी प्रकार विपरीत कलियुग में भी जिनेन्द्र देव के वचनानुसार धर्म में उद्यत होते हैं वे अत्यन्त अभिनंदनीय, अभिवंदनीय एवं धन्यवाद के पात्र हैं।

प्राचीन काल में अर्थात् चतुर्थ काल में धर्म साधन के अनूकूल परिस्थिति थी, इसलिये उस समय में धर्म का आचरण करना सरल साध्य था, परन्तु वर्तमान पंचम काल में विपरीत परिस्थिति में धर्म आचरण कष्ट साध्य है। जैसे अनुकूल जल के स्रोत में नौका को खेकर ले जाना सरल सहज है, परन्तु प्रतिकूल स्रोत में नौका को खेकर ले जाना श्रम साध्य है। जो प्रतिकूल स्रोत में एवं तूफान के समय में नौका को खेकर अपने गंतव्य स्थान में बढ़ते हैं, वह जैसे धन्यवाद के पात्र है उसी प्रकार उपर्युक्त कलिकाल में जो धर्म का श्रद्धापूर्वक, विवेकपूर्वक पालन करते हैं वे धन्य हैं। कलिकाल में अधिकांश लोग श्रद्धा, विवेक एवं आत्मकल्याण की बुद्धि से रहित होकर धर्माचरण अहंकार की पुष्टि, ख्याति, लाभ, कीर्ति के लिये करते हैं। पूर्वाचार्यों ने कहा भी है-

भयं दक्षिण्य कीर्ति च लज्जा आशा तथैव च।
पचभिः पंचमेकाले जैनो धर्मः प्रवर्तते।।

पंचम काल में लोग जैन धर्म को (1) लोकभय (2) अन्य का मनःदुखित न होने के लिये (3) कीर्ति (4) लज्जा (5) आशा से पालन करेंगे।

श्रद्धा, विवेक, आत्मविशुद्धि से रहित होकर कुछ संकुचित स्वार्थनिष्ठ मनोभाव से धर्माचरण के कारण जब उस संकुचित स्वार्थ निष्ठ भाव को धक्का लगता है, तब वे धर्म से उस प्रकार टूट पड़ते हैं जिस प्रकार रत्न के समान प्रतिभाषित काँच थोड़े से धक्के के कारण टूटकर नीचे गिर पड़ता है, परन्तु यथार्थ से जो रत्न होता है वह सामान्य धक्के से टूटकर नहीं गिरता है। इसी प्रकार जो यथार्थ से धर्मात्मा होता है वह सामान्य प्रतिकूल अवस्था से प्रतिघातित होकर धर्म से च्युत नहीं होता है। इससे सिद्ध होता है कि जो छोटी-छोटी बातों को लेकर धर्म में कलह उत्पन्न करके धर्म, समाज, राष्ट्र देश में फूट डालकर आतंकवाद मचा देते हैं वे यथार्थ से धर्मात्मा नहीं है।

अवध प्रभाव जान तब प्रानी, जब उर बसहिं राम धनुपानी।

सो कलिकाल कठिन उरगारी, पाप परायन सब नर नारी।। रा.मा.

अयोध्या के प्रभाव को प्राणी तब ही जानता है, जब श्री रामचन्द्र जी धनुष हाथ में लिये उनके हृदय में वास करते हैं हे गरुड़जी! वह कलियुग बड़ा कठिन है क्योंकि सब नर-नारी पाप में लिप्त हैं।

कलिमल ग्रसे धर्म सब, लुप्त भए सद्ग्रन्थ।

दंभिन्ह निज मति कल्प करि, प्रगट किये बहु पन्थ।।

कलिकाल के पापों ने सब धर्मों को दबा लिया, सद्ग्रन्थ लुप्त हो गये। पाखण्डियों ने अपन बुद्धि से कल्पना करके अनेक पन्थ प्रगट कर दिये।

भये लोग सब मोह बस, लोभ ग्रसे सुंभ कर्म।

सुनु हरिजान ग्यान निधि, कहउँ कछुक कलिधर्म।।

सब लोग मोह के वश हो गये, लोभ ने शुभ कर्मों को ग्रस लिया। हे ज्ञानवान् गरुड़जी! अब कलियुग के कुछ धर्म कहता हूँ तो सुनिये-

मारग सोई जा हूँ जोइ भावा, पंडित सोई जो गाल बजावा।

मिथ्यारंभ दंभ रत जोइ, ता कहुँ संत कहइ सब कोई।।

जिसको जो अच्छा लगे वही मार्ग है और वही पण्डित है जो डींग मारता है। जो झूठ ही से आरम्भ करता है और पाखण्ड में लगा है, उसी को सब लोग सन्त कहते हैं।

सोइ सयान जो परधन हारी, जो कर दंभ सो बड़ आचारी।

जो कह झूठ मसखरी जाना, कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना।।

जो पराया धन हर लेता है वही होशियार है। जो बहुत सा-पाखण्ड फैलाता है वही बड़ा आचारी है। जो झूठ बोलना और हँसी करना जानता है, कलियुग में वही गुणवान् कहलाता है।

असुभ वेष भूषण धरें, भच्छाभच्छ जे खाहिं।

तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूज्यते से कलिजुग माहिं।।

जो अमंगल वेष और अमंगल भूषण धारण किये हैं और भक्ष्य-अभक्ष्य सब

खा लेते हैं, कलियुग में वही योगी, सिद्ध और वही पूज्य हैं।

जे अपकारी चार, तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
मन कर्म वचन लबार, तेइ बकता कलिकाल महुँ।।

जो पराया अहित करते हैं, उन्हीं को गौरव मिलता है, वे ही मान्य हैं। मन, कर्म, वचन से जो लबार हैं, वे ही कलियुग में वक्ता कहलाते हैं।

सब नर काम लोभ रत क्रोधी, देव बिप्र श्रुति संत विरोधी।
गुन मन्दिर सुन्दर पति त्यागी, भजहिं नारि पर पुरुष अभागी।।

सब लोग काम, लोभ और क्रोध में रत हैं। देवता, ब्राह्मण गुणी और सन्तजनों से विरोध करते हैं। गुणवान् सुन्दर पति को छोड़कर अभागिनी स्त्रियाँ पर पुरुषों से प्रीति करती हैं।

सोभागिनीं विभूषण हीना, बिधवन्ह के सिंगार नबीना।
गुरु सिष बधिर अंध का लेखा, एक न सुनइ एक नहिं देखा।।

सुहागिनी स्त्रियाँ जो आभूषण से रहित रहती हैं और विधवाओं के नित्य नये शृंगार होते हैं। गुरु और शिष्य का अन्धे और बहरे का सा बर्ताव होता है। एक (शिष्य) सुनता नहीं और एक (गुरु) देखता नहीं।

पर त्रिय लंपट कपट सयाने, मोह द्रोह ममता लपटाने।
तेइ अभेदबादी ग्यानी नर, देखा मैं चरित्र कलियुग कर।।

जो पराई स्त्री में आसक्त, ठगने में चतुर और मोह, द्वेष और ममता में फँसे हुए हैं, वे ही मनुष्य अभिवादी (अद्वैतवादी) ज्ञानी कहते हैं। मैंने कलियुग के ऐसे चरित्र देखे हैं।

आपु गये अरु तिन्हहू घालहिं, जे कहुँ सत मारग प्रतिपालहिं।

स्वयं तो नष्ट होते ही हैं और जो कोई अच्छे मार्ग पर चलते हैं, उनको भी नष्ट कर देते हैं।

भये बरन सङ्कर कलि, भिन्न सेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुःख, भय रुज सोक वियोग।।

सब लोग कलियुग से वर्ण शङ्कर और मर्यादा से च्युत हो गये। वे पाप करके

दुःख, भय, रोग, शोक और वियोग पाते हैं।

बहु दाम सँवारहिं धाम जाती, विषया हरि लीन्हि न रहि विरती।
तपसी धनवंत दरिद्र गृही, कील कौतुक तात न जात कही।

संन्यासी बहुत सा धन लगाकर घर सजाते हैं। वैराग्य उनमें नहीं रहा, उसे विषयों ने हर लिया हैं। तपस्वी धनवान् है और गृहस्थ दरिद्र! हे तात! कलियुग का कौतुक कुछ कहा नहीं जाता।

साधु के अनियत सुख विहार-निवास

(छहों ऋतु में 1-1 महीना व वर्षा ऋतु में प्रायः 5 महीना निवास व शेष 2 महीना ही विहार योग्य। एक दिन में 2 गव्यूति (प्रायः 4 कोस =8 मील = 13 कि.मी.) विहार करते। द्विगव्यूति ध्वानं गच्छति। सक्रोश योजने विहरन्ति (एक योजन और एक कोस क्षेत्र में विहार करते हैं = 5 कोस = 10 मील = 16 कि.मी.)।)

ऋतुषु षट्सु एकैकमेव मासमेकत्र वसतिरन्यदा विहरति इत्ययं नवमः स्थितिकल्पः। (भगवती आराधना)

छह ऋतुओं में एक-एक महीना ही एक स्थान पर रहना और अन्य समय में विहार करना नवम स्थितिकल्प है।

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल : 1. क्या मिलिए... 2. भातुकली...)

अनियत विहार का स्वरूप जानो,
द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावानुसार पहिचानो।
केवल चलना नहीं है अनियत विहार,
पावन उद्देश्य सह होता अनियत विहार।।(1)

दंसणसोधी ठिदिकरण भावणा अदिसयत्त कुसलत्तं।
खेत्त परिमग्गणावि य अणियदवासे गुणा होंति।।(44) भ.आ.

दर्शन विशुद्धि, स्थितिकरण भावना सह,

अतिशय अर्थों में निपुणता व क्षेत्र अन्वेषण।

ये है अनियतवास या विहार कारण,

इससे विपरीत या रिक्त नहीं है विधान।।(2)

वसधीसु य उवधीसु य गामे णयरे गणे य सण्णिजणे।

सव्वत्थ अपडिबद्धी समासदो अणियद विहार।।(155) भ.आ.

वसति या उपकरण ग्राम या नगर में,

श्रावकजन, संघ, गण, गच्छादि में।

जो न होते आसक्त या न रखते स्वामित्व,

वह है अनियत विहार यह आगम वर्णित।।(3)

छहों ऋतु में एक-एक मास निवास योग्य,

वर्षा ऋतु में प्रायः पञ्च मास निवास योग्य।

तीर्थकृतः विनेयजन सम्बोधनार्थं एव तीर्थविहारं कुर्वन्ति।

तीर्थंकर शिष्य जनों के सम्बोधन के लिए ही विहार करते हैं।

शास्त्र पठन, शक्ति अभाव, वैयावृत्ति आदि हेतु,

अधिक निवास योग्य, धर्म प्रभावनादि हेतु।।(4)

सुख विहार करते शेष काल धर्म निमित्त,

विशेष ज्ञानी सूरी के पास अध्ययन निमित्त।

स्वास्थ्य लाभ, तीर्थक्षेत्र, वन्दनादि निमित्त,

विहार न करते अप्रयोजन, निदान युक्त।।(5)

ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि वर्चस्व हेतु,

धन जन मान सम्मान बोली हेतु।

आरम्भ परिग्रह गृहस्थों के काम हेतु,

(विहारादि न करते) विवाह राजनीति कलह विग्रह हेतु।।(6)

दिग्व्रत देशव्रत पालन करते श्रावक,

सीमा-परे पाप से बचने निमित्त।

अतः साधु अप्रयोजन व उक्त पापकारक,

समस्त कार्य हेतु नहीं करते विहार/(निवास) तक।।(7)

भगवती आराधना से यह वर्णन हुआ,
साधु-श्रावक हित हेतु वर्णन किया।
आहार विहार निवास हो समुचित,
जिससे हो ध्यान-अध्ययनादि उचित।।(8)
अनावश्यक व अधिक विहार के कारण,
समयशक्ति साधनों का होता दुरुपयोग।
तन-मन भी होते रोगी व दुर्बल,
जिससे न होते ध्यान-अध्ययन प्रचुर।।(9)

मग्गुज्जोवुपओगालंवण सुद्धीहिं इरियदो मुणिणो।
सत्ताणुवीचि भणिदा इरियासमिदी पवयणम्मि।।(1185) भ.आ.

मार्गशुद्धि-उद्योतशुद्धि-उपयोगशुद्धि,
आलम्बन शुद्धि सहित होती ईर्या समिति।
प्रासुक-प्रकाशित मार्ग सह जीवरक्षा युक्त,
स्वाध्याय, स्वास्थ्यलाभ, वन्दना, शिष्य प्रतिबोधन युक्त।।(10)
ध्यान-अध्ययन मुख्य होता साधु धर्म में,
दान-पूजा मुख्य होता श्रावक धर्म में।
धर्म रूपी रथ के दोनों चक्र हो सन्तुलित,
इस हेतु 'सूरी कनक' सदा प्रयत्नरत।।(11)

मार्गशुद्धि, उद्योतशुद्धि, उपयोगशुद्धि और आलम्बन शुद्धि, इन चार शुद्धियों के द्वारा सूत्र के अनुसार गमन करते हुए मुनि के प्रवचन में ईर्यासमिति कही है।

मार्ग में चींटी आदि त्रस जीवों की अधिकता का न होना तथा बीज, अंकुर, तृण, हरे पत्ते और कीचड़ आदि का न होना मार्गशुद्धि है। सूर्य के प्रकाश का स्पष्ट फैलाव और उसकी व्यापकता उद्योतशुद्धि है। चन्द्रमा नक्षत्र आदि का प्रकाश अस्पष्ट होता है और दीपक आदि का प्रकाश व्यापक नहीं होता। पैर उठाने और रखने के देश में जीवों की रक्षा में चित्त की सावधानता उपयोग शुद्धि है। गुरु, तीर्थं, चैत्य और यति की वन्दना के लिए गमन करना आदि किसी के पास शास्त्र का अपूर्व अर्थ या अपूर्व शास्त्र के अर्थ का ग्रहण करने के लिए गमन करना, मुनियों के योग्य क्षेत्र की खोज

के लिए गमन करना, वैयावृत्य करने के उद्देश्य से गमन करना, अनियत आवास के उद्देश्य से गमन करना, स्वास्थ्य लाभ के लिए गमन करना, श्रम पर विजय पाने के लिए गमन करना, नाना देशों की भाषा सीखने के लिए गमन करना, शिष्य समुदाय का प्रतिबोधन करने के लिए गमन करना, इत्यादि प्रयोजनों की अपेक्षा गमन करना आलम्बन शुद्धि है। सूत्रानुसार गमन इस प्रकार है- न बहुत जल्दी और न बहुत विलम्ब से सामने युगमात्र भूमि देखकर चलना, पादनिक्षेप अधिक दूर न करना, भय और आश्चर्य के बिना गमन करना, लीलापूर्वक गमन न करना, पैर अधिक ऊँचा न उठाते हुए गमन करना, लांघना दौड़ना आदि नहीं, दोनों भुजा लटकाकर गमन करना, विकार रहित, चपलता रहित, ऊपर तिर्यक् अवलोकन रहित गमन करना, तरुण तृण पत्रों से एक हाथ दूर रहते हुए गमन करना, पशु पक्षी और मृगों को भयभीत न करते हुए गमन करना, विरुद्ध योनिवाले जीवों के मध्य से जाने पर उनको होने वाली बाधा को दूर करने के लिए पीछे से अपने शरीर की बार बार प्रतिलेखना करते हुए गमन करना, सामने से आते हुए मनुष्यों से न टकराते हुए गमन करना, दुष्ट गाय, दुष्ट बैल, कुत्ता आदि से चतुरतापूर्वक बचते हुए गमन करना, भुस तुष मसी, गीला गोबर, तृणसमूह, जल, पाषाण और लकड़ी तख्त से बचकर गमन करना, चोरी और कलह से दूर रहना और पुलपर न चढ़ना। ये सब करते हुए गमन करना ईर्यासमिति है।

पत्थं हिदयाणिट्ठं पि भण्णमाणस्स सगणवासिस्स।
कडुगं व ओसहं तं महुरविवायं हवइ तस्स।।35।।

'पत्थं हिदयाणिट्ठं पि भण्णमाणस्स सगणवासिस्स' पथ्यं हितं हृदयस्य अनिष्टमपि वदत आत्मीयगणे वसतः 'कडुगं व ओसहं तं महुरविवायं हवइ तस्स' कटुकमौषधमिवापि तन्मधुरविपाकं भवति। तस्य परस्य अनिष्टेन कथितेन किमस्माकं स्वं प्रयोजनम्। किन्न वेत्ति स्वयं इति नोपेक्षितव्यम्। परोपकारः कार्य एवेति कथयति। तथाहि- तीर्थकृतः विनेयजनसंबोधनार्थ एवं तीर्थ विहारं कुर्वन्ति। महत्ता नामैवं यत्- परोपकारबद्ध परिकरता। तथा चोक्तं-

क्षुद्राः संति सहस्त्रशः स्वभरणव्यापारमात्रोद्यताः।
स्वार्थो यस्य परार्थ एव स पुमानेकः सतामग्रणी।।

दुष्पूरोदरपूरणाय पिबति स्त्रोतः पतिं वाडवो।

जीमूतस्तु निदाघसंभृत जगत्संतापविच्छित्तये।।351

अपने गण के वासी साधु को हितकारी किन्तु हृदय को अनिष्ट भी लगने वाले वचन बोलना चाहिए, क्योंकि वे वचन कडुवी औषधी की तरह उसके लिए मधुर फलदायक होते हैं। दूसरे को अनिष्टवचन बोलने से हमारा अपना क्या प्रयोजन हैं, क्या वह स्वयं नहीं जानता। ऐसा मान उसकी उपेक्षा नहीं करना चाहिए। परोपकार करना ही चाहिए। जैसे तीर्थंकर शिष्यजनों के सम्बोधन के लिए ही विहार करते हैं। महत्ता नाम इसी का है कि परोपकार करने में तत्पर रहना।

अपने ही भरण पोषण में लगे रहने वाले क्षुद्रजन तो हजारों हैं किन्तु परोपकार ही जिसका स्वार्थ है ऐसा पुरुष सज्जनों में अग्रणी विरल ही होता है। बड़वानल अपना कभी न भरनेवाला पेट भरने के लिए समुद्र का जल पीता है। किन्तु मेघ ग्रीष्म से संतप्त जगत् के सन्ताप को दूर करने के लिए समुद्र का जल पीता है।

पत्थं हिदयाणिट्ठं पि भण्णमाणं णरेण घेत्तव्वं।

पेल्लेदूण वि छूढं बालस्स घदं व तं खु हिदं।।360।।

कानों को अप्रिय भी गुरु का वचन ग्रहण करना चाहिए-

हृदय को अनिष्ट भी वचन गुरु के द्वारा कहे जाने पर मनुष्य को पथ्य रूप से ग्रहण करना चाहिए। जैसे बच्चे को जबरदस्ती मुँह खोलकर पिलाया गया घी हितकारी होता हैं उसी प्रकार गुरु के कटु वचन भी हितकारी होते है।

मोहोदयेण जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि।

सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं अणुवइट्ठं वा।।39।।

मोह के उदय से जीव उपदिष्ट प्रवचन का श्रद्धान नहीं करता। किन्तु उपदिष्ट अथवा अनुपदिष्ट समीचीन भाव अर्थात् अतत्त्व का श्रद्धान करता है। जो जीव उपदिष्ट प्रवचनों को मोह के उदय से श्रद्धान नहीं करता और उपदिष्ट और अनुपदिष्ट असद्भाव का श्रद्धान करता है वह मिथ्यादृष्टि है। यहाँ मोह से दर्शनमोहनीय कर्म लेना। उनमें मद्य के समान शक्ति होती है जैसे मद्य का सेवन बुद्धि को मन्द और विपरीत कर देता है। वही दशा इस दर्शन मोहनीय कर्म की है।

मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विवरीयदंसणो होदि।

णय धम्मं रोचेदि हु महुर खुरसं जहा जरिदो।।40।।

मिथ्यात्व को वेदन-अनुभव न करने वाला जीव विपरीत श्रद्धावाला होता है। उसे धर्म नहीं रुचता। जैसे ज्वर से ग्रस्त व्यक्ति को निश्चय से मधुर रस नहीं रुचता। मद्य के समान ही मिथ्यात्व कर्म भी है। उसका उदय सहकारी कारण का सान्निध्य पाकर अपना कार्य करने में कटिबद्ध होता है। अतः उसके उदय के कारण शास्त्र में कहे गये वस्तु के यथार्थ स्वरूप का श्रद्धान नहीं करता, और कहे गये या बिना कहे अतत्त्व का श्रद्धान करता है।

सुविहियमिमं पवयणं असद्दहंतेणिमेण जीवेण।

बालमरणादि तीदे मदाणि काले अणंताणि।।(41)

अच्छी तरह से किये गये इस प्रवचन को अश्रद्धान करने वाले जीव ने अतीतकाल में अनन्त बाल मरण मरे।

पूर्वापर विरोध नामक दोष से रहित होने से तथा वस्तु के यथार्थ स्वरूप को ग्रहण करने वाले ज्ञान का कारण होने से प्रवचन को सुविदित कहा है। ऐसे प्रवचन का श्रद्धान न करने के दोष से इस जीव को अतीत काल में अनन्त बार बाल मरण से मरना पड़ा है।

प्रश्न-चातुर्मास(वर्षायोग) की स्थापना एवं निष्ठापन क्रिया रात में या दिन में करनी चाहिए?

उत्तर : यह विधि आगम में दिन को करने का वर्णन नहीं पाया जाता हैं। आगम में यथाक्रम में रात्रि के प्रथम प्रहर एवं अंतिम प्रहर में करने का निर्देश है। यथा-

ततश्चतुर्दशी पूर्वरात्रे सिद्धमुनिस्तुति।

चतुर्दिक्षु परीत्यालयाश्चैत्यभक्तिर्गुरु स्तुतिम्।।(66)

शान्तिभक्तिं च कुर्वाणैर्वर्षायोगस्तु गृह्यताम्।

ऊर्जकृष्ण चतुर्दश्यां पश्चाद्रात्रौ य मुच्यताम्।।(अ.धर्मा)

ऊपर भक्त प्रत्याख्यान को ग्रहण करने की जो विधि बताई है तदनुसार उसको ग्रहण करने के अनंतर आचार्य प्रभृति साधुओं को वर्षायोग का प्रतिष्ठापन

करना चाहिए और चातुर्मास के अंत में उसका निष्ठापन करना चाहिए। इस प्रतिष्ठापन और निष्ठापन की विधि इस प्रकार है।

चार लघु चैत्यभक्यिों को बोलते हुए और पूर्वादिक चारों दिशाओं की तरफ प्रदक्षिणा देते हुए आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशी की रात्रि को पहले ही प्रहर में सिद्धभक्ति और योगभक्ति का भी अच्छी तरह पाठ करते हुए और पंचगुरु भक्ति तथा शांति भक्ति को भी बोलकर आचार्य और इतर संपूर्ण साधुओं को वर्षायोग का प्रतिष्ठापन करना चाहिए।

भावार्थ : पूर्व दिशा की तरफ मुख करके वर्षायोग का प्रतिष्ठापन करने के लिए ''यावन्ति जिनचैत्यानि इत्यादि श्लोक का पाठ करना चाहिए। पुनः आदिनाथ भगवान् और दूसरे अजितनाथ भगवान् इन दोनों का ही स्वयूभू स्तोत्र बोलकर अंचलिका सहित चैत्यभक्ति करनी चाहिए। वह पूर्व दिशा की तरफ के चैत्य-चैत्यालय की वन्दना है। इसी प्रकार दक्षिण, पश्चिम और उत्तर की तरफ वन्दना भी क्रम से करनी चाहिए।''

अंतर इतना है कि जिस प्रकार पूर्व दिशा की वंदना में प्रथम द्वितीय तीर्थंकर का स्वयंभूस्त्रोत बोला जाता है उसी प्रकार दक्षिण दिशा की तरफ तीसरे, चौथे संभवनाथ और अभिनंदनाथ का तथा पश्चिम की तरफ की वन्दना करते समय पाँचवे, छट्ठे सुमतिनाथ और पद्मप्रभु भगवान् का और उत्तर दिशा की वन्दना करते समय सातवें आठवें सुपार्श्वनाथ और चन्द्रप्रभु का स्वयंभू स्तोत्र बोलना चाहिए। और बाकी क्रिया पूर्वदिशा के समान ही समझना चाहिए। यहाँ पर दिशाओं की तरफ प्रदक्षिणा करने के लिए जो लिखा है उस विषय में वृद्धसम्प्रदाय ऐसा है कि पूर्वदिशा की तरफ मुख करके और उधर की वन्दना करके वहाँ बैठे-बैठे केवल भाव रूप से ही प्रदक्षिणा करनी चाहिए। यह वर्षायोग के प्रतिष्ठापन की विधि है यही विधि निष्ठापन में भी करनी चाहिए। अर्थात् कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की रात्रि के अंतिम प्रहर में पूर्वोक्त विधान के अनुसार ही आचार्य और साधुओं को वर्षायोग का निष्ठापन कर देना चाहिए।

इस वर्षायोग की विधि में भी जो विशेषता है। उसको श्लोक में बताते हैंः

मासं वासोऽन्यदैकत्र योगक्षेमं शुचौ व्रजेत्।
मार्गऽतीते त्यजेच्चार्थवशादपि न लंघयेत्।।

नभश्चतुर्थी तद्याने कृष्णां शुक्लोर्जपंचमीम्।

यावन्न गच्छेत्तच्छदे कथंचिच्छेदमायरेत्।।

वर्षायोग के सिवाय दूसरे समय-हेमन्त आदि ऋतु में भी आचार्य आदि श्रमण संघ को किसी भी एक स्थान पर या नगर आदि में एक महीने तक के लिए निवास करना चाहिए। तथा आषाढ़ में मुनिसंघ को वर्षायोग स्थान के लिए जाना चाहिए। अर्थात् जहाँ चातुर्मास करना है वहाँ आषाढ़ में पहुँच जाना चाहिये। और मृगसिर महीना पूर्ण होने पर उस क्षेत्र को छोड़ देना चाहिए। परन्तु और भी विशेष है कि उस योगस्थान पर जाने के लिए श्रावण कृष्ण चतुर्थी का अतिक्रमण कभी नहीं करना चाहिए।

भावार्थ : यदि कोई धर्मकार्य का ऐसा विशेष प्रसंग उपस्थित हो जाये कि जिसमें रूक जाने से योगक्षेत्र में आषाढ़ भीतर पहुँचना न बन सके तो श्रावण कृष्णा चतुर्थी तक पहुँच जाना चाहिये। परन्तु इस तिथि का उल्लंघन किसी प्रयोजन के वशीभूत होकर भी करना उचित नहीं है। इसी प्रकार साधुओं को कार्तिक शुक्ल पंचमी तक योगक्षेत्र के सिवाय अन्यत्र प्रयोजन रहते हुए भी विहार न करना चाहिये। अर्थात् यद्यपि वर्षायोग का निष्ठापन कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को हो जाता है फिर भी साधुओं को कार्तिक शुक्ल पंचमी तक उसी स्थान पर रहना चाहिए। यदि कोई कार्य विशेष हो तो भी तब तक उस स्थान से नहीं जाना चाहिये।

यहाँ पर जो वर्षायोग धारण करने की विधि बताई है उसमें यदि किसी घोर उपसर्ग आदि के आ उपस्थित होने से विच्छेद पड़ जाय अर्थात् किसी कारण से उसके समय आदि का अतिक्रम हो जाय तो साधुसंघ को उचित है कि उसके लिए प्रायश्चित धारण करें।

प्रश्न : साधु एक स्थान में अधिक समय क्यों निवास नहीं करते हैं?

उत्तर : आगम में कहा है कि साधु एक स्थान में अधिक निवास करेंगे तो वे सुखाभिलाषी, प्रमादी, निवास स्थान तथा वहाँ रहने वाले, सेवा करने वाले, आहार देने वालों के प्रति रागी हो जायेंगे।

विभिन्न स्थानों का ज्ञान नहीं हो पायेगा, विभिन्न संघों के अनुभव से ही वंचित हो जायेंगे। अनियत विहार से उपर्युक्त दोषों के विपरीत गुण उत्पन्न होंगे।

अनियत विहार निवास के गुण का वर्णन आगम में निम्नप्रकार से किया है।

दर्शन विशुद्धि, स्थिति करण भावना, अतिशय अर्थों में निपुणता और क्षेत्र का अन्वेषण ये अनियत स्थान में बसने में गुण होते हैं। (गाथा, 144) भग. आराधना

जिनदेवों के जन्म-स्थान, दीक्षास्थान, केवलज्ञान की उत्पत्ति का स्थान और समवशरण के चिन्ह, मानस्तम्भ का स्थान निषीधिका स्थान देखने वाले के सम्यक् रूप से निर्मल सम्यग्दर्शन होता है। (गाथार्थ 145)

सम्यक् आचार और अनशन आदि तप से युक्त विशुद्ध लेश्या वाले मुनियों का अनियतवास सम्यक् आचार वाले योग के धारी सम्यक्लेश्या वाले और संसार से भीत साधुओं में संसार में भय उत्पन्न करता है। सम्यक्चारित्र, सम्यक्ता और शुद्ध लेश्या में वर्तमान अनियत विहारी साधु को देखकर सभी सम्यक्चारित्र वाले, सम्यक्तप करने वाले और लेश्या वाले यतिगण अत्यन्त संसार से भीत होते हैं। वे मानते हैं कि हम संसार से वैसे भीत नहीं है जैसे यह भगवान् मुनिराज हैं अतएव हमारा चारित्र और तप सदोष है।

अर्थात् सम्यक् आचार, तप और विशुद्ध लेश्या वाले अनियत विहारी साधु को देखकर अन्य मुनि जो सम्यक् आचारवान् हैं, तपस्वी हैं, विशुद्ध लेश्या वाले हैं वे भी प्रभावित होकर और भी अधिक आचार तप और लेश्या विशुद्धि में बढ़ने के लिए प्रयत्नशील होते हैं। यह अनियतवास से परोपकार होता है, दर्शनविशुद्धि का लाभ तो अपना उपकार है।

जो उत्तम क्षमा आदि धर्म का पालक है और पाप से डरता है, सुत्र और उसके अर्थ में निपुण है, शठता से रहित है, ऐसा सदा देशान्तर में विहार करने वाला साधु दूसरों में विराग उत्पन्न करता है। (गाथार्थ नं. 147)

संविग्नतर प्रिय धर्मतर और अवद्य भीरुतर साधु को देखकर विहार करने वाला साधु स्वयं प्रिय स्थिर धर्मतर संविग्नतर और अवद्यभीरू होता है।।।148।।

अनेक देशों में विहार करने से चर्या, भूख-प्यास, शीत और उष्ण का दुःख संक्लेश रहित भाव से सहना होता है। वसति में भी ममत्व से रहित रहने में आता हैं। यहाँ चर्या शब्द से चर्या से होने वाले दुःख का ग्रहण किया गया है। जूता अथवा अन्य किसी वस्तु से अपने पैरों की रक्षा नहीं करने वाले साधु के चलते हुए तीक्ष्ण

कंकड़, पत्थर, काँटे आदि से पैर छिद जाते अथवा गर्म धूलि से पैर झुलस जाते हैं। उसके दुःख को बिना संक्लेश से सहना चार्य भावना है।

अनजान देश में जहाँ पूर्व में कभी साधुओं का जाना नहीं हुआ और अनाज का संग्रह भी कम है, वहाँ योग्य भिक्षा के न मिलने से उत्पन्न हुआ भूख का दुःख सहना होता है। बहुत समय तक एक स्थान पर बसने से मनुष्य परिचित होने से अथवा उदारता वश भिक्षा देते हैं इसलिए भिक्षा में बड़ा श्रम नहीं होता। शीत-उष्ण से शीत स्पर्श और उष्ण स्पर्श से होने वाला दुःख यहाँ लिया है। उसका अनुभवन अर्थात् संक्लेश रहित भाव पूर्वक सहना होता है तथा रहने के लिए जो वसतिका प्राप्त होती है उसमें भी 'यह मेरी है' ऐसा भाव नहीं रहता। ये सब विहार करने वाले मुनियों को सहना होता है। ।।149।।

देशान्तर में जाने से अनेक देशों के सम्बन्ध में कुशल हो जाता है। अनेक देशों में पाये जाने वाले शास्त्रों के शब्दार्थ के विषय में कुशल होता है। (गाथार्थ 150)

आचार्यों के दर्शन से ही सूत्र और अर्थ का स्थिरीकरण और अतिशयित अर्थों की उपलब्धि होती है। इसलिए आचार्य की सेवा करनी चाहिए। (151)

प्राणों के कण्ठ में आ जाने पर भी साधु को आगम का अभ्यास अवश्य करना चाहिए। जैसे वह सूत्र का अर्थ का और समाचारी का अभ्यास करता है। उसी प्रकार उसे आगम का अभ्यास करना चाहिए। (153)

जिस क्षेत्र में संयमी जन का प्रासुक विहार और सुलभ आहार हो, वह क्षेत्र देशान्तर में भ्रमण करने वाले सल्लेखना के योग्य जानता है। (154)

वसतियों और उपकरणों में, ग्राम में, नगर में, संघ में और श्रावक जन में सर्वत्र यह मेरा है, इस प्रकार संकल्प से रहित साधु संक्षेप से अनियत विहारी होता है। वसति, उपकरण, ग्राम, नगर गण और श्रावक जन में सर्वत्र अप्रतिबद्ध है, यह वसति आदि मेरी है और मैं इसका स्वामी हूँ, इस प्रकार के संकल्प से रहित है उसे संक्षेप में अनियत विहारी जानना, इस प्रकार अनियत विहार समाप्त हुआ। (155)

उवसंतादीणमणा उवक्खसीला हवंति मज्झत्था।
णिहुदा अलोलमसठा अविहिंभया कामभोगेषु।।(806)(मूलाचार)

वे उपशान्त भावी दीन मन से रहित उपेक्षा स्वभाव वाले, जितेन्द्रिय, निर्लोभी,

मूर्खता रहित और काम भोगों में विस्मय रहित होते हैं।

आगम में यह भी निर्देश है कि ग्राम में (1-2) दिन निवास करें और शहर में अधिक (4-5) दिन निवास करें। उपर्युक्त विषय सब सत्य होंगे, अभी भी मनोवैज्ञानिक, अनुभव परक है। परन्तु कुछ नवीन विषय भी अनुभव में आ रहे हैं।

(1) जैसे कि ऊपर कहा गया कि जिनदेव के जन्मस्थानादि के दर्शन से निर्मल सम्यग्दर्शन होता है। परन्तु वर्तमान में अधिकांश तीर्थक्षेत्र का वातावरण रागद्वेष, कलह, फूट, पंथवाद, दुषित राजनीति से प्रदूषित है। वहाँ धर्मात्मा से भी धनात्मा को अधिक महत्व मिलता है। साधुओं के आहार, विहार निवास, ध्यान, अध्ययन आदि की व्यवस्था समुचित नहीं होती है। तीर्थक्षेत्र में साधुओं को और भी अधिक संक्लेश होता है।

(2) विहार में साधु परस्पर मिलते हैं। इससे ज्ञान, वैराग्य अनुभवादि का आदान-प्रदान होता है। परन्तु प्रायोगिक रूप से अनुभव में आता है कि अनेक साधु परस्पर मिलते नहीं हैं। कदाचित मिलने पर आगमोक्त वात्सल्यभाव से मिलते नहीं हैं, परन्तु नमोस्तु, प्रतिनमोस्तु करते नहीं हैं अपितु एक दूसरों की वास्तविक या अवास्तविक भी गलती को उछालकर निन्दा, विवाद, कलह करते हैं। जिससे और भी अधिक अप्रभावना होती है।

(3) ग्राम में कम दिन एवं शहर में अधिक रहने की परिस्थिति अभी नहीं है। शायद प्राचीन काल में प्रत्येक ग्राम-नगरादि में जैन श्रावक अधिक मात्रा में होते थे और उनका अनुपात शहर में ग्राम से अधिक होता होगा। प्राचीन काल में शहर में आधुनिक औद्योगिकरण नहीं होने के कारण वर्तमान के जैसे प्रदूषण नहीं होना स्वाभाविक था। इसलिए ग्राम से भी शहर में अधिक रहने का निर्देश है। इसके साथ-साथ प्राचीन काल में सदाचार सम्पन्न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, जैन, जैनेतर भी आहार वसतिकादि देकर साधु की सेवा करते थे। परन्तु वर्तमान में उपर्युक्त परिस्थिति में महान् अंतर है। कुछ ग्राम एवं नगर में जैन श्रावक एक भी नहीं रहते हैं। कुछ स्वयं को श्रेष्ठ जैन कहने वाले, साधुओं की सेवा करने की बात तो दूर रहे उन्हें गाली देते हैं, कष्ट देते हैं। कुछ शहर में जैनी तो रहते हैं और धार्मिक भी होते हैं। गुरुओं की सेवा भी करते हैं परन्तु वे इतनी दूर-दूर रहते हैं और अपने गृहकार्य में इतना व्यस्त

रहते हैं कि रोज साधुओं के दर्शन तक नहीं कर पाते हैं आहारादि देना तो दूर रहे, वर्तमान में शहर में तीव्रता से जनसंख्या की वृद्धि होने से साधुओं के लिए आवास, शौच, मूत्र-त्याग आदि की भी व्यवस्था नहीं होती है। प्रदूषण के कारण साधुओं को शुद्ध भोजन, पानी एवं प्राणवायु तक नहीं मिलती है। इसके कारण साधुओं का स्वास्थ्य खराब हो जाता है, ध्यान, अध्ययन साधना भी व्यवस्थित नहीं होती है। इसलिए वर्तमान युग में शहर में रहना साधुओं के लिए योग्य नहीं है। अभी भी राजस्थान, कर्नाटक, मध्यप्रदेशादि ग्रामांचल में जैनियों की संख्या अच्छी है। भावना, भक्ति और व्यवस्था भी अच्छी है। इसलिए ऐसे स्थानों में साधुओं को विहार करना चाहिए। इसमें भी वहाँ के जैनियों की संख्या, श्रद्धा सेवा, व्यवस्था को देखकर निवास करना चाहिए। जिस ग्राम में उपर्युक्त व्यवस्था है वहाँ चातुर्मास में तो 4-5 महीना निवास कर सकते हैं और अन्य समय में ऋतुयोग के अनुसार एक-एक महीना निवास कर सकते हैं। यथा-

ऋतुषु षट्सु एकैकमेव मासमेकत्र वसतिरन्यदा-
विहरति इत्ययं नवमः स्थितिकल्पः।।(भगवती आ)

छह ऋतुओं में एक-एक महीना ही एक स्थान पर रहना और अन्य समय में विहार करना नवम स्थितिकल्प है। यह नियम भी तथ्यपूर्ण है। यदि ऋतु प्रकोप के समय में विहार किया जायेगा तो साधुओं को अनेक शारीरिक पीड़ा के साथ-साथ असंयम की संभावना रहती है। जैसा कि अधिक शीत(सर्दी) में विहार करने से जुकाम, खांसी, निमोनियादि रोग होने की संभावना रहती है। इस समय में घना कोहरा होने से ईर्यापथशुद्धि भी नहीं हो सकती है। इसी प्रकार से ग्रीष्म ऋतु में विहार करने से शरीर के जलकण सूख जाते हैं। गरमी एवं पित्त बढ़ जाता है। गला, मुँह सूख जाते हैं, जिससे पित्तज्वर, लू-लगना, वान्ति हैजा, अलसर, चक्कर आना, पीलिया आदि भयंकर रोग हो जाते हैं इसके साथ-साथ जहाँ ऋतुयोग होता है वहाँ प्रवचन, शिविर, कक्षा, आहारदानादि से प्रभावना होती है। परन्तु 1-2 दिन निवास करने से उपर्युक्त अच्छे काम नहीं हो पाते हैं। साधुओं की सेवा आहारदान व्यवस्था भी उत्तम रूप से नहीं हो पाती हैं। 2-3 दिन निवास के

अनन्तर विहार करके पुनः कुछ दिन के बाद शीघ्र आने से भी वहाँ के लोगों में भावना जागृत नहीं होती है। इस ही प्रकार अधिक काल तक एक ही स्थान में रहने से भावना-व्यवस्था मन्द पड़ जाती है।

शास्त्र में कहा गया है कि एक स्थान में अधिक दिन रहने से रोग बढ़ जाता हैं, परन्तु अनुभव में यह भी आ रहा है कि कुछ में तो राग बढ़ता है परन्तु अधिकांश में द्वेष बढ़ता है साधुओं के प्रति अनादार अवज्ञा भी बढ़ती है। एक कवि ने कहा भी है-

अति परिचित से होत है अनीति अनादर भाई।
मलयगिरि की भीलनी चन्दन देत जलाय।।

नवे भवति खलु प्रीति : अर्थात् नवीन में प्रीति होती है। इसलिये साधुओं को न एक स्थान में अधिक समय रहना चाहिए या कम समय रहकर पुनः-पुनः वहाँ आना चाहिए। जहाँ भावना, भक्ति, व्यवस्था है वहाँ चातुर्मास में 4-5 महीना रहना चाहिये और ऋतु योग में एक-एक महीना रुकना चाहिए और शीतऋतु में विशेषतः अनुकूल वातावरण में विहार करना चाहिए।

प्रश्न : परसंघ के आगन्तुक, (पादोष्ण)साधु के साथ स्थानीय, (वास्तव्य) साधुओं का परस्पर व्यवहार कैसा होना चाहिए?

उत्तर : आगन्तुक साधु के साथ स्थानीय साधुओं का व्यवहार वात्सल्य पूर्ण, विनय से युक्त, सेवा, (वैयावृत्ति) से सहित होना चाहिए। उनके स्वागत के लिए कुछ दूर जाना चाहिए। उन्हें यथायोग्य नमोस्तु, प्रतिनमोस्तु करना चाहिए। उनकी वसतिका आदि की भी व्यवस्था करनी चाहिए। उनके रत्नत्रय, सुख-साता की कुशलता के बारे में पूछना चाहिए। उनके साथ भेदभाव, रागद्वेष, तू-तू, मैं-मैं पूर्ण व्यवहार न करके आत्मीयता पूर्ण व्यवहार करना चाहिए। रास्ते की थकान को दूर करने के लिए उनकी शारीरिक सेवा करनी चाहिए। आगंतुक साधु को भी स्थानीय साधुओं को यथायोग्य नमोस्तु, प्रतिनमोस्तु आदि करके विनय करना चाहिए, वात्सल्यपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। किसी प्रकार के वास्तविक, अवास्तविक दोष को लेकर झगड़ा, वाद, विवाद, ईर्ष्या, घृणा नहीं करना चाहिए।

वर्तमान काल में विपरीत प्रवृत्तियाँ (विडम्बनायें)

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल : 1. आत्मशक्ति... 2. क्या मिलिए...)

कलिकाल है पंचमकाल हुण्डावसर्पिणी यह विषम काल।
न्याय नीति सदाचार रहित लोग काम भोग व मोहासक्त।।
परमार्थ के बदले स्वार्थनिष्ठ दया दान सेवा परोपकार रिक्त।
पढ़ाई, बढ़ाई, चमड़ी दमड़ी आसक्त, फेइम नेम गेइन आसक्त।।(1)
श्रद्धा-प्रज्ञा व चर्या सम्यक् रिक्त, खाओ, पीओ, मजा आसक्त।
परप्रतिस्पर्द्धा अन्धानुकरण युक्त, दुबुद्धि दुर्व्यवहार उद्दण्ड युक्त।।
''अतिथिदेवो भवः'' पूर्व में भारत, ''कुत्ता से सावधान'' अभी द्वार युक्त।
आहार-औषधि-ज्ञान-अभयदानयुक्त, अभी तो गुरु माता पिता से भी विमुख।।(2)
शुद्ध भोजन करते थे गृह-निर्मित, मलत्याग करते थे बाहर एकान्त।
अशुद्ध भोजन करते अभी गृह के बाहर, मलत्याग करते अभी गृह के अन्दर।।
विवाह धार्मिक भोज के आयोजन, बैठकर खाते थे पंक्तिरूप में।
परोसते प्रियजन आदर मनुहार से, अभी बफर सिस्टम में सभी नौकरों से।।(3)
आध्यात्मिकमय था पूर्व में धर्मकर्म, तपत्यागज्ञानध्यान प्रवचन।
अभी भौतिकमय चार्वाक् समान, ढ़ोंग आडम्बर भीड धन प्रधान।।
शक्ति भक्ति अनुसार दान देय, चार प्रकार दान (व) दयादत्ति देय।
दान अभी भीड प्रदर्शन में बोली, प्रसिद्धि वर्चस्व कामना हेतु।।(4)
गुरुभक्ति होती थी मुक्तिनिमित्त, अभी भक्ति सत्ता-सम्पत्ति निमित्त।
जीवन्त व स्थानीय गुरु की नहीं सेवा, मरे हुए व दुरस्थ गुरु हेतु यात्रा।।
चातुर्मास विधान प्रवचन प्रतिष्ठा, केंशलोंच आदि सभी धर्मसाधना।
अभी सभी है मानसम्मान भीड़ हेतु, बोली प्रदर्शन, भोजन हेतु।।(5)
वर्षायोग होता अहिंसा पालन हेतु, आत्मसाधना ध्यान-अध्ययन हेतु।
अभी होता आडम्बरपूर्ण आयोजन हेतु, धन-जन-मान-सम्मान हेतु।।
अनियत विहार है ज्ञानार्जन हेतु, शिष्यप्रबोधन से ले वन्दना हेतु।

स्वास्थ्यलाभ, वैयावृत्त क्षेत्र अन्वेषण हेतु, अभी तो ख्यातिपूजाधनजन हेतु।।(6)
ज्ञानवैराग्य हेतु स्वाध्याय पंच, अभी प्रवचन हेतु पाण्डाल मंच।
मान-सम्मान भीड़ बोली प्रमुख, कथा चुटकुला मनोरंजन मुख्य।।
''वन्देतद्गुणलब्धये'' हेतु पूजा, विधान प्रतिष्ठा, प्रार्थना, तीर्थयात्रा।
शुभभाव से पुण्यबन्ध विशेष, अभी इस में संक्लेश, कामना।।(7)
धर्म अर्थ काम मोक्ष पुरूषार्थ, अर्थ-काम अभी प्रमुख पुरूषार्थ।
सच्चे धार्मिक अभी भी महान् सच्चे धार्मिक ही बनते भगवान्।।(8)

वायु प्रदूषण से तीन साल कम हुई आदमी की उम्र

लंदन। वायु प्रदूषण ने आदमी की उम्र औसतन 3 साल तक घटा दी है। एक रिसर्च के मुताबिक तंबाकू से उम्र करीब 2.2 साल, एचआईवी/एड्स से 0.7 साल, मलेरिया, फ्लू से 0.6 साल तक घटती है। 60 वर्ष से अधिक उम्र के लोगों की मौत के 75% के लिए वायु प्रदूषण जिम्मेदार है।

क्या जैन धर्म और जैन समाज एक डूबने वाला जहाज है।

-निरंजन चव्हाण

- सबसे बड़ा कारण यह है कि जैन धर्म अब सिर्फ धर्म नहीं रहा, यह अब एक जाति बन गई है। जैन अब उसे माना जाता है जो एक जैन घर में पैदा हुआ हो, चाहे वह जैन धर्म का पालन करें या न करे।

- जैन अब एक जाति बन गई यह इससे भी सिद्ध होता है कि इनके दरवाजे दूसरों के लिए बंद हो चुके हैं।

- जैन धर्म और जैन समाज का कोई भविष्य नहीं है, इसका दूसरा कारण यह है कि इस समाज के तथाकथित अखिल भारतीय और स्थानीय नेताओं के पास कोई विजन नहीं है, ना ही जैन मुनियों के पास कोई विजन है। सब मुनि सम्प्रदायवादी बन चुके हैं और अपने अपने संप्रदाय को बढ़ावा दे रहे हैं। वैसे भी मुनि हो या नेता या फिर आम जनता, उन्हें जैन धर्म से कोई लेना-देना नहीं है, सबको अपना अपना संप्रदाय ही प्यारा है।

- एक सच्चा जैन उदारवादी विचारों का होता है। उसके मन में कोई भेदभाव

नहीं होता, किसी से द्वेष नही रखता, उसका मन करुणामय होता है। वह युद्ध-दंगे आदि का समर्थन नहीं करता है, ना ही उसे युद्धज्वर चढ़ता है। लेकिन वास्तव में आम जनता तो क्या, कई मुनि और आचार्यों को भी युद्ध ज्वर चढ़ता हुआ दिखाई दे रहा है।

- हम देखते हैं कि ज्यादातर लोग करुणाभाव से दूर हो गये हैं। भले ही जानवरों के प्रति उनके मन में करुणा हो, इंसान के प्रति कई जैन नफरत ही पाल रहे हैं और ज्यादातर जैन लोग ऐसे भी हैं जो जैन धर्म के दूसरे संप्रदायों से नफरत पालते हैं।

- इस पढ़े-लिखें समाज में लड़कियों की संख्या काफी कम है, इसका राज छुपा नहीं है। मजे की बात यह है कि लड़कियों की कमी के कारण इस समाज के कई लड़कों की शादी नहीं हो पाती, तो दूसरे गरीब समाज की लड़की खरीद कर लाते हैं और उससे शादी करते हैं।

- वैसे तो आप जानते ही हैं कि जैन मुनियों के पास धर्म और समाज के भविष्य के बारे में सोचने के लिए बिल्कुल समय नहीं है, क्योंकि उनका समय तो शासन देवता की पूजा करें या न करें, जलाभिषेक करें या दुग्धाभिषेक, स्त्रियों को अभिषेक करना चाहिए या नहीं पूजा ऐसी करे या वैसी करें आदि-आदि अति महत्वपूर्ण बातों की चर्चा करने में ही जा रहा है।

- समाज की घटती आबादी की चिंता ना जैन नेताओं को है, ना ही जैन मुनियों को है।

- अब जैनी केवल आधा प्रतिशत से भी कम बच गए हैं, 135 करोड़ में 45 लाख।

- तो यह एक डुबने वाला जहाज है, जिसे पूरी तरह डुबने से कोई रोक नहीं सकता। जो समाज अपने धर्म से, धर्म के विचारों से प्रामाणिक नहीं है, इसके साथ ऐसा होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जिस प्रकार व्यक्ति के कर्म का फल होता है, उसी प्रकार समाज के सामुहिक कर्म का भी फल होता है। **ॐ शान्ति।**

दिशाबोध : फरवरी 2020

वीतरागी पर श्रद्धान इसलिए कि उनके उपदेश और आचरण में विरोधाभास नहीं है।

-डॉ. निर्मल जैन, (सेवानिवृत जज) दिल्ली

- यह सामान्य धारणा है कि पूजा तब ही सार्थक समझी जाती है, जब पूजा से कोई प्रसन्न होकर वांछित फल देता है। पूजा से किसी का प्रसन्न होना, इस बात का आभास दिलाता है कि जिसकी पूजा की जा रही है, या तो वह पूजा के बिना अप्रसन्न रहता है अथवा पूजा करने के बाद उसकी प्रसन्नता में वृद्धि होती है। हमारे वीतराग देव के बारे में ऐसा कुछ भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह ना तो किसी पर प्रसन्न हैं और ना ही किसी से अप्रसन्न होते हैं। ना कोई किसी प्रकार की इच्छा रखते हैं जिसकी पूर्ति पर उनकी प्रसन्नता अप्रसन्नता या उसमें वृद्धि निर्भर करती हो।

- फिर यह सब जो नाना प्रकार के विधान, अनुष्ठान किए जा रहे हैं उनका उद्देश्य, क्या वीतरागी को प्रसन्न करके समाज, परिवार या व्यक्ति का कोई अनिष्ट टालने के लिए है? **अगर ऐसा है तो इन सब संभावनाओं, फल प्राप्ति की आशाओं से पूजा करने पर वीतराग की वीतरागता पर शंका करना होगा** और उन्हें भी अन्य देवी-देवताओं, जिन्हें हमारे धर्म गुरु कुदेव की संज्ञा देते हैं, रागी-द्वेषी मानना होगा। तब एक सबसे बड़ा ज्वलन्त प्रश्न उपस्थित होता है कि फिर पूजा, क्यों, किसकी पूजा और किस प्रकार की पूजा? या फिर क्या पूजा की ही न जाय?

- पूजा जरूर की जाये, लेकिन उसका ध्येय हो उन तीर्थंकर के पुण्य और गुणों का स्मरण, भाव पूर्ण अनुचिंतन, जो हमारी आत्मा में छिपे अशुभ भाव, विकार और पापमल को छुड़ाकर हमारे चित्त को निर्मल और पवित्र बनाते हैं। पूजा की रीति कोई भी हो, पर वह मार्ग पूर्ण अहिंसक एवं आडम्बर रहित होना चाहिए क्योंकि हमारे तीर्थंकर मुक्ति मार्ग में बाधक बनते दिख रहे, बड़े-बड़े राजमहल, राजसी ठाट-बाट, सारे सांसारिक आडम्बरों को त्यागने के बाद अहिंसा के मार्ग पर चलकर ही इस पद पर प्रतिष्ठित हुए हैं।

- तो क्या यह सब हमारे लिए शोभनीय है कि उसी तीर्थंकर के नाम पर, तीर्थंकर की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करने के लिए हम उसी भव्यता और **शान-शौकत में**

जकड़कर, धर्म के सिंहासन पर बैठ, आडम्बरों को माध्यम बनाकर, अपने यश और कीर्ति की पताका फहराने के लिए चढ़ावा की डोरी थामे, नीलामी की बोलियों के पायदान पर खड़े होकर कही समाज के लिए किसी संकट का निमंत्रण तो नहीं दे रहे हैं? क्योंकि ऐसे वीतरागी तीर्थंकर की आराधना और उनपर श्रद्धान रखने का कारण उनका तीर्थंकर होना नहीं, और उनके उपदेशों और आचरण में कही भी कोई विरोधाभास नहीं होना है।

- **इन दिनों हम धर्म के कथाकथित आडम्बरों में उलझ गए हैं। हमारा व्यवहारिक जीवन अलग चलता है और धार्मिक जीवन अलग। दोनों में एकरूपता तो क्या, कोई तालमेल तक नहीं रह गया है। श्रमण धर्म से श्रम की प्रतिष्ठा समाप्त हो गई है। धर्म धन का अनुगामी बनकर पल रहा है। हमने धर्म साधना का आश्रय छोड़ वैभव के टुकड़ों पर जीना स्वीकार कर लिया है। खतरा वैभव से नहीं, वैभव की गुलामी से है।** एक ही प्रकार के प्रवचनों शब्दों-द्रष्टांतों को सुनते-सुनते लोग ऊब गये हैं। **धन और यश से घिरे वर्तमान उपदेशकर्ता के मुख से धर्म के पाठ का नैतिक प्रभाव समाप्त हो चुका है। आज की युवा पीढ़ी जीवंत धर्म चाहती है।** धर्म या शब्दों का आडम्बर संभालना न उसके लिए रुचिकर है, ना ही उसके वश की बात।

- **जैन समाज एक धनी समाज है, वह भी एक गलतफहमी है।** जितने कुछ भी धनी हैं, वे और अधिक की लालसा से त्रस्त दिखाई देते हैं। मध्यम वर्ग की त्रस्तता, शिक्षा, विवाह, बीमारी, आवास आदि की समस्याओं को लेकर अनेकमुखी है। कर्मकाण्ड और प्रदर्शन के एकसूत्रीय ऐश्वर्यशाली धार्मिक क्रियाकलापों, मान-सम्मान की आपाधापी के बीच किसको अवकाश है कि मध्यम वर्ग की इन समस्याओं की तरफ नजर डाले या इनका समाधान करे। आलीशान मठों, अंचलो, देवालयों के निर्माण में करोड़ों खर्च करने वाले कभी इनकी सीढ़ियों पर बैठे किसी जरूरतमंद को एक ढेला भी देने को तैयार नहीं होते। अपने दो-चार उपवास पर प्रतिष्ठा या पुण्य के लिए समारोह में लाखों लुटाने वालों को **अपने आसपास मजबूरी में अभाव झेल रहे पड़ोसी नहीं दिखते।**

- विश्व बदल रहा है, देश बदल रहा है। अगर हम इस बदलाव को नहीं

समझे या इसकी अनदेखी कर आडम्बरों पर बर्बाद हो रहे समय और संसाधनों को जन कल्याण की तरफ नहीं मोड़ा तो वक्त हमें बदल देगा।

- इन कर्मकाण्डों में फँसे रहने के कारण ही वैज्ञानिक धरातल पर टिका हमारा यह प्राचीनतम धर्म अन्य धर्मों की तुलना में विस्तार नहीं पा सका। हमारे धर्म का यह प्रवर्तित रूप हमारी नई पीढ़ी को अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर रहा है।

- हम अल्पसंख्यक घोषित होने के बाद संख्या में भी अल्प होते जा रहे हैं। बस अब सूक्ष्म होने की प्रतीक्षा में हैं। हमारी यह सारी धार्मिक प्रवृत्तियां विद्रोह को निमंत्रण दे रही है। एक अलगाव पैदा कर रही है। यही कारण है कि हम हमारे धर्म, हमारे तीर्थ और अब तो हमारे त्यागियों पर भी लोग आक्रामक हो रहे हैं।

स्थिति को इस दिशा में लाने के लिए दोषी कोई भी हो, लेकिन सुधार का दायित्व हमारे धर्म नेताओं, गुरुओं के साथ हम सबका भी बनता है। **दिशाबोध : फरवरी 2020**

आत्म-अवलोकन-

क्या हम सही दिशा में जा रहे हैं

-डॉ. अनिल कुमार जैन, जयपुर

आज समाज का विद्वानों व पत्र-पत्रिकाओं से मोह भंग होता जा रहा है। विश्वसनीयता समाप्त होती जा रही हैं। बहुत पहले यह माना जाता था कि साधु और विद्वान/पत्रकार एक-दूसरे के पूरक होते हैं। अब भी पूरक हैं लेकिन दूसरे मामले में, साधु इनको पुरस्कृत करते हैं और बदले में ये उनके गुणगान करने लगते हैं। जो इस प्रकार नहीं करता है, वह प्रायः उपेक्षित/निष्कासित रहता है। जैन धर्म और समाज की दृष्टि से यह स्थिति अच्छी नहीं कही जा सकती। यदि हम समाज में कुछ सकारात्मक परिवर्तन लाना चाहते हैं तो हमें इस स्थिति से बाहर निकलना होगा। **स्वयं को बदलना होगा, सही को सही और गलत को गलत कहने का साहस जुटाना होगा।** मेरा मानना है कि भविष्य में यदि कोई कार्यक्रम करना हो तो उसे बिना किसी संत सान्निध्य के करना चाहिए। इससे हर गलत-सही बात का समर्थन करने तथा उनके झूठे गुणगान करने की बाध्यता समाप्त हो जायेगी। यदि कभी किसी संत के सान्निध्य में उपस्थित हो रहे हैं तब भी हमें अपनी बात बिना

किसी लोभ-लालच या दबाव के निष्पक्ष और निर्भय होकर कहनी चाहिए। यदि ऐसा होता है तो यह जैन धर्म और समाज के हित में होगा। तथा धर्म और समाज की सच्ची सेवा होगी। **दिशाबोध : फरवरी 2020**

एक सवाल खजराहो कमेटी से

(मोबाइलों में प्रकाशित-प्रचारित)

जब नितिन जैन ''सूर्या होटल'' वालो ने ये साबित कर दिया था कि उसने आचार्य विद्या सागर जी की वैयावृत्ति और अपने चौके में आहार कराने के लिए ब्र सुनील के कहने पर ब्र सुनील की बहन ममता जैन बण्डा के खाते में 108000 रु की राशि भेजी थी। जिसके प्रमाण के तौर पर उसने बैंक की जमा पर्ची भी सबके सामने रख दी है। जिससे ये तो प्रमाणित होता है कि नितिन जैन झूठ नही बोल रहा है और नितिन जैन ने ममता जैन के खाता नम्बर 35040595921 भारतीय स्टेट बैंक में दिनांक 21/8/2018 दिन मंगलवार को 108000रु भेजे थे। अब इस बात से इंकार नही किया जा सकता। और खजराहो कमेटी क्या दुनिया की कोई भी अदालत बैंक की जमा पर्ची को नही झुठला सकती जो ब्र सुनील के काले कारनामे का पुख्ता सबूत है। अब आप मुझे ये बताये कि अगर नितिन जैन ने ब्र सुनील के कहने से खाते में रूपये नही भेजे तो नितिन जैन ने ममता जैन के खाते में रूपये क्यों भेजे और नितिन जैन के पास ममता जैन के बैंक के खाते का नम्बर कहाँ से आया क्योंकि न तो ममता जैन नितिन जैन को जानती है और न नितिन जैन का दूर-दूर तक ममता जैन से कोई परिचय है। अब मेरी समझ में ये बात नही आ रही है कि जिस सबूत को अदालत भी नही नकार सकती उस बैंक की जमा पर्ची को खजराहो कमेटी के रमेश जैन इंजीनियर और योगेश जैन क्यों नकार रहे हैं। क्या किसी कारणवश रमेश जैन और योगेश जैन ब्र सुनील को बचाने का असफल प्रयास कर रहे है। क्योंकि अभी इस घटना के तुरन्त बाद एक बात की चर्चा और होने लगी है कि सतना की एक दुकान से एक लैपटॉप आया है जिसका बिल महात्मा जी खजराहो के नाम से बना है जिसकी कीमत लगभग 35 हजार रु है। और उस बिल का भुगतान खजराहो कमेटी द्वारा किया गया है। जब ये सवाल उठने लगा कि

खजराहो चातुर्मास में ऐसे कौनसे महात्मा जी है जो लैपटॉप रखते है तो वहां भी ब्र सुनील का नाम सामने आया। जैसे ही ब्र सुनील का नाम आया तो तुरन्त इंजीनियर रमेश जैन ने ये सफाई दी कि उन्होंने अपनी तरफ से ब्र सुनील को वो लैपटॉप गिफ्ट दिया है। तो फिर ये सवाल आता है कि जब रमेश जैन ने ही लैपटॉप खरीद कर ब्र सुनील को दिया है तो उसका बिल या तो रमेश जैन के नाम पर बनना था या ब्र सुनील जैन के नाम से। और जब रमेश जैन ने अपने पास से लैपटॉप गिफ्ट किया था तो लैपटॉप के बिल का भुगतान खजराहो कमेटी ने क्यों किया। और लेपटॉप का बिल खजराहो कमेटी द्वारा कमेटी द्वारा किये गए खर्च की फाइल में क्यों लगाया गया। इस बात का पूरा सबूत है कि लैपटॉप के बिल का भुगतान कमेटी द्वारा किया गया है और रमेश जैन और योगेश जैन ब्र सुनील के खिलाफ हर सबूत मिटाने का भरपूर प्रयास कर रहे है। सूत्रों से प्राप्त जानकारी के अनुसार रमेश इंजीनियर ने आचार्य श्री के आहार के समय कुछ दान राशि की घोषणा की थी और फिर नए मंदिर के लिए बड़ी मूर्ति की घोषणा की थी। उसके बाद रमेश जैन ने आचार्य श्री के समक्ष स्थापना कलश की बोली 1 करोड़ 31 लाख की ली थी। ये तीनों घोषणाएं अलग अलग तिथि को हुई थी जिसका सबूत हमने निकलवा लिया है क्योंकि ये तीनो बोली मंच पर हुई थी तो इनकी रिकार्डिंग भी आसानी से मिल गई। जब रमेश जैन ने ये तीनो घोषणाएं अलग-अलग की थी तो किस आधार पर ब्र सुनील ने कमेटी के साथ मिलकर तीनो बोलियों को एक कर दी। और अब रमेश जैन को कुल 1 करोड़ 31 लाख ही देने होंगे। क्या इंजीनियर रमेश इसलिए ब्र सुनील को बचाने का प्रयास कर रहे है। आखिर क्या कारण है कि इंजीनियर रमेश ने 35000 का लैपटॉप सुनील को गिफ्ट किया। नितिन जैन ने 108000रु सुनील की बहन के खाते में भेजे। पपोरा जी में 1 लाख का मोबाइल ब्र सुनील को गिफ्ट में मिला। कोई भी प्रतिष्ठित व्यक्ति आता है तो उसके पहले ब्र सुनील उनके रुकने की व्यवस्था करने में लग जाता है। यहाँ तक की उनके रूमें के संडास तक की सफाई की व्यवस्था ब्र सुनील करता है। क्या ये कार्य ब्र सुनील को कराना चाहिए। जो संडास तक की सफाई की व्यवस्था के लिए ब्र सुनील कर्मचारी को अलग से बोलता है कि जाओ देखो संडास

अच्छे से साफ है या नही। पूरे भारत में एक मात्र ऐसा ब्र सुनील ही है जिसके कमरे में भोजन की थाली लग कर आती है ये किसी के चौके में भोजन करने नही जाते क्यों?

मुंबई की एक महिला से प्राप्त जानकारी के अनुसार उन्होंने खजराहो में आचार्य श्री की पूजा के समय जो सोना दान किया था उसकी रसीद नही दी गई। और उस महिला का कहना है कि उसने सोना अपने हाथो से आचार्य श्री के सामने ब्र सुनील के हाथों में दिया था तो फिर उस सोने की रसीद क्यों नही दी गई।

कुछ समय पहले ब्र सुनील ने अपने कमरे से सोना गायब करने का आरोप हथकरघा के ब्र शशांक भैया पर लगाया था जिसकी जांच में ब्र शशांक निर्दोष पाया गया था क्योंकि वो उस समय कमरे में गया ही नही था। अब सवाल ये उठता है कि जो दान स्वरुप सोना आचार्य श्री की पूजा के समय आता है उसकी देखरेख कमेटी के पास होनी चाहिए तो फिर वो सोना ब्र सुनील के कमरे में क्यों रखा था और इनके कमरे से सोना चोरी कैसे हो गया इस विषय की जाँच पूरी क्यों नही की गई। और वो सोना गया कहाँ और जब सोना चोरी हुआ तो चोरी की FIR क्यों नही कराई गई और ये बात का खुलासा क्यों नही किया गया कि कितना सोना चोरी हुआ।

अब इंजीनियर रमेश ये बताये जब नितिन जैन ने सबूत के साथ ये बताया कि उसने ब्र सुनील को पैसे दिए तो आप नितिन पर दबाव बनाने चले गए और जबरदस्ती उसका खंडन निकाला जबकि नितिन जैन आज भी साफ साफ कहता है कि उसके द्वारा ऐसा कोई भी खंडन नही निकाला गया है। और जब ब्र सुनील ने ब्र शशांक भैया पर चोरी का झूठा आरोप लगाया था तो उस समय इंजीनियर रमेश और योगेश की इंसानियत कहा मर गई थी जो एक सीधे साधे ब्र भैया को षड्यंत्र के तहत फंसाया जा रहा था तब क्यों इस बात का खंडन नही किया गया। क्या खजराहो कमेटी ने इस बात की जांच की जब ब्र सुनील इंदौर से आता है तो एक बैग लेकर आता है और जब इंदौर जाता है तो 15-16 बैग भर के सामान जाता है क्या कभी किसी ने ये जाँच करने की कोशिश कि ब्र सुनील उन बैग में क्या लेकर जा रहा है। सबने देखा है गाड़ी भर भर कर सामान ले जाते हुए इस बात को कोई भी नही

झुठला सकता। ये ब्रह्मचारी है या भिखारी इसको संघ की मर्यादा का भी ध्यान नहीं है बड़ी बड़ी बाते करता है पैसा मिलता है तो लोगो को आहार में घुसाने व्यवस्था के नाम पर जाता है। वैयावृत्ति कराता है दर्शन कराता है चरण छुलाता है। पैसा नही मिलता तो लोगो को दर्शन तो दूर उनकी बेइज्जती तक करता है। हमने एक दिन लाइव देखा जिसमें बड़ी चतुराई से आचार्य श्री के सामने अपनी सफाई दे रहा था। इससे लगा कि यदि चोर नही तो सफाई क्यों दे रहा है?

पपौरा में भी यही हाल था इन हरिश्चंद्र जी का जरा पता करो, डिंडोरी की कहानी रास्ता चलते विहार की कहानी। और जब से घोटाले उजागर होना शुरू हुए है तो ब्र.सुनील के इशारे पर ईमानदार कर्मचारियों को भगाया जा रहा है ताकि कोई सबूत बाहर न आ सके। कर्मचारियों को रखना और भगाना इनके हाथ में है। इनकी सिफारिश पर इनके रिश्तेदार अथवा इनकी व्यक्तिगत सभी प्रकार की सेवा करने वाले लोगो को रखा जाता है जो इनके इशारे पर वो सब करते है जो ये चाहते है आखिर ऐसा क्यों हो रहा है?

बाहर से आने वाले यात्री अब सीधे इनसे ही संपर्क करते है आचार्य श्री के दर्शन के लिए अब पूरे भारत में ये खबर आग की तरह फैल गई है कि जिसको भी आचार्य श्री को आहार देना हो या आचार्य श्री से कोई काम कराना हो तो ब्र सुनील से संपर्क करे इसके बदले में ब्र सुनील को एक मोटी रकम दी जाती है। जिसका प्रमाण स्वरुप जानकारी प्राप्त हुई है कि पर्यूषण के समय जितने भी श्रेष्ठी लोग आये थे सबने जाते समय ब्र सुनील को बन्द लिफाफे दिए थे और अगर खजराहो कमेटी को हमारी बातो पर अभी भी विश्वास नही तो ब्र सुनील का इतिहास इंदौर जाकर पता कर सकते हैं। इंदौर जैन समाज का बच्चा बच्चा ब्र सुनील के फ्रॉड को जानता है इंदौर में ब्र सुनील को नटवरलाल के नाम से जाना जाता है। इंदौर के एक विधायक से इसके बहुत नजदीकी सम्बन्ध है जिससे अभी इंदौर में एक ब्र भैया को धमकी भी दिलवाई थी प्रॉपटी के लिए। सिर्फ इंदौर में ही ब्र सुनील के 12 से 15 मकान है। गाँव गाँव शहर शहर में ये धारणा बन रही है कि कुछ देकर ब्र सुनील को खुश करो तो आचार्य श्री से हमारे सारे कार्य हो जायेंगे या आहार भी हो

जायेंगे। कई बार एक दिन पहले ही बोलने लगते है कि कल के आहार फलाना चौके में होंगे। क्या ये उचित है।

अब हम इन अपवादों का कारण किसको माने?

मेरी एक बात समझ नही आ रही कि खजराहो कमेटी के इंजीनियर रमेश और योगेश ऐसे फ्रॉड ब्र सुनील का पक्ष क्यों लेते है और अगर इनके बारे में कुछ और डिटेल चाहिए है तो इनके साथ के ब्र भैया से ले सकते है। कही ऐसा तो नही कि ब्र सुनील के काले कारनामो में इंजीनियर रमेश और योगेश की भी भागीदारी है। मुझे ऐसा इसलिए लगता है क्योंकि ब्र सुनील के फ्रॉड के बारे में रमेश और योगेश को आचार्य श्री को बताना चाहिए था लेकिन ये लोग ब्र सुनील का साथ दे रहे है मतलब दाल में कुछ काला है।

गुरु सेवा का फल

पिता माता भ्राता प्रिय सहचरी सुनू निवहः।
सुहृत्स्वामी माद्यत्करिभट रथाश्वः परिकरः।।
निमज्जंतं जन्तुं नरक कुहरे रक्षितुमलम्।
गुरो धर्माधर्मप्रकटनपरात्कोऽपि न परः।।15।। सिंदुर प्रकरण

इस श्लोक में बताया है कि संसारी जीवों को धर्म गुरु ही कुमार्ग सन्मार्ग बताकर धर्म में प्रवृत्ति और अधर्म से निर्वृत्ति कराने वाले होते हैं बिना गुरु के जितने भी लौकिक जन हैं वे जीव की रक्षा करने में समर्थ नहीं होते हैं। नरक बिल में जब जीव दुःखों के समुद्र में मगन होता है तब किसी का बल नहीं चलता है ऐसी अवस्था में उसको सम्बोधन करने वाले ही होते हैं। इस पंचम काल में गुरु ही उद्धार करने वाले हैं वे ही निःस्वार्थ होते हैं अन्यजन का जब तक स्वार्थ सधता है तब तक ही हाँ में हाँ मिलाते हैं।

जो प्राणी नरकों के बिल में पड़े हुए हैं उनको उभारने में गुरु के अलावा अन्य कोई समर्थ नहीं है। कथं? पिता भी रक्षा करने में समर्थ नहीं है, माता भी समर्थ नहीं, पुत्रों का समूह भी रक्षा करने में समर्थ नहीं और जो प्रियालापिनी स्त्री है वह भी समर्थ नहीं है। इसी प्रकार रथ, हाथी, घोड़े, सैनिक और योद्धा गण भी रक्षा करने में

समर्थ नहीं हैं सेवक समूह भी प्राणी को नरक पतन से नहीं बचा सकता है। एक गुरु मात्र ही लोक में जीव को दुर्गतियों से बचाने में समर्थ है। गुरु में क्या विशेषता है? गुरु धर्म को प्रकट करने तथा पाप और पुण्य में भेद करने तथा अधर्म व पाप से बचाने का मार्ग दिखाने में समर्थ है। अतः हे भव्य प्राणी! गुरु के उपदेश से अधर्म व पापों का त्याग कर धर्म और पुण्य में प्रवृत्ति करो जिससे नरक में पतन नहीं होता है बल्कि वे सुगति के भाजन बन जाते हैं।

णर यगण गमण पडिह छए कए तह पएसिणा रण्णा।
अमर विमाणं पत्तं तं आइरियप्पभावेणं।।1।।

उपरोक्त गाथा का अर्थ पहले टीका में आ गया है। हे भव्य प्राणी! इस प्रकार जानकर मन में विवेक लाकर नरक पतन से रक्षा करने वाले गुरु की सेवा करो। जो सेवा करते हैं उनको पुण्य की प्राप्ति होती है।

गुरु की आज्ञा का माहात्म्य

किं ध्यानेन भवत्यवशेष विषयत्यागै स्तपोभिः कृतं।
पूर्णं भावनयाऽलमिद्रिय दमैः पर्याप्तमाप्तागमैः।।
किंत्वेकं भव नाशनं कुरु गुरु प्रीत्या गुरोः शासनं।
सर्वे येन बिना विनाथ बलवत् स्वार्थय नालं गुणाः।।16।। आ. सोमदेव

हे भव्य! गुरु की आज्ञा के बिना यदि ध्यान किया तो कुछ भी लाभ नहीं होता है बल्कि हानि विशेष होती है। सम्पूर्ण पंचेन्द्रियों की विषय वासनाओं का त्याग कर देने से तथा मन को रोकने से ही ध्यान होता है। गुरु की आज्ञा बिना सम्पूर्ण विषय वासनाओं का त्याग करने पर कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता है। अनशन, ऊनोदर, रस परित्याग, व्रतपरिसंख्यान, कायक्लेश तथा प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्ति, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग इस प्रकार बारह प्रकार के तपों को किया और शरीर को कृश बना दिया। छः उपवास, आठ उपवास, दस उपवास, पक्ष, मास, चातुर्मासोपवास और सिंहनिष्क्रीडितादि अनके तपों के बिना गुरु की आज्ञा के करने से कोई लाभ नहीं हुआ। शुभ भाव से पूर्ण हो गया, पंचेन्द्रियों के और मन के विषयों को भी बहुत प्रकार से रोका फिर देव, शास्त्र, सिद्धान्त शास्त्रादि पढ़ने से भी पर्याप्त पूर्ण हो गए तो क्या

लाभ हुआ? कुछ भी नहीं। अत्यंत गाढ़ वात्सल्य से अथवा बड़े आदर से एक गुरु के शासन का पालन कर अथवा गुरु की आज्ञा का पालन भाव सहित कर! गुरु का शासन कैसा है? संसार के परिभ्रमण का नाश करने वाला है। एक गुरु के शासन के अभाव में पूर्व में कहे गये सब गुण निरर्थक होते हैं। जिस प्रकार एक सेनापति के अभाव में सैन्यबल युद्ध जीतने में समर्थ नहीं होता है उसी प्रकार गुरु की आज्ञा के बिना किए गए अनुष्ठान सब निष्फल होते हैं इसलिए गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करो।

कल्पसूत्र में कहा है- असणवा, आहारेत्तए, उच्चारपासवणं वा परिट्ठवेद्धए, सज्जयं वा करित्तएं, धम्म जागरियं वा जागरित्तए, जो से कप्पइ, अणापुच्छित्तं, भिक्कु इच्छेद्या अन्नपयं तवो कम्मं, उवसंपजित्ताणं, विहरित्तए! हे भव्य प्राणी। इस प्रकार जानकर मन में विवेक लाकर गुरु सेवा करनी चाहिए।

क्षेमंकर राजा की कथा

एक समय की बात है कि धारा नगरी में क्षेमंकर राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम क्षेमश्री था ये दोनों ही श्री जैन मत धारक शुभ भाव से युक्त थे। एक दिन राजा व रानी विचरण करते हुए जंगल में गए वहाँ पर एक वयोवृद्ध मुनि राज ध्यान में लवलीन थे। राजा रानी ने उनको तीन प्रदीक्षणा दी और पूजा कर नमस्कार किया। गुरु से प्रार्थना की हे देव! हम संसारी प्राणियों को संसार के दुःखों से छूटने का उपाय बतलाइये? यह सुन निर्ग्रन्थ दिगम्बराचार्य ने उनको उपदेश दिया कहा कि देव, शास्त्र और गुरु इन तीनों की भक्ति समान भाव से करो। इनकी भक्ति करने से संसार के दुःखों से शीघ्र ही मुक्ति मिलती है, इसमें कोई संशय नहीं है। राजा-रानी उन मुनिराज के परम भक्त हो गए। मुनिराज जिस प्रकार कहते थे वैसा ही राजा-रानी आचरण करते थे तथा उनकी सेवा में तत्पर रहते थे। रोगी, वृद्ध मुनियों की वैयावृत्ति करने में तत्पर हुए। उनके शरीर का मर्दन करना, उनका संयमोपकरण और शौचोपकरण आदि दान देने की शुभ किया करने लगे। इस प्रकार वैयावृत्ति करने में तत्पर थे कि उनको रोग हो गया तब वे गुरु की आज्ञा बिना औषधि भी ग्रहण नहीं करते हैं। यह देख लोग कहते हैं कि देखों ये महाराज कितने निष्ठुर है कि औषधि लेने के लिए भी आज्ञा नहीं देते हैं।

एक दिन इस बात को सुनकर गुरु को विचार आया और भक्तों को साथ

लेकर जंगल में गए वहाँ पर एक बामी के ऊपर एक सर्प बैठा था उनको देखकर गुरु ने कहा वत्स! इस सर्प को शीघ्र ही पकड़ो तब राजा दौड़कर गया। ऐसा देखकर लोग कहने लगे कि क्या यह गुरु का कर्त्तव्य है कि सर्प को पकड़वाना किन्तु राजा ने गुरु आज्ञा का निःशंक होकर पालन किया। सर्प को जैसे ही पकड़ने लगा वैसे ही सर्प ने काटा तब भी उसने पकड़ना नहीं छोड़ा तब पुनः दुबारा भी काट लिया। वह देखकर मुनिराज बोले- हे भद्र! छोड़ दो आ जाओ।

राजा ने सर्प पकड़ना छोड़ दिया जिससे राजा का रोग नष्ट हो गया और राजा ने भी गुरु के पास जाकर दीक्षा लेकर उग्र तप किया। उग्र तप से कर्म श्रृंखलाओं को तोड़कर केवल ज्ञान को प्राप्त कर अन्त में मोक्ष सुख को प्राप्त किया। अतः हे भव्य प्राणी! जिस प्रकार राजा ने गुरु की आज्ञा का पालन किया तो राजा मुक्ति को प्राप्त हुआ उसी प्रकार तुम भी गुरु की आज्ञा का पालन करो, पालन करने से अशुभ कर्मफल जल जाते हैं और विशेष पुण्य की तथा पुण्य से अभ्युदय की प्राप्ति होती है।

गुरु(आचार्य, संघनायक) की अनुमति बिना

नवीन धार्मिक कार्य भी चतुर्विध संघ नहीं कर सकते हैं तो धर्म बाह्य, धर्म विरुद्ध कार्य कर ही नहीं सकते।

गुरु(आचार्य, संघनायक) के बिना स्वसंघ व चतुर्विध संघ व्रत, नियम, स्वाध्याय आदि नवीन धार्मिक कार्य प्रारम्भ नहीं कर सकते हैं तथा मलत्याग, मूत्र विसर्जन के हेतु भी गुरु को या संघस्थ निकटस्थ अन्य साधु आदि को बोलकर जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि धार्मिक कार्य भी बिना गुरु अनुमति के प्रारम्भ नहीं कर सकते हैं तब धर्म बाह्य धर्म विरुद्ध कोई भी कार्य कैसे कर सकते हैं?

कदापि नहीं कर सकते हैं। यदि कोई करता है और गुरु निषेध नहीं करते है मौन रहते हैं प्रायश्चित नहीं देते तो उसमें गुरु भी दोषी है।

विशेष परिज्ञान हेतु भगवती आराधना, मूलाचार, प्रायश्चित-ग्रन्थ, समता साधक मुमुक्षु श्रमण की साधना व श्रमण संघ संहिता (दोनों ग्रन्थ आचार्य कनकनन्दी द्वारा संकलित रचित) आदि ग्रन्थ अध्ययन करें।

आप कैसे शाकाहारी हैं? यह सच आपको चौंका सकते हैं?

भारत में कुल 3600 बड़े कत्लखाने हैं जिनके पास पशुओं के काटने का लाईसेंस है, जो सरकार ने दे रखा हैं।

इसके अलावा 35000 से अधिक छोटे-मोटे कत्लखाने हैं जो गैर कानूनी ढ़ंग से चल रहे हैं। कोई कुछ पूछने वाला नहीं हैं, जहाँ हर साल 4 करोड़ पशुओं का कत्ल किया जाता है।

जिसमें गाय, भैंस, सुअर, बकरी, ऊंट आदि शामिल है। मुर्गियां कितनी काटी जाती है इसका कोई रिकार्ड नहीं है।

भारत के 20 प्रतिशत लोग ऐसे मांसाहारी है जो रोज मांस खाते हैं और सब तरह का मांस खाते हैं। मांस के अलावा दूसरी जो चीज कत्ल से प्राप्त की जाती है वो है तेल उसे Tellow कहते हैं। इस तेल का सबसे ज्यादा उपयोग चेहरे में लगाने वाली क्रीम बनाने में होता है जैसे Fair & Lovely, Ponds, Emami इत्यादि। ये तेल क्रीम बनाने वाली कंपनियों द्वारा खरीदा जाता है। मद्रास हाईकोर्ट में श्री राजीव दीक्षित ने विदेशी कंपनी फेयर एंड लवली के खिलाफ केस जीता था। कंपनी ने खुद माना था कि हम फेयर एंड लवली में सुअर की चर्बी मिलाते हैं। कत्लखाने में मांस और तेल के बाद जानवरों का खून निकाला जाता है। कसाई गाय और दूसरे पशुओं को पहले उल्टा रस्सी से टांग देते हैं। फिर तेज धार वाले चाकु से उनकी गर्दन पर वार किया जाता है और एक दम खून बहने लगता है। नीचे एक ड्रम रखा होता है जिसमें खून इकट्ठा किया जाता है तो खुन का सबसे ज्यादा प्रयोग किया जाता है अंग्रेजी दवा(एलोपैथिक) बनाने में। पशुओं के शरीर से निकला हुआ खून से एक दवा बनाई जाती है। उसका नाम है Dexorange यह बहुत पापुलर दवा है और डॉक्टर इसको खून की कमी के लिए महिलाओं को लिखते हैं खासकर जब वो गर्भावस्था में होती है, क्योंकि तब महिलाओं में खून की कमी आ जाती है और डॉक्टर उनको जानवरों के खून से बनी दवा लिखते हैं क्योंकि उनको दवा कंपनियों से भारी कमीशन मिलता है। इसके अलावा इस रक्त का प्रयोग बहुत बड़े पैमाने पर Lipistick बनाने में होता है। इसके बाद रक्त का एक और प्रयोग चाय बनाने में बहुत सी कंपनियां करती है। अब चाय तो पौधे से प्राप्त होती है और चाय के पौधे का

आकार इतना ही होता है जितना गेहूँ के पौधे का होता है। उसमें पत्तियां होती है और पत्तियों के नीचे का जो भाग टूट कर गिरता है जिसे डंठल कहते हैं आखिरी हिस्सा, लेकिन वह चाय नहीं है। तो फिर क्या करते हैं? इसको चाय जैसा बनाया जाता है। अगर उस निचले हिस्से को सूख कर पानी में डाले तो चाय जैसा रंग नहीं आता। तो ये विदेशी कंपनियां Brookbond, Lipton आदि क्या करती है, जानवरों के खून को इसमें मिलकर सूखा कर डिब्बे में बंद कर बेचती हैं।

तकनीकी भाषा में इसे Tea Dust कहते हैं। इसके अलावा कुछ कंपनियाँ Nail Polish बनाने में प्रयोग करती है। मांस, तेल, खून के बाद कत्लखानों में पशुओं की हड्डियां निकलती है। इनका प्रयोग Tooth Paste बनाने वाली कंपनियां करती है। Colgate, Close-up, Pepsodent, Cibaca आदि-आदि। Shaving Cream बनाने वाली कंपनियां भी इसका प्रयोग करती है और आजकल इन हड्डियों का प्रयोग जो होने लगा है, टैल्कम पाउडर बनाने में। क्योंकि ये थोड़ा सस्ता पड़ता है, वैसे टेल्कम पाउडर पत्थर से बनता है और 60 से 70 रुपये किलो मिलता है और पशुओं की हड्डियों का पाउडर 25 से 30 रुपये किलो मिल जाता है।

इसके बाद गाय के ऊपर की जो चमड़ी है, उसका सबसे ज्यादा प्रयोग किया जाता है क्रिकेट बॉल बनाने में। आज कल सफेद रंग की आती है जो गाय की चमड़ी से बनाई जाती है। गाय के बछड़े का प्रयोग ज्यादा होता है। फुटबाल बड़ी होती है इसमें ज्यादा प्रयोग होता है गाय के चमड़े का। आजकल एक और उद्योग में इस चमड़े का बहुत उपयोग हो रहा है, जूते-चप्पल बनाने में। अगर जूता चप्पल बहुत ही मुलायम है तो 100 प्रतिशत गाय के बछड़े के चमड़े का बना है और अगर हार्ड है तो ऊँट और घोड़े के चमड़े का। इसके अलावा चमड़े का उपयोग पर्स, बैल्ट व सजावट के समान में किया जाता है। गाय के शरीर के अंदर कुछ भाग है। उनका भी बहुत प्रयोग होता है। जैसे गाय में बड़ी आंत, इसको पीस कर Gelatin बनाई जाती है। इसका बहुत ज्यादा उपयोग, आईसक्रीम, चाकलेट, मैगी, पिज्जा, बर्गर, हॉटडाग, चाउमिन के बेस मैटिरियल बनाने में होता है और एक जेली आती लाल, नारंगी रंग की उसमें Gelatin का बहुत प्रयोग होता है। च्यूंगम तो Gelatin के बिना बन ही नहीं सकती। आज कल जिलेटिन का उपयोग साबूदाना में होने लगा है जो हम

उपवास में खाते हैं। अतः जो अपने आपको शाकाहारी कहते हैं और कहीं न कही इस मांस का प्रयोग कर रहे हैं, वे अपना धर्म भ्रष्ट कर रहे हैं।

अब आपको क्या करना है, क्या खाना है? यह आप स्वयं तय करें।

दिशाबोध : फरवरी 2020

रागद्वेष मोह वाला स्थूल पाप बिना भी महापापी

(रागद्वेष मोह रंजक ही अनन्त पञ्च परिवर्तन में भ्रमण करता हैं!)

(रागद्वेष मोह भंजन से मानव बने भगवान्)

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल : 1. आत्मशक्ति...2. क्या मिलिए...)

रागद्वेष मोह युक्त जीव भले वे न करते हो स्थुल पञ्चपाप।
तथापि वे बान्धते घोर पाप कर्म जिससे वे भ्रमण करते संसार पञ्च।।
भले वे न सेवते हो सप्तव्यसन आरम्भ परिग्रह व भोगोपभोग।
तथापि भाव कलुषित होने से वे करते हैं भावहिंसा व कुकर्म।।(1)
यथा निगोदिया होते अतिसूक्ष्मकाय जीव वे न करते उक्त स्थूल पाप।
''भावकलंक सुप्रचुरा निगोदवास न मुञ्चन्ति'' अनन्त काल पर्यन्त।।
तथाहि यथायोग्य पञ्च स्थावर स्थूल से लेकर सूक्ष्म तक।
न सेवन करते उक्त सभी बाह्य स्थूल पाप तथापि वे घोर पापी जीव।।(2)
रागद्वेष मोह के ही भेद-प्रभेद क्रोध मान माया लोभ व मिथ्यात्व।
ईर्ष्यातृष्णा घृणा पक्षपात संकीर्ण दुराग्रह कदाग्रह हठाग्रह विद्वेष।।
परनिन्दा-अपमान वैर-विरोधभाव आकर्षण-विकर्षण द्वन्द्व कलह भाव।
परप्रतिस्पर्द्धा पर अन्धानुकरण दीन हीन अहंकार ममकारादि भाव।।(3)
दिखावा-आडम्बर ढोंग-पाखण्ड ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि-वर्चस्वभाव।
अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतिक्षा विग्रह भाव संकल्प-विकल्प-संक्लेश विद्रोह भाव।।
काम-भोग सत्ता-सम्पत्ति की चाह आशा निराशा क्षोभ चिन्ता स्नेह।
हास्य रति अरति भय शोक जुगुप्सा सन्ताप तनाव डिप्रेशन सभी रागद्वेशमोह।।(4)
इनसे युक्त जीव कोई भी क्यों न हो वे होते हैं घोरातिघोर पापी।

एकेन्द्रिय से ले पञ्चेन्द्रिय तक मानव तीर्यंच व देव नारकी।।
रागी द्वेषी मोही न जानते न मानते सत्य-असत्य पुण्य-पाप व बन्ध-मोक्ष।
आत्मा-परमात्मा व मोक्षमार्ग अतः उनका धर्म होता अधर्म।।(5)
वे जो धर्म करते सभी ही भोगनिमित्त ख्याति-पूजा व लाभनिमित्त।
प्रसिद्धि-वर्चस्व व सत्ता-सम्पत्तिनिमित्त प्रतिस्पर्द्धा व दिखावा निमित्त।।
भले वे किसी क्षेत्र-काल-पंथ-मत-परम्परा-भाषा-भाषी-जाति के हो।
वे सभी है महापापी-कुधर्मी गृहस्थ से ले साधु-साध्वी तक हो।।(6)
राजा-रंक शिक्षित-अशिक्षित सभ्य-असभ्यनेता-अभिनेता राष्ट्राध्यक्ष।
पण्डित मूरख दार्शनिक वैज्ञानिक प्रसिद्ध अप्रसिद्ध दोषी न्यायाधीश।।
यह है कर्म सिद्धान्त अबाधित सत्य सार्वभौम व सार्वकालीन सत्य।
परम संविधान व परम न्याय परम नीति-नियम परम मनोविज्ञान।।(7)
ये न जानते रागीद्वेषी मोही यथा मद्यपी न जानते स्वगुण-दोष।
गाढ़ निद्रा वाले न सुनते देखते तथाहि मूर्च्छित न जानते स्वगुण-दोष।।
रागद्वेष मोह के क्षय निमित्त समस्त धर्मकर्म करने योग्य।
अन्यथा सभी धर्म होते कुधर्म यथा विषमिश्रित भोजन घातक।।(8)
कांचली त्याग से न विषधर सर्प होता निर्विष तथाहि केवल बाह्यधर्म से होय।
आत्मशुद्धि होती है रागद्वेष मोह क्षय से आत्मशुद्धि हेतु धर्म आचरणीय।।
यह परम आध्यात्मिक रहस्य रागद्वेषमोह क्षय से आत्मशक्ति जागृत।
जिससे मानव बने भगवान् रागद्वेष मोह भञ्जक ही ही होते भगवान्।।(9)
जैन आगम, अनुभव, गीता, उपनिषद, धम्मपद, योगदर्शन से मिला ये ज्ञान।
प्राप्त ज्ञानानुसार रागद्वेष मोह क्षय से ''कनक'' बनेगा शुद्ध भगवान्।।(10)

(ग.पु. कॉ., दि. 26-2-2020, रात्रि-9.12)

मिथ्यात्व से अनंत काल भ्रमण

कालमणंत जीवो मिच्छत्तसरूवेण पंचसंसारे।
हिंडदि ण लहइ सम्मं संसारब्भमण पारंभो।।157 रयण.

पद्य- अनन्त काल से जीव मिथ्यात्व स्वरूप से भ्रमण करे पंच संसारे।

जब तक न प्राप्त करे सम्यक्त्व तब तक संसार भ्रमण प्रारंभ।।

समीक्षा-सम्यक्त्व बिना ही भ्रमण होता है पंचविध संसार।

सम्यक्त्व होते ही अधिक से अधिक रहे अर्द्धपुद्गल संसार

इससे शिक्षा मिले संसार भ्रमण के मूल कारण है मिथ्यात्व।

सर्व प्रयत्न से आत्मविशुद्धि से प्रथम ही प्राप्त योग्य सम्यक्त्व।।

सन्दर्भ :

मिथ्यात्व के कारण वस्तु स्वरूप का अयथार्थ श्रद्धान एवं आत्म स्वरूप का विपरीत श्रद्धान होने से मिथ्यात्व संसार का मूल कारण है, कर्म बंध का प्रधान कारण है, अधर्म का आधार है, आत्म पतन के लिये मूल हेतु है।

मिथ्यात्व में बंध :-

''मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाय योगः बंधहेतवः''।।

मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग बंध के हेतु है क्योंकि इन कारण पूर्वक ही बंध होता है। ''त एते पञ्च बंध हेतवः, समस्ता व्यस्ताञ्च भवन्ति। तद्यथा मिथ्यादृष्टेः पञ्चापि समुदिता बंध हेतवो भवन्ति'' ये पाँचों स्वतंत्र बंध के हेतु हैं और समुदाय से भी बंध के कारण हैं। जैसे मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में पाँचों बंध के लिये कारण हैं।

सासादन, मिश्र, असंयतसम्यग्दृष्टि इन तीन स्थानों में मिथ्यात्व को छोड़ अन्य अविरति आदि चारों प्रत्यय बंध के कारण हैं। जब तक मिथ्यात्व गुणस्थान में मिथ्यात्व प्रकृति उदय में रहती है तब तक मिथ्यात्वादि 16 प्रकृतियों का बंध होता है। उसके आगे बंध व्युच्छित्ति हो जाती है।

मिच्छात हुंड संढाऽसंपत्तेयक्ख थावरादावं

सुहुमतियं वियलिंदिय णिरयदु णिरयाउगं मिच्छे।। 95 (कर्मकाण्ड)

मिथ्यात्व, हुण्डक संस्थान, नपुंसकदेव, असम्प्राप्तासपाटिका संहनन, एकेन्द्रियजाति, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, विकलत्रय, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरकायु इन 16 प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति मिथ्यात्व गुणस्थान के अंत में होती है।

सामण्ण पच्चया खलु चउरो भण्णंति बंधकत्तारो।

मिच्छतं अविरमणं कसायं जोगा य बोद्धव्वा।।10(समयसार)

सामान्य से मिथ्यात्व अविरति, कषाय और योग ये चार बंध के कर्त्ता है। अर्थात् जिस समय में मिथ्यात्व कर्म का उदय होता है उस समय उदयगत मिथ्यात्व कर्म के कारण जो भाव होता है उसके माध्यम से पुनः नवीन कर्म बंध होता है। इसी प्रकार अविरति आदि से जानना चाहिये। यहाँ पर प्रमाद को आचार्यश्री ने नहीं गिनाया है तो क्या प्रमाद बंध के लिये कारण नहीं है? अवश्य कारण है किन्तु प्रमाद को कषाय में अन्तर्भूत कर दिया है क्योंकि कषाय के कारण प्रमाद होता है। द्रव्य संग्रह में ''जोगा पायडि पदेसा ठिदि अणुभाग कसायदो होदि'' इसमें कषाय को ही स्थिति और अनुभाग का कारण बताया है। तो क्या मिथ्यात्व और अविरति बंध के कारण नहीं है? अवश्य है, किन्तु संक्षेप से कषाय में मिथ्यात्वादि को अन्तर्भूत कर दिया है। यहाँ पर कषाय प्रत्यय अंत-दीपक है, इसलिये उसके पहले पहले के सभी कारण उससे ग्रहण किये गये हैं।

सव्वतिव्वाणुभागा मिच्छातस्स उक्कस्साणु भागुदीरणा।

अणंताणुबंधीणमण्णदाउक्कस्साणु भागुदीरणातुल्ला अणंत गुण हीणा।

(ज.ध. पु.11)

मिथ्यात्व की उत्कृष्ट अनुभाग उदीरणा तीव्र अनुभाग वाली है। अर्थात् सबसे तीव्र शक्ति से संयुक्त है। उससे अनंतानुबंधियों की अन्यतर (कोई एक) उत्कृष्ट अनुभाग उदीरणा परस्पर समान होकर मिथ्यात्व की उत्कृष्ट अनुभाग उदीरणा से अनंतगुणी हीन है।

शंका : मिथ्यात्व की उत्कृष्ट उदीरणा सबसे तीव्र क्यों है?

समाधान : ''सव्व दव्व विसय सद्दहण गुण पडि बंधित्तादो।''

अर्थ : सर्व द्रव्य, विषय श्रद्धान गुण का प्रतिबंधन मिथ्यात्व कर्म करता है।

मिच्छात्तपच्चयों खलु बन्धो उवसाम यस्स बोधव्वो।

अवसंते सासणे तेण परं होदि भयणिज्जो।।(धवलः)

मिथ्यात्व का उपशांत अवस्था में और सासादन गुणस्थान में मिथ्यात्व

निमित्तक बंध नहीं होता है अन्य स्थान भी भजनीय है अर्थात् मिथ्यात्व को प्राप्त हुए जीव को मिथ्यात्व निमित्तक बंध होता है। अन्य गुणस्थान प्राप्त जीव को बंध नहीं होता। एक विचारणीय विषय है कि 40 कोड़ा कोड़ी सागर स्थितिवाला चारित्र मोहनीय (अनंतानुबंधी आदि) 70 कोड़ा कोड़ी सागर स्थिति प्रमाण दर्शन मोहनीय को कैसे बंध कर सकता है। यदि केवल कषाय को ही स्थिति बंध का कारण मानेंगे तो दर्शन मोहनीय का स्थिति बंध मात्र कषाय के द्वारा होने पर 70 कोड़ा कोड़ी सागर का और मिथ्यात्व में 16 प्रकृतियों का जो बंध होता है वह नहीं हो सकता है। अनंतानुबंधी भी मिथ्यात्व के सहाय से ही अनंतसंसार का कारण हो सकती है अन्यथा नहीं।

अनंतानुबधी, क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय आत्मनः, सम्यक्त्व परिणाम् कषन्ति अनंत संसार कारणत्वात् अनन्तं-मिथ्यात्वं, अनंतभव संस्कार कालं वा अनुबन्धति सुघटयन्तीत्यनन्तानुबन्धिन इति।। (गो. सार. टीका)

अनंतानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ-कषाय आत्मा के सम्यक्त्व परिणाम को घातती है क्योंकि अनंतसंसार का कारण होने से मिथ्यात्व कर्म को अनंत कहते हैं। इस अनंतभव के संस्कार काल को बाँधती है इसलिये उसे अनंतानुबंधी कहते है। एक क्षण के लिये भी सम्यक्त्व हो जाता है तो संसार अनंत नहीं रहता है संसार परीत हो जाता है जो अर्ध पुद्गल परिवर्तन मात्र है। अतः

न सम्यक्त्वं समं किञ्चित् त्रैकाल्यं त्रिजगत्यपि।
श्रयोऽश्रेयञ्च मिथ्यात्वं समं नान्यत्तनुभृताम्।।34।।(रत्नकरण्ड)

In the three periods of time and three worlds there in nothing more auspicious than right Faith for the living beings, nor any thing more inquacious than a false conviction.

तीन जगत् में तीन काल में सम्यक्त्व से श्रेयस्कर जीवों के लिये अन्य कुछ नहीं है एवं मिथ्यात्व के समान अश्रेयस्कर अन्य कुछ नहीं है।

सम्यग्दर्शन के सद्भाव-अभाव का फल

सम्मद्दसणसुद्धं जाव दु लभदे हि ताव सुही।
सम्मद्दंसणसुद्ध जाव ण लभदे हि ताव दुही।।(158) रयण.

सम्यग्दर्शन शुद्ध जब तक है पाते हैं तब तक ही सुख।
सम्यग्दर्शन जब तक न पाते हैं तब तक ही दुःख।।

बहुत कहने से क्या लाभ

किं बहुणा वयणेण दु सव्वं दुक्खेव सम्मत्त विणा।
सम्मत्तेणं संजुत्तं सव्वं सोक्खेव जाणं खु।।(159)
अधिक कहने से क्या लाभ सभी दुःख ही सम्यक्त्व बिना।
सम्यक्त्व से सहित सभी सुख जानो निश्चय से।।

सम्यक्त्व रहित ज्ञानाभ्यास संसार का कारण

णिक्खेव णयप्पमाणं, सद्दालंकार छंदलहियाणं।
णाडय पुराण कम्मं सम्मं विणा दीह संसार।।(160)
निक्षेप, नय, प्रमाण, शब्दालंकार, संगीत, स्वर शास्त्र।
नाटक, पुराण, लौकिक कर्म (ज्ञान) सम्यक्त्व बिना दीर्घ संसार।।

क्रोध के दोष

जो क्रोध से ग्रस्त होता है उसका रंग नीला पड़ जाता है, कान्ति नष्ट हो जाती है, अरतिरूपी आग से संतप्त होता है। ठंड में भी उसे प्यास सताती है और पिशाच से गृहीत की तरह क्रोध से काँपता है। भृकुटी चढ़ने से मस्तक पर तीन रेखाएँ पड़ जाती है, लाल लाल निश्चल आँखे बाहर निकल आती हैं। इस तरह क्रोध से मनुष्यों के लिए राक्षस की तरह भयानक हो जाता है।। (भ. आरा.)

जैसे कोई पुरुष रुष्ट होकर दूसरे का घात करने के लिए तपा लोहा उठाता है। ऐसा करने से दूसरा उससे जले या न जले, पहले वह स्वयं जलता है।

उसी प्रकार पिघले हुए लोहे की तरह क्रोध से पहले स्वयं जलता है। दूसरे को वह दुःखी करे या न करे।

जैसे आग ईधन को नष्ट करके पीछे स्वयं बुझ जाती है उसी प्रकार क्रोध पहले क्रोधी मनुष्य को नष्ट करके पीछे निराधार होने से स्वयं नष्ट हो जाता है।

क्रोध शत्रु का जो धर्म है अपकार करना, उसे करता है अथवा क्रोध शत्रु का

उपकार करता है क्योंकि उसे क्रोध की आग में जलते हुए शत्रु प्रसन्न होते हैं। वे सदा इस प्रयत्न में रहते हैं कि कैसे इसे क्रोध उत्पन्न करें। क्रोध अपने और बन्धु बान्धवों को शोक में डालता है। अपने ही घर में अपना तिरस्कार कराता है। परवश मनुष्य का नाश करता है।

ण गुणे पेच्छदि अववददि गुणे जंपदि अजंपिदव्वं च।
रोसेण रुद्दहिदओ णारगसीलो णरो होदि।।(1360)

क्रोधी जिस पर क्रोध करता है उसके गुणों को नहीं देखता। उसके गुणों की भी निन्दा करता है। जो कहने योग्य नहीं है वह भी कहता है इस प्रकार क्रोध से रौद्र हृदय मनुष्य का स्वभाव नारकी जैसा होता है।

जैसे चिनगारी एक वर्ष के श्रम प्राप्त खलिहान में आये किसान के धान्य को जला देती है उसी प्रकार क्रोधरूपी आग श्रमण के जीवन भर में उपार्जित पुण्य धन को जला देती है।

जैसे उग्र विषवाले सर्प को घास के एक तिनके से मारने पर वह अत्यन्त रोष में आकर उस तिनके पर अपना विष वमन करके तत्काल विष रहित हो जाता है उसी प्रकार यति भी क्रोध करके अपने रत्नत्रय का विनाश करता है और शीघ्र ही निस्सार हो जाता है।

सुन्दर सुरूप पुरुष भी क्रोध से रूप के नष्ट हो जाने पर बन्दर के समान लाल मुख बाला विरूप हो जाता है। इस जन्म में क्रोध के दोष दिखलाकर परलोक में दिखलाते हैं एक भव में क्रोध करने से हजारों जन्मों में कुरूप होता है।

क्रोध करने से अत्यन्त प्रिय व्यक्ति भी मुहूर्त मात्र में द्वेष का पात्र होता है। तथा क्रोधी मनुष्य के अनुचित काम करने से उसका फैला हुआ यश भी नष्ट हो जाता है। क्रोधी मनुष्य अपने निकट सम्बन्धियों को भी असम्बन्धी अथवा शत्रु बना लेता है। उनको मारता है या उनके द्वारा मारा जाता है अथवा स्वयं मर जाता है। पूजनीय मनुष्य भी क्रोध करने से तत्काल अपमानित होता है। क्रोधी का जगत में प्रसिद्ध माहात्म्य नष्ट हो जाता है।

हिंस अलियं चोज्जं आचरदि जणस्स रोसदोसेण।
तो ते सव्वें हिंसालिया दि दोसा भवे तस्स।।(1369)

क्रोध के कारण मनुष्य लोगों की हिंसा करता है, उनके सम्बन्ध में झूठ बोलता है चोरी करता है। अतः उसमें हिंसा झूठ आदि सब दोष होते हैं।

दीपायन मुनि ने क्रोध से समस्त द्वारका नगरी भस्म कर दी। और दुर्गति में ले जाने वाले घोर पाप का बन्ध किया।

मान के दोष

कुल, रूप, आज्ञा, बल, श्रुत, लाभ, ऐश्वर्य, तप तथा अन्य बातों में अपने को बड़ा मानने वाला, उनका अहंकार करने वाला नीच गोत्र नामक कर्म का बन्ध करता है।

अपने से हीन व्यक्तियों को देखकर मूर्ख लोग मान करते हैं। किन्तु विद्वान अपने से बड़ों को देखकर मान दूर करते हैं। मानी से सब द्वेष करते है। वह कलह, भय वैर और दुःख का पात्र होता है तथा इस लोक और परलोक में नियम से अपमान का पात्र होता है।

सव्वे वि कोहदोसा माणकसायस्स होदि णादव्वा।
माणेण चेव मेघुणहिंसालियचोज्जमाचरदि।।(1372)

पहले जो क्रोध के दोष कहे हैं वे सब दोष मानकषाय के भी जानना। मानसे मनुष्य हिंसा, असत्य बोलना, चोरी और मैथुन में प्रवृत्ति करता है।

सयणस्स जणस्स पिओ णरो अमाणी सदा हवदि लोए।
णाणं जसं च अत्थं लभदि सकज्जं च साहेदि।।(1373)

मान रहित व्यक्ति जगत् में स्वजन और परजन सदा सबका प्रिय होता है। वह ज्ञान, यश और धन प्राप्त करता है तथा अन्य भी अपने कार्य को सिद्ध करता है।

ण य परिहायदि कोई अत्थे मउगत्तणे पउत्तम्मि।
इह य परत्त य लब्भदि विणएण हु सव्वकल्लाणं।।(1374)

मार्दव युक्त व्यवहार करने पर कोई धनहानि नहीं होती जिससे धनहानि के भय से मनुष्य मान करे। विनय से इस जन्म में और जन्मान्तर में सर्व कल्याण प्राप्त होते हैं।

मायाए मित्तिभेदे कदम्मि इधलोगिगच्छपरिहाणी।
णासदि मायादोसा विसजुददुद्धंव सामण्णं।।(1379)

सगर चक्रवर्ती के साठ हजार पुत्र महाबलशाली होते हुए भी मान दोष के कारण मृत्यु को प्राप्त हुए।

माया के दोष

जैसे एक कोटी धनका स्वामी होने पर भी यदि शरीर में कील काँटा घुसा हो तो शारीरिक सुख नहीं मिलता। उसी प्रकार तप से समृद्ध होने पर भी यदि अन्तर में माया रूपी शल्य घुसा है तो मोक्ष लाभ नहीं हो सकता।

माया दोष से मनुष्य सबके द्वेष का पात्र होता है, उसका कोई विश्वास नहीं करता। सुजन भी उसका अपमान करते हैं। वह शीघ्र ही अपने बन्धु-बान्धवों का भी शत्रु बन जाता है।

पावइ दोसं मायाए महल्लं लहु सगावराधेवि।
सच्चाण सहस्साणि वि माया एक्का वि णासेदि।।(1378)

अपने द्वारा थोड़ा सा अपराध होने पर भी मायाचारी महान् दोष का भागी बनता है। एक बार का मायाचार हजारों सत्यों को नष्ट कर देता हैं। इस प्रकार महादोष का भागी होना और हजार सत्यों का विनाश ये माया के दोष हैं।

लोभेणासाधत्तो पावइ दोसे बहुं कुणदि पावं।
णीए अप्पाणं वा लोभेण णरो ण विगणेदि।।(1383)

मायाचार से मित्रता नष्ट हो जाती है और उससे इस लोक सम्बन्धी कार्यो का विनाश होता है। तथा मायादोष से विष मिश्रित दूध की तरह मुनि धर्म नष्ट हो जाता है। इस प्रकार मित्रता और कार्य का नाश तथा मुनि धर्म की हानि ये माया के दोष हैं।

माया करेदि णीचागोदं इत्थी णवुंसयं तिरियं।
मायादोसेण य भवसएसु डभिज्जदे बहुसो।।(1380)

'**माया करेदि णीचागोदं**' माया करोति नीचैर्गोत्रं कर्म। नीचैर्वा गोत्रमस्य जन्मान्तरे। '**इत्थी णवुंसयंतिरियं**' स्त्रीवेदं, नपुंसकवेदं, तिर्यग्गत्तिं च नामकर्म करोति। अथवा स्त्रीत्वं, नपुंसकत्वं, तिर्यक्त्वं वा। '**मायादोसेण**' मायासंज्ञितेन दोषेण। '**भवसदेसु**' जन्मशतेषु। '**डभिज्जदि**' वंच्यते। '**बहुसो**' बहुशः।।(1380)

माया से नीच गोत्र नामक कर्म का बन्ध होता है, जिससे दूसरे जन्म में नीच

कुल में जन्म होता है। तथा स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और तिर्यञ्चगति नाम कर्म का बन्ध करती है। अथवा माया से स्त्रीपना, नपुंसकपना और तिर्यञ्चपना प्राप्त होता है। माया से उत्पन्न हुए दोष से सैकड़ों जन्मों में बहुत बार ठगाया जाता है अर्थात् किसी को एक बार ठगने से बार-बार ठगा जाता है।

कोहो माणो लोहो य जत्थ माया वि तत्थ सण्णिहिदा।
कोहमदलोहदोसा सव्वे मायाए ते होंति।।(1381)

जहाँ मायाचार है वहाँ क्रोध, मान लोभ भी रहते हैं। क्रोध मान और लोभ से उत्पन्न होने वाले सब दोष मायाचारी में होते हैं।

मायाचार के दोष से रुष्ट हुए कुम्भकार ने भरत नामक गाँव का धान्य सात वर्ष तक पूर्ण रूप से जलाया था।

'**लोभेण**' लोभेन हेतुना। '**आसाधत्तो**' ममेदंभविष्यतीत्याशया ग्रस्तः। '**पावदि दोसे**' प्राप्नोति दोषान् **बहुं कुणदि पावं** पापं च बहु करोत्याशावान्। **'णीए'** बान्धवान्। '**अप्पाणं वा**' आत्मानं वा। लोभेण लोभेन। **णरो ण विगणेदि** न विगणयति। बान्धवानपि बाधते स्वशरीरश्रमं च नापेक्षते इति यावत्।

वस्तुनः सारासारतया न कश्चित् कर्मबन्धातिशयः येन केनचिद्द्रव्येण जनिता मूर्च्छा कर्मबन्ध निमित्तं आत्मा शुभपरिणामनिमित्तत्वादिति मत्वा सूरिराचष्टे-

तृप्तिमापादयति द्रव्यमिति योऽवास्यानुरागः स नास्ति द्रव्यत इत्याचष्टे-

लोभ के दोष

लोभ से मनुष्य 'यह वस्तु मेरी होगी' इस आशा से ग्रस्त होकर बहुत दोष करता है; बहुत पाप करता है। लोभ से अपने कुटुम्बियों की और अपनी भी चिन्ता नहीं करता। उन्हें भी कष्ट देता है और अपने शरीर को भी कष्ट देता है।।(1383)

वस्तु के सारवान या असार होने से कर्मबन्ध में कोई विशेषता नहीं होती। जिससे किसी द्रव्य में उत्पन्न हुआ ममत्व भाव कर्मबंध में निमित्त होता है क्योंकि वह ममत्व भाव आत्मा के अशुभ परिणाम में निमित्त होता है, ऐसा मानकर आचार्य कहते हैं-

लोभो तणे वि जादो जणेदि पावमिदरत्थ किं वच्चं।
लगिदमउडादिसंगस्स वि हु ण पावं अलोहस्स।।(1384)

'**लोभो तणो वि जादो**' लोभस्तृणेऽपि जातो। '**जणेदि पापं**' जनयति पापं। '**इदरत्थ**' इतरत्र सारवति वस्तुनि। '**किं वच्चं**' किं वाच्यं। '**लगिदमगुडादिसंगस्स वि**' स्वशरीरविलग्नमुकुटादिपरिग्रहस्यापि न पापं भवति। '**अलोहस्स**' लोभकषायवर्जितस्य मुकुटादेः सारद्रव्यस्याति प्रत्यासत्तिर्न बन्धायेति मन्यते।

तृण से भी हुआ लाभ पाप को उत्पन्न करता है तब सारवान् वस्तु में हुए लोभ का तो कहना ही क्या है? जो लोभ कषाय से रहित है उसके शरीर पर मुकुट आदि परिग्रह होने पर भी पाप नहीं होता। अर्थात् सारवान् द्रव्य का सम्बन्ध भी लोभ के अभाव में बन्ध का कारण नहीं है।

साकेत नगरी में सीमन्धर पुत्र मृगध्वज नामक था। वह भद्रक नामक भैंसे के निमित्त से केवली हुआ।

'द्रव्य तृप्ति देता है' इस भावना से मनुष्य का द्रव्य में जो अनुराग है वह नहीं होने से बन्ध नहीं होता, यह कहते हैं-

तेलोक्केण वि चित्तस्स णिव्वुदी णत्थि लोभघत्थस्स।
संतुट्ठो हु अलोभो लभदि दरिद्दो वि णिव्वाणं।।(1376)

'**तेलोक्केण वि**' त्रैलोक्येनापि। '**चित्तस्स णिव्वुदो णत्थि**' चित्तस्य निर्वृत्तिर्नास्ति। '**लोभघत्थस्स**' लोभग्रस्तस्य। '**संतुट्ठो सन्तुष्टः**' लब्धेन केनचिद्वस्तुना शरीरस्थितिहेतुभूतेन। '**अलोभो**' द्रव्यगतमूर्च्छारहितः। '**लभदि**' लभते। '**दरिद्दो वि**' दरिद्रोऽपि। '**णिव्वाणं**' निर्वाणं। सन्तोषायत्ता चित्तनिर्वृतिर्न द्रव्यायत्ता, सत्यपि द्रव्ये महति असन्तुष्टस्य हृदये महति दुःखासिका।

जो लोभ से ग्रस्त हैं उसके चित्त को तीनों लोक प्राप्त करके भी सन्तोष न होता और जो शरीर की स्थिति में कारण किसी भी वस्तु को पाकर सन्तुष्ट रहता है, जिस वस्तु में ममत्वभाव नहीं है वह दरिद्र होते हुए भी सुख प्राप्त करता है। अतः चित्त की शान्ति सन्तोष के अधीन है, द्रव्य के अधीन नहीं है। महान् द्रव्य होते हुए भी जो असन्तुष्ट है उसके हृदय में महान् दुःख रहता है।

सव्वे वि गंथदोसा लोभकसायस्स हुंति णादव्वा।
लोभेण चेव मेहुणहिंसालियचोज्जमाचरदि।।(1387)

'**सव्वे वि गंथदोसा**' सर्वेऽपि परिग्रहस्य ये दोषाः पूर्वमाख्यातास्ते सर्वेऽपि।

'लोभकसायस्स' लोभकषायवतः लोभ कषायोऽस्येति लोभकषाय इति गृहीतत्वात्। अथवा लोभसंज्ञितस्य कषायस्य दोषा इति सम्बन्धनीयं। **'लोभेण चेव'** लोभेन चैव। मैथुनं, हिंसा, अलीकं, चौर्य वाचरति। ततः सावद्यक्रियायाः सर्वस्या आदिमान् लोभः।

पूर्व में परिग्रह के जो दोष कहे हैं वे सब दोष लोभकषायवाले के अथवा लोभ नामक कषाय के जानना। लोभ से ही मनुष्य हिंसा, झूठ, चोरी और मैथुन करता है। अतः समस्त पाप क्रियाओं का प्रथम कारण लोभ है।

जमदग्नि के पुत्र परशुराम की गायों को ग्रहण कर लेने के कारण राजा कार्तवीर्य लोभ दोष से समस्त परिवार और सेना के साथ मृत्यु को प्राप्त हुआ। परशुराम ने सबको मार डाला।

ण हि तं कुणिज्ज सत्तू अग्गी बग्घो व कण्हसप्पो वा।
जं कुणइ महादोसं णिव्वुदिविग्घं कसायरिव्।।(1389)

शत्रु, आग, व्याघ्र और कृष्ण सर्प भी वह बुराई नहीं करता जो बुराई कषाय-रूपी शत्रु करता है। वह कषायरूप शत्रु मोक्ष में बाधारूप महादोष कारण है।

इन्द्रिय कषायरूपी घोड़े दुर्दमनीय हैं इनको वश में करना बहुत कठिन है। वैराग्य रूपी लगाम से ही ये वश में होते हैं। किन्तु उस लगाम के ढीले होने पर वे पुरुष को दुःखदायी पापरूपी विषम स्थानों में गिरा देते हैं।

किन्तु इन्द्रिय कषायरूपी सर्पों से डसे हुए मनुष्य बहुत कष्ट से पीड़ित होकर, उत्तम-ध्यानरूपी कोड़े से भयभीत रहते हैं तो विषम पापस्थान में नहीं गिराते।

इन्द्रिय और कषायरूपी सर्पों से डसे हुए मनुष्य बहुत कष्ट पीड़ित होकर, उत्तम ध्यानरूपी सुख से भ्रष्ट हो, संयमरूपी जीवन को त्याग देते हैं।

किन्तु इन्द्रिय और कषायरूपी सर्प सम्यग्ध्यानरूपी सिद्ध औषधि और वैराग्यरूपी मंत्रों से वश में होने पर साधु के संयमरूपी जीवन को नहीं हरते।

इन्द्रियाँ बाण के समान पुरुषरूपी हिरन को बींधती है। बाण में पुंख होते हैं। भोगे हुए भोगों का स्मरण इनका पुंख है। भोगों की चिन्ता इनका वेग है। रति इनकी धारा-गति है जो विषयरूपी विष से लिप्त है। ये इन्द्रियरूप बाण मनरूपी धनुष द्वारा छोड़े जाते हैं।

आगे कहते हैं कि पुरुष रूप मृगों का घात करने में तत्पर उन बाणों को

संयमीजन ही निवारण करते हैं-

ध्यानरूपी श्रेष्ठ शक्ति से युक्त श्रमण योद्धा सम्यग्ज्ञानरूप दृष्टि से देखकर धैर्यरूप फलक के द्वारा इन्द्रियरूप बाणों का वारण करते हैं।

परिग्रहरूपी घोर वन में कषायरूपी विषैले काँटे फैले हैं। प्रमाद उनका मुख है और विषयों की चाह से वे तीक्ष्ण हैं। धैर्यरूपी दृढ़ जूते को धारण किये बिना जो उस वन में विचरण करता है, उसे वे काँटे बींध देते हैं।

आगे कहते हैं इस प्रकार के धैर्यरूपी जूता धारण करने वाले संयमीका वे कषायरूप विषैले काँटे कुछ भी नहीं करते-

जिस मुनि ने धैर्यरूपी दृढ़ जूता धारण किया है और जो सम्यग्ज्ञानोपयोग दृष्टि से सम्पन्न है उसको वे कषायरूपी विषैले काँटे कुछ भी दुःख नहीं देते।

केवलज्ञान की उत्पत्ति का कारण

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम्।

केवल ज्ञान perfect knowledge (is gained) by destroying the मोहनीय deluding Karmas (in the end of the 10th) गुणस्थान stage and then by simultaneous destruction of knowledge and conation observing karmas ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय and of obstructive karmas अन्तराय in the end of the 12th गुणस्थान stage.

मोह का क्षय होने से ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म का क्षय होने से केवलज्ञान प्रकट होता है।

मोक्षशास्त्र में नवें अध्याय तक जीव तत्त्व से लेकर संवर तत्त्व पर्यंत वर्णन हुआ है। अवशेष मोक्षतत्त्व का वर्णन इस अध्याय में किया गया है। मोक्ष का अर्थ- मुक्त होना, स्वतंत्र होना, शुद्ध होना, बंधनों से रहित होना, पूर्ण स्वावलम्बी होना है।

जीव अनादि काल से मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्र के कारण संसार में परिभ्रमण करता है। योग्य अंतरंग-बहिरंग कारणों को प्राप्त करके सम्यग्दृष्टि बनकर सम्यग्ज्ञानी होकर सम्यग्चारित्र को धारण करता है। पहले बहिरंग परिग्रहों को त्याग करके मुनि चारित्र को स्वीकार करता है। ऐसे ही निर्ग्रंथ तपोधन धर्मध्यान एवं शुक्लध्यान को लेकर क्षपक श्रेणी पर चढ़कर मोहनीय कर्म को नाश करके पुनः ज्ञानावरणीय,

दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय कर्मों को नष्ट करके केवल ज्ञान आदि को प्राप्त करता है। इसका विशेष खुलासा निम्न प्रकार है-

पूर्वोक्त विधि के साथ परम तपोविशेष के द्वारा प्रशस्त अध्यवसाय की प्रकर्षता से उत्तरोत्तर विशुद्ध होते हुए शुभ प्रकृतियों का अनुभाग बढ़ता है और अप्रशस्त अशुभ अनुभाग कृश होकर विलीन हो जाता है। कोई वेदक सम्यग्दृष्टि अप्रमत्त गुणस्थान में सात प्रकृतियों के उपशम का प्रारम्भ करता है तथा सात प्रकृतियों का उपशम करके उपशम श्रेणी पर आरूढ़ होकर चारित्र मोहनीय कर्म को उपशम करना प्रारंभ करता है। कोई असंयत सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानों में से किसी भी एक गुणस्थान के अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यक्त्वमिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति इन सात प्रकृतियों का उपशम करना प्रारंभ करता है, पुनः अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण परिणाम करके उपशम श्रेणी पर चढ़कर अपूर्वकरण-उपशमक व्यपदेश को प्राप्त कर वहाँ नवीन परिणामों में पापकर्मों के प्रकृति, स्थिति और अनुभाग को क्षीण कर शुभ कर्मों के अनुभाग को बढ़ाते हुए, अनिवृत्ति बादर साम्पराय उपशमक गुणस्थान में पहुँच जाता है। वहाँ नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, छहनोकषाय पुंवेद, अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान दो क्रोध, दो मान, दो माया, दो लाभ, क्रोध-मान-संज्वलन नामकर्म प्रकृतियों का क्रमशः उपशम करता हुआ सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान के प्रथम समय में अर्थात् नौवें गुणस्थान के अंत भाग में माया संज्वलन का उपशम कर देता है तथा संज्वलन लोभ को कृश कर सूक्ष्मसाम्पराय नामक दसवें गुणस्थान में पहुँच जाता है। पुनः उपशांत कषाय के प्रथम समय में लोभ संज्वलन का उपशम कर समस्त मोहनीय कर्म का उपशम हो जाने से उपशांत कषाय कहलाता है। इस गुणस्थान में यदि आयु का क्षय हो जाय तो मरण हो सकता है अथवा पुनः कषायों की उदीरणा हो जाने से नीचे गिर जाता है।

पुनः वही साधक या दूसरा कोई जीव विशुद्धि के अध्यवसाय से अपूर्व उत्साह को धारण करते हुए पूर्व के समान क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर बड़ी भारी विशुद्धि से क्षायिक श्रेणी में आरूढ़ होकर पूर्वकथित लक्षण वाले अधःप्रवृत्त, अपूर्वकरण और अनिवृत्ति रूप तीन करणों के द्वारा अपूर्वकरणक्षपक अवस्था को प्राप्त कर उससे

आगे अप्रत्याख्यान और अप्रत्याख्यान क्रोध, मान माया और लोभ इन आठ कषायों को नष्ट कर नपुंसकवेद और स्त्रीवेद को उखाड़कर छह नोकषायों को पुरुषवेद में क्षेपण कर पुरुषवेद को क्रोध संज्वलन में, क्रोध संज्वलन को मान संज्वलन में, मान संज्वलन को माया संज्वलन और माया संज्वलन को लोभ संज्वलन में क्षेपण कर क्रम-क्रम से बादरकृष्टि विभाग से इनका क्षय करके अनिवृत्ति बादर साम्परायक क्षपक गुणस्थान में पहुँच जाता है। तदनन्तर लोभ संज्वलन कषाय को सूक्ष्म कर सूक्ष्म साम्परायक नामक दशम गुणस्थान को प्राप्त होता है। सूक्ष्म साम्पराय अवस्था का अंतर्मुहूर्त तक अनुभव करके समस्त मोहनीय कर्म का निर्मूल क्षय करके क्षीण कषाय (वा क्षपक मोह) नामक गुणस्थान को प्राप्त कर मोहनीय कर्म का समस्त भार उतार करके फेंक देता है। वह क्षपक उस गुणस्थान के उपान्त्य समय में निद्रा और प्रचला कर्म का नाशकर अंत समय में पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तराय कर्म का नाश कर अचिंत्यविभूतियुक्त केवलज्ञान एवं केवल दर्शन स्वभाव को निष्प्रतिपक्षी रूप से प्राप्त कर कमल की तरह निर्लिप्त एवं निर्लेप होकर साक्षात् त्रिकालवर्ती सर्व द्रव्य पर्यायों के स्वभाव का ज्ञाता सर्वत्र अप्रतिहत अनंतदर्शनशाली निरवशेष पुरुषार्थ को प्राप्त कर कृतकृत्य मेघ-पटलों से विमुक्त शरत्कालीन स्वकिरणकलापों से पूर्ण चन्द्रमा के समान सौम्यदर्शन तथा देदीप्यमान मूर्ति केवली हो जाता है। गोम्मट्टसार जीवकाण्ड में मोहक्षय की प्रक्रिया एवं केवलज्ञान प्राप्त करने का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है-

णिस्सेसखीणमोहो, फलिहामल भायणदुय समचित्तो।
खीणकसाओ भण्णदि, णिग्गंथो वीयरायेहिं।।(72)

जिस निर्ग्रंथ का चित्त मोहनीय कर्म के सर्वथा क्षीण हो जाने से स्फटिक के निर्मल पात्र में रखे हुए जल के समान निर्मल हो गया है उसको वीतराग देव ने क्षीण कषाय नाम का बाहरवें गुणस्थानवर्ती कहा है। जिस छद्मस्थ की वीतरागता के विरोधी मोहनीय कर्म के द्रव्य एवं भाव दोनों ही प्रकारों का अथवा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशरूप चारों भेदों का सर्वथा बंध, उदय, उदीरणा एवं सत्त्व की अपेक्षा क्षय हो जाता है वह बारहवें गुणस्थान वाला माना जाता है इसलिए आगम में इसका नाम क्षीण कषाय वीतराग छद्मस्थ ऐसा बताया है। यहाँ 'छद्मस्थ' शब्द अन्त्य

दीपक है और 'वीतराग' शब्द नाम, स्थापना और द्रव्यरूप वीतराग की निवृत्ति के लिए है। तथा यहाँ पर पाँच भावों में से मोहनीय के सर्वथा अभाव की अपेक्षा से एक क्षायिक भाव ही माना गया है।

(सर्वज्ञ भगवान् का स्वरूप)

केवलणाणदिवायरकिरण-कलावप्पणासियण्णाणो।
णवकेवललद्धुग्गम सुजणियपरमप्पववएसो।।(63)
असहायणाणदंसणसहिओ इदि केवलि हु जोगेण।
जुत्तोति सजोगजिण, अणाइणिहणारिसेउत्तो।।(64)

जिसका केवल ज्ञान रूपी सूर्य की अविभाग प्रतिच्छेद रूप किरणों के समूह (उत्कृष्ट अनंतानंत प्रमाण) अज्ञान अंधकार सर्वथा नष्ट हो गया हो और जिसको नव केवल लब्धियों के (क्षायिक-सम्यक्त्व, चारित्र, ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य) प्रकट होने से परमात्मा यह व्यपदेश (संज्ञा) प्राप्त हो गया है, वह इन्द्रिय आलोक आदि की अपेक्षा न रखने वाले ज्ञानदर्शन से युक्त होने के कारण केवली और योग से युक्त रहने के कारण सयोग, तथा घाति कर्मों से रहित होने के कारण जिन कहा जाता है ऐसा अनादि निधन आर्ष आगम में कहा है।

बारहवें गुणस्थान का विनाश होते ही जिसके तीन घाति कर्म और अघाति कर्मों की 16 प्रकृति, इस तरह कुल मिलाकर 63 कर्म प्रकृतियों के नष्ट होने से अनंत चतुष्टय-अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख और अनंतवीर्य तथा नव केवल लब्धि प्रकट हो चुकी हैं किन्तु साथ ही जो योग से भी युक्त है, उस अरिहंत परमात्मा को तेरहवें गुण्स्थानवर्ती कहते हैं।

मोक्ष के कारण और लक्षण

बन्धेहत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः।(2)

मोक्ष Liberation (is) the freedom from all Karmic matter, owing to the non existence of the cause of bondage and to the shedding (of all the Karmas)

बंध हेतुओं के अभाव और निर्जरा से सब कर्मों का आत्यन्तिक क्षय

होना ही मोक्ष है।

मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग रूप बंध के कारणों का निरोध (अभाव) हो जाने पर नूतन कर्मों का आना (आस्रव) रुक जाता है क्योंकि कारण के अभाव में कार्य का अभाव होता ही है।

तप आदि निर्जरा के कारणों का सन्निधान (निकटता) होने पर पूर्व अर्जित (संचित) कर्मों का विनाश हो जाता है।

प्रश्न- कर्मबंध संतान जब अनादि है तो उसका अंत नहीं होना चाहिए?

क्योंकि जो अनादि होता है उसका अंत नहीं होता तथा दृष्ट विपरीत (प्रत्यक्ष से विपरीत) की कल्पना करने पर प्रमाण का अभाव होता है।

उत्तर- अनादि होने से अंत नहीं होता ऐसा नहीं है, क्योंकि जैसे बीज और अंकुर की संतान अनादि होने पर भी अग्नि से अंतिम बीज के जला देने पर उससे अंकुर उत्पन्न नहीं होते हैं, उसी प्रकार ध्यानाग्नि के द्वारा अनादिकालीन मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय आदि कर्मबंध के कारणों को भस्म कर देने पर भवांकुर का उत्पाद नहीं होता, अर्थात् भवांकुर नष्ट हो जाता है। यही मोक्ष है, इस दृष्ट बात का लोप नहीं कर सकते।

दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं प्रादुर्भवति नाङ्करः।
कर्मबीजे तथा दग्धे न रोहति भवाङ्कुरः।।

''बीज के जल जाने पर अंकुर उत्पन्न नहीं होता, उसी प्रकार कर्म बीज के जल जाने पर भवांकुर उत्पन्न नहीं होता।''

कृत्स्न(सम्पूर्ण) कर्म का कर्म अवस्था रूप से क्षय हो जाना कर्मक्षय है, क्योंकि 'सत्' द्रव्य का द्रव्यत्व रूप से विनाश नहीं है किन्तु पर्याय रूप से उत्पत्तिमान होने से उनका विनाश होता है तथा पर्याय, द्रव्य को छोड़कर नहीं है अतः पर्याय की अपेक्षा द्रव्य भी व्यय को प्राप्त होता है, ऐसा कह दिया जाता है। क्योंकि पर्यायें उत्पन्न और विनष्ट होती हैं अतः पर्याय रूप से द्रव्य का व्यय होता है। अतः कारणवशात् कर्मत्वपर्याय को प्राप्त पुद्गल द्रव्य का कर्मबंध के प्रत्यनीक (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप) कारणों के सन्निधान होने पर उस कर्मत्वपर्याय की निवृत्ति होने पर उसका क्षय हो जाता है, उस समय वह पुद्गल द्रव्य अकर्म पर्याय से परिणत

हो जाता है। इसलिये कृत्स्न कर्म क्षय की मुक्ति कहना युक्त ही है।

हेदुमभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोधो।
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोधो।।(50)
कम्मस्साभावेण य सव्वण्हू सव्वलोगदरिसी य।
पावदि इन्दियरहिंद अव्वाबाहं सुहमणंतं।।(51) (पंचास्तिकाय)

कर्मों के आवरण में प्राप्त संसारी जीव का जो क्षायोपशमिक विकल्प रूप भाव है वह अनादिकाल से मोह के उदय के वश राग-द्वेष रूप परिणमता हुआ अशुद्ध हो रहा है यही भाव है। अब इस भाव से मुक्त होना कैसे होता है सो कहते हैं। जब यह जीव आगम की भाषा से काल आदि लब्धि को प्राप्त करता है तथा अध्यात्म भाषा से शुद्ध आत्मा के सन्मुख परिणाम रूप स्वसंवेदन ज्ञान को पाता है तब पहले मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियों के उपशम होने पर फिर उनका क्षयोपशम होन पर सराग सम्यग्दृष्टि हो जाता है। तब अर्हंत् आदि पंचपरमेष्ठी की भक्ति आदि के द्वारा मैं अनंत ज्ञानादि स्वरूप हूँ इत्यादि भावना स्वरूप आत्मा के आश्रित धर्मध्यान को पाकर आगम में कहे हुए क्रम से असंयत सम्यग्दृष्टि को आदि लेकर अप्रमत्त संयत पर्यंत चार गुणस्थानों के मध्य में से किसी भी एक गुणस्थान में दर्शनमोह को क्षयकर क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो जाता है। फिर मुनि अवस्था में अपूर्वकरण आदि गुणस्थानों में चढ़कर आत्मा सर्व कर्म प्रकृति आदि से भिन्न है ऐसे निर्मल विवेकमई ज्योतिरूप प्रथम शुक्लध्यान का अनुभव करता है। फिर राग-द्वेष रूप चारित्र मोह के उदय के अभाव होने पर निर्विकार शुद्धात्मानुभव रूप वीतराग चारित्र को प्राप्त कर लेता है जो चारित्र के मोह के नाश करने में समर्थ है। इस वीतराग चारित्र के द्वारा मोहकर्म का क्षय कर देता है- मोह के क्षय के पीछे क्षीण कषाय नाम बारहवें गुणस्थान में अंतर्मुहूर्त काल ठहरकर दूसरे शुक्लध्यान को ध्याता है। इस ध्यान से ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अन्तराय इन तीन घातिया कर्मों को एक साथ इस गुणस्थान के अन्त में जड़-मूल से दूरकर केवलज्ञान आदि अनंत चतुष्टय स्वरूप भाव मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

दंसणणाणसमग्गं झाणं णो अण्णदव्वसंजुत्तं।
जायदि णिज्जरहेदू सभावसहिदस्स साधुस्स।।(152)

इस प्रकार वास्तव में इन (पूर्वोक्त) भावयुक्त (भाव मोक्ष वाले) भगवान् केवली को जिन्हें स्वरूप तृप्तपने के कारण कर्मविपाक कृत सुख, दुःख रूप विक्रिया नष्ट हो गई है उन्हें आवरण के प्रक्षीणपने के कारण, अनंत ज्ञानदर्शन से सम्पूर्ण शुद्धज्ञान चेतनामयपने के कारण तथा अतीन्द्रियपने के कारण जो अन्य द्रव्य के संयोग से रहित है और शुद्ध स्वरूप में अविचलित चैतन्यवृत्ति रूप होने के कारण जो कथंचित् 'ध्यान' नाम के योग्य है ऐसा आत्मा का स्वरूप (आत्मा की निज दशा) पूर्वसंचित कर्मों की शक्ति का शातन (क्षीणता) अथवा उनका पतन (नाश) देखकर, निर्जरा के हेतुरूप से वर्णन किया जाता है।

जो संवरेण जुत्तो णिज्जरमाणोध सव्वकम्माणि।
ववगदवेदाउस्सो मुयदि भवं तेण सो मोक्खो।।(153)

वास्तव में केवली भगवान् को, भावमोक्ष होने पर, परम संवर सिद्ध होने के कारण उत्तर कर्म संतति निरोध को प्राप्त होकर और परम निर्जरा का कारणभूत ध्यान सिद्ध होने के कारण पूर्व कर्म संतति कि जिसकी स्थिति कदाचित् स्वभाव से ही आयुकर्म के जितनी होती है और कदाचित् समुद्घात विधान से आयुकर्म के जितनी होती है- आयुकर्म के अनुसार ही निर्जरित होती हुई अपुनर्भव (सिद्धगति) के लिए भव छूटने के समय होने वाला जो वेदनीय-आयु-नाम-गोत्ररूप कर्मपुद्गलों का जीव के साथ अत्यन्त विश्लेष (वियोग) है वह द्रव्यमोक्ष है।

ज्ञानावरणी-दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चार घातिया कर्मों के क्षय से अरहंत केवली बनते हैं। तीर्थंकर केवली समोवशरण की विभूति के साथ उपदेश करके भव्य जीवों को मोक्षमार्ग का स्वरूप बताते हैं और सामान्य केवली गंध कुटी में विराजमान होकर भव्य जीवों को उपदेश देते हैं तीर्थंकर केवली नियम से जघन्य रूप से नौ वर्ष एवं उत्कृष्ट रूप से अंतर्मुहूर्त अधिक 8 वर्ष कम, एक पूर्व कोटी वर्ष तक उपदेश करते हैं। अंत में समवशरण या गंध कुटी का विसर्जन होता है-दिव्यध्वनि का भी (उपदेश देना) संकोच हो जाता है और केवली योग निरोध करते हैं। जो मुनिश्वर 6 महीना आयु शेष रहते केवल ज्ञान प्राप्त करते हैं और उनके नाम गोत्र एवं वेदनीय कर्म की स्थिति अधिक होती है वे केवली समुद्घात भी करते हैं। अंत में ''अ इ उ ऋ लृ'' इन पाँच लघु अक्षर के उच्चारण काल प्रमाण अयोगी

गुणस्थान (14 वें) में जीव रहता है। उपान्त (द्विचरम, अंतिम समय के पहले 1 समय) समय में 72 प्रकृतियों का एवं अंतिम समय में 13 प्रकृतियों का नाश करके जीव सिद्ध, बुद्ध-नित्य निरंजन बन जाता है।

सीलेसिं संपत्तो, णिरूद्धणिस्सेसआसवो जीवो।
कम्मरयविप्पमुक्को, गय जोगो केवली होदि।।(65) गो. सार

जो अठारह हजार शील के भेदों का स्वामी हो चुका है और जिसके कर्मों के आने का द्वार रूप आस्रव सर्वथा बंद हो गया है तथा सत्त्व और उदय रूप अवस्था को प्राप्त कर्मरूप रज की सर्वथा निर्जरा होने से जो उस कर्म से सर्वथा मुक्त होने के सम्मुख है, उस योग रहित केवली को चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोग केवली कहते है।

अट्ठविहकम्मवियला, सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा किदकिच्चा, लोयग्गणिवासिणो सिद्धा।।(68)

जो ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों से रहित है, अनंतसुखरूपी अमृत के अनुभव करने वाले शांतिमय है, नवीन कर्मबंध के कारणभूत मिथ्यादर्शनादि भावकर्मरूपी अंजन से रहित है, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, अव्याबाध, अवगाहन, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघु, ये आठ मुख्य गुण जिनके प्रगट हो चुके हैं, कृतकृत्य हैं - जिनको कोई कार्य करना बाकी न रहा है, लोक के अग्रभाग में निवास करने वाले हैं, उनको सिद्ध कहते हैं।

औपशमिकादिभव्यत्वानां च।(3)

There is also non existence भाव or thought activity due to the operation, subsidence and to the destruction subsidence and operation of the Karma and of भव्यत्व (i.e. the capacity of becoming liberated).

औपशमिक आदि भावों और भव्यत्व भाव के अभाव होने से मोक्ष होता है।

भव्यत्व का ग्रहण अन्य पारिणामिक भावों की अनिवृत्ति के लिए है। पारिणामिक भावों में जीवत्व भाव की मोक्ष में अनिवृत्ति के लिए भव्यत्व भाव का ग्रहण किया गया है। अतः पारिणामिक भावों में भव्यत्व तथा औपशमिकादि भावों का अभाव भी

मोक्ष में हो जाता है।

सम्पूर्ण द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म के अभाव से, कर्म से जायमान औपशमिक, क्षयोपशमिक, औदयिक भावपूर्ण रूप से नष्ट हो जाते हैं। औपशमिक, क्षयोपशमिक और औदयिक भावों का वर्णन तत्त्वार्थसूत्र के दूसरे अध्याय में सविस्तार से किया गया है। केवल इन भावों का ही अभाव नहीं होता है इसके साथ भव्यत्व भाव का भी अभाव हो जाता है। भव्यत्व भाव को आगम में कुछ स्थान में पारिणामिक भी कहा है। आगमानुसार पारिणामिक भाव का अभाव नहीं होता है। क्योंकि पारिणामिक भाव उसे कहते हैं जो कर्म के उदय, उपशम, क्षयोपशम एवं क्षय की अपेक्षा नहीं रखता हो। तब प्रश्न होता है कि भव्यत्व, पारिणामिक भाव होकर मोक्ष में क्यों नहीं रहता है? तब इसका उत्तर वीरसेन स्वामी ने धवला में आगमोक्त व तार्किक शैली से किया है। उनका तर्क यह है कि भव्यत्व भाव पूर्ण शुद्ध पारिणामिक भाव नहीं है कथञ्चित् कर्मजनित है और कथञ्चित् कर्म निरपेक्ष है। भव्य उसे कहते हैं जो भावी भगवान् है अथवा जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को धारण करने की योग्यता रखता है। मिथ्यात्वादि कर्म के उदय से जीव सम्यग्रत्नत्रय को प्राप्त नहीं कर पाता है इसलिये अभव्यत्व भाव कर्म सापेक्ष है। इसी प्रकार मिथ्यात्वादि कर्म के क्षय, उपशम, क्षयोपशम के निमित्त से सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है इस अपेक्षा से भव्यत्व भाव भी कर्म सापेक्ष है। सिद्ध अवस्था में सम्पूर्ण कर्म का अभाव होने से, तथा भव्य और अभव्यत्व की शक्ति या व्यक्ति की योग्यता के अभाव से सिद्ध जीव भव्य, अभव्य व्यपदेश से रहित होते हैं।

अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः।(4)

Otherwise there remain सम्यक्त्व perfect right belief ज्ञान perfect right knowledge दर्शन perfect conatian and सिद्धत्व the state of having accomplished all.

केवलसम्यक्त्व, केवलज्ञान और सिद्धत्व भाव का अभाव नहीं होता।

कर्मबंधन से रहित होने के बाद जीव के सम्पूर्ण वैभाविक भाव नष्ट हो जाते है क्योंकि वैभाविक भाव के निमित्तभूत कारणों का अभाव हो जाता है। वैभाविक भाव के नष्ट होने पर स्वाभाविक भाव नष्ट नहीं होते परन्तु स्वाभाविक भाव पूर्ण

शुद्ध रूप में प्रगट हो जाते हैं। तत्त्वार्थसार में कहा भी है-

ज्ञानावरणहानात्ते केवलज्ञानशालिनः।
दर्शनावरणच्छेदादुद्यत्केवलदर्शनाः।।(37)
वेदनीयसमुच्छेदादव्याबाधत्वमाश्रिताः।
मोहनीयसमुच्छेदात्सम्यक्त्वमचलं श्रिताः।।(38)
आयुः कर्मसमुच्छेदादवगाहनशालिनः।
नामकर्मसमुच्छेदात्परमं सौक्ष्म्यमाश्रिताः।।(39)
गोत्रकर्मसमुच्छेदात्सदाऽगौरवलाघवाः।
अन्तरायसमुच्छेदादनन्तवीर्यमाश्रिताः।।(40)

ये सिद्ध भगवान् ज्ञानावरण कर्म का क्षय होने से केवलज्ञान से सुशोभित रहते हैं, दर्शनावरण कर्म का क्षय होने से केवलदर्शन से सहित होते हैं, वेदनीय कर्म का क्षय होने से अव्यबाधत्व गुण को प्राप्त होते हैं, मोहनीय कर्म का विनाश होने से अविनाशी सम्यक्त्व को प्राप्त होते हैं, आयुकर्म का विच्छेद होने से अवगाहना को प्राप्त होते हैं, नामकर्म का उच्छेद होने से सूक्ष्मत्व गुण को प्राप्त हैं, गोत्रकर्म का विनाश होने से सदा अगुरुलघु गुण से सहित होते हैं और अन्तराय का नाश होने से अनंत वीर्य को प्राप्त होते हैं।

सिद्धों की अन्य विशेषता -

तादात्म्यादुपयुक्तास्ते केवलज्ञानदर्शने।
सम्यक्त्वसिद्धतावस्था हेत्वभावाच्च निःक्रियाः।।(43)

वे सिद्ध भगवान् तादात्म्य सम्बन्ध होने के कारण केवलज्ञान और केवलदर्शन के विषय में सदा उपयुक्त रहते हैं तथा सम्यक्त्व और सिद्धता अवस्था को प्राप्त हैं। हेतु का अभाव होने से वे निःक्रिया-क्रिया से रहित हैं।

संसारविषयातीतं सिद्धानामव्ययं सुखम्।
अव्याबाधमिति प्रोक्तं परमं परमर्षिभिः।।(45) (तत्त्वार्थसार)

सिद्धों का सुख संसार के विषयों से अतीत, अविनाशी, अव्याबाध तथा परमोत्कृष्ट है ऐसा परम ऋषियों ने कहा हैं।

'न्यायपालिका और बदलती दुनिया' विषय पर आयोजित 'इंटरनेशनल जुडीशियल कॉन्फ्रेंस 2020' में दिए गए न्यायमूर्ति डी.वाइ.चंद्रचूड़ के वक्तव्य के संपादित अंश...

खिलेंगी विचारों की नई कोपलें

इस सम्मेलन ने दुनियाभर के बीस से ज्यादा न्यायाधिकरणों से आए जजों को परस्पर संवाद का एक मंच मुहैया कराया। दुनिया के कई न्यायाधिकरणों में अपीली और संवैधानिक पदों पर आसीन न्यायाधीश या तो प्रोन्नत होकर पहुँचते हैं या फिर सीधे बार से आते हैं। जब तक वे अधिवक्ता होते हैं, यह पेशा व्यक्ति को नई-नई सूचनाओं के प्रवाह से तरोताजा रखता है जिसके आधार पर नए विचार विकसित हो सकते हैं। भीड़ भरी अदालतें संवाद और सामाजिक अनुबंध को पैदा करने का एक उर्वर स्पेस होती हैं। इसके ठीक उलट न्यायाधीश अपेक्षाकृत स्थिर और अलगाव भरा जीवन जीते हैं। रातोंरात न्यायपालिका के चहकते गलियारों की जगह जजों के चैम्बर की खामोशी ले लेती है। इस सम्मेलन से जो अनुभव हमें प्राप्त हुए, उनसे नए विचारों से घिरे होने का एक नया उत्साह पैदा हुआ है। इस सम्मेलन ने हमारे चैम्बरों और हमारे मस्तिष्क दोनों की खिड़कियों को वैश्विक न्याय पद्धति और विचारों की दिशा में खोलने का काम किया है।

दुनिया भर के सहकर्मियों को सुनने और उनके साथ बातचीत करने के बाद यह बात समझ में आई है कि हमें हमारे बीच के भेद नहीं, हमारे समक्ष मौजूद चुनौतियों को आपस में जोड़ती है। संविधान यदि न्यायाधीशों के भीतर अपनी आस्था जताता है, तो यह आस्था इस बिनाह पर कायम होती है कि जज अपने काम में कानून का इस्तेमाल एक अंतर्निहित औजार के रूप में करें ताकि वे संवैधानिक मूल्यों की रक्षा कर सकें और हमारे समुदायों में जिन्हें इंसाफ की दरकार सबसे ज्यादा है, उनके लिए न्याय सुनिश्चित कर सकें। प्रौद्योगिकी, जलवायु परिवर्तन, आतंकवाद आदि के चलते पैदा हुई चुनौतियां एक जज के निजी न्यायाधिकार से बाहर की चीजें हैं। बाहर से आए, प्रतिष्ठित सहकर्मियों के साथ दो दिन के साहचर्य से हमें जो दृष्टि मिली है, वह दिखाती है कि न्याय की कोई सरहद नहीं होती। न्याय

प्रदान करने की प्रक्रिया के मूल में 'कॉलेजियलिटी' यानी जिम्मेदारी साझा करने वाले सहकर्मियों के बीच सहयोग की भावना निहित है।

विचारों और रणनीतियों का यह परस्पर विनिमय, निर्णय प्रक्रिया के अहम मोड़ो पर जजों को सहयोग देने के लिहाज से अनिवार्य है। नए विचारों की ताकत से बढ़कर इकलौती चीज यदि कोई है तो वो है नई मित्रताओं का बनना, और कुछ मामलों में पुरानी मित्रताओं का पुनर्जीवित होना। इन मित्रताओं का आधार हमारे समान पेशे से बहुत आगे जाता है। इसका संबंध केवल न्यायिक संस्कृति के साथ हमारे रिश्ते या फिर हमारी सरकारों के बीच मजबूत सहयोग तक सीमित नहीं है। इन मित्रताओं के बुनियादी मूल्य व आस्थाएं है- निष्पक्ष न्याय देने के प्रति वचनबद्धता और कानून के राज द्वारा प्रशासित एक प्रातिनिधिक लोकतंत्र के आदर्शों को कायम रखने की प्रतिबद्धता। इन्होंने ने ही सदियों से जजों को एक रखा है।

हाल के दिनों में न्याय निर्णय के जगत में कुछ उत्साहजनक बदलाव आए हैं। युनाइटेड किंगडम की सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि संसद की संवैधानिक अभिक्रियाएं जिसमें सरकार की निगरानी भी शामिल है, बिना किसी सुचिंतित तर्क के निलंबित नहीं की जा सकती है। मलावी की संवैधानिक अदालत ने अनियमितताओं से घिरे राष्ट्रपति के चुनाव को ही रद्द कर डाला ताकि नागरिकों के वोट की अखंडता और वैधता कायम रह सके। दक्षिण अफ्रीका की संवैधानिक अदालत ने बाल अधिकारों कपर एक महत्त्वपूर्ण फैसला देते हुए बच्चों को मामूली या तर्कसंगत दंड देने के कानूनी बचाव को ही अवैध करार दिया। कोलम्बिया की संवैधानिक अदालत ने सैनिटरी उत्पादों पर करों में कटौती कर दी और बोगोटा के शहर को निर्देश दिया कि सडकों पर रहने वाली औरतों के मासिक धर्म संबंधी स्वास्थ्य पर एक सार्वजनिक नीति का निर्माण करे।

जिम्बाब्वे के हाईकोर्ट ने ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के अधिकारों के हक में फैसला सुनाते हुए पुलिस हिरासत में प्रताड़ित किए गए ट्रांसजेंडर व्यक्यिों को मुआवजे के भुगतान का निर्देश दिया। केन्या के हाईकोर्ट ने डेटा संरक्षण कानून के बनाए जाने तक राष्ट्रीय बायोमीट्रिक पहचान प्रणाली को रोक दिया। जमैका के सुप्रीम कोर्ट ने राष्ट्रीय पहचान और पंजीकरण प्रणाली को रद्द करते हुए निजता और चयन के

अधिकार को वरीयता दी। बांग्लादेश के सुप्रीम कोर्ट ने वैवाहिक पंजीकरण पत्रों में बदलाव लाकर लैंगिक समानता को सुनिश्चित करने का काम किया। फ्रांस की अदालत ने गर्दन से नीचे पक्षघात से ग्रस्त व्यक्तियों के लिए लाइफ सपोर्ट को खत्म किए जाने के फैसले को कायम रखते हुए एक प्रतिष्ठापूर्ण जीवन के मूल्य को प्रतिपादित किया। यहां भारत के सुप्रीम कोर्ट ने फैसला दिया कि प्रधान न्यायाधीश का कार्यालय भी सूचना के अधिकार के दायरे में आता है। दुनिया भर की अदालतों के ये फैसले दरअसल नए विचारों के आदान-प्रदान को दिखाते हैं जिसका सबसे बड़ा उदाहरण एलजीबीटीक्यू व्यक्तियों के अधिकार से जुड़ा फैसला है जो भारत के सुप्रीम कोर्ट ने दिया था। बदले में हमारी अदालतें दुनिया भर की अदालतों से नजीर लेती हैं। हम एक-दूसरे के ज्ञान से परस्पर सीखते हैं और आगे बढ़ते हैं।

पदग्रहण के बाद महज कुछ महीनों के भीतर ही इस सम्मेलन को बुलाने में भारत के प्रधान न्यायाधीश की पहल सराहनीय है। इस किस्म के आयोजनों का एक अघोषित महत्व इस बात में निहित है कि जो तारीखी फैसले केवल कागजों तक सीमित रह जाते और जर्नलों का हिस्सा बनकर मर जाते, आज वे हारे जीये अनुभवों के रूप में साकार हो रहे हैं और उन्हीं लोगों के द्वारा, जिन्होंने ये फैसले दिए हैं।

कैथलीन क्लब, बनाम एडवर्ड्स के फैसले में ऑस्ट्रेलिया की हाईकोर्ट ने गर्भपात सेवाओं को लेने वाले मरीजों की सुरक्षा, आत्मसम्मान और निजता को सुरक्षित रखने वाले कानून को कायम रखा था। यह शानदार फैसला पढ़े जाने लायक है लेकिन आज मैं मुख्य न्यायाधीश सुजन कीफेल के साथ मंच साझा करते हुए गर्व महसूस कर रहा हूं जो ऑस्ट्रेलिया के हाईकोर्ट की पहली महिला चीफ जस्टिस होने के नाते लैंगिक समानता की जीती-जागती मिसाल हैं। बीते दो दिनों में हमारे बीच जिन सूचनाओं का आदान-प्रदान हुआ, उनसे दूर-दराज की जगहों पर विचारों की नई कोपलें खिलेगी। हमारी मित्रताएं इन पौधों के लिए खाद-पानी का काम करेंगी। अंततः ये कोपलें अगले किसी ऐतिहासिक फैसले के रूप में फलीभूत होंगी। जो कहते हैं कि आप पुराने जज को नए विचार नहीं सिखा सकते, उनसे मैं कहना चाहूंगा कि हम लोग आज भी दिलोदिमाग से कमोबेश जवान हैं। भारत के

अग्रणी न्यायपालकों में से एक ली नरीमन कहते हैं, 'आप कितने भी पुराने हो जाएं या कितने भी बूढ़े होते जाएं, आपके भीतर युवा उत्साह और ताकत का होना जरूरी है ताकि कानून की भव्यता और व्यापकता का आपको आभास हो सके और उसके भीतर छुपे रहस्यों व त्रुटियों को उजागर कर पाने की इच्छाशक्ति बनी रह सके।'

आप सब के साथ संवाद करने और मिलने से मुझे अपार सुख मिला है। मुझे भरोसा है कि आने वाले वर्षों में इसे हम सालाना सम्मेलन का रूप दे पाएंगे जो परस्पर अनुभवों व विचारों के आदान-प्रदान और न्याय की तलाश के क्रम में एकसंग विकसित होने के प्रति हमारी वचनबद्धता का द्योतक होगा।

मायाचारी का साम्राज्य तीनों लोक में

(मायाचारी तिर्यंचों में जन्म लेते और तीनों लोक में तिर्यंच ही व्याप्त हैं)

(चाल : दिल है छोटा-सा...)

देखो! देखो! देखो! मायावी को देखो।
इसका साम्राज्य तीनों लोक में देखो।
एकोन्द्रय से पंचेन्द्रिय तिर्यंच होते मायावी,
''माया तैर्यग्योनस्य'' कहती श्री जिनवाणी।।(1)
मन वचन काय कुटिलता से होते मायावी,
भिन्न-भिन्न होती तीनों योग की प्रवृत्ति।
मन में कुछ तो वचन-काय में अन्य प्रवृत्ति,
मच्छर घड़ियाल बगुला सम होती प्रवृत्ति।।(2)
मन्थरा शकुनी लोमड़ी गोमुखव्याघ्र सम प्रवृत्ति,
कपट, छल, माया, धोखा है पर्यायवाची।
नाम है कपटी, छली, मायाचारी, कुटिल, धूर्त, प्रप्रंची,
माया शल्य से जीव होते महान् पापी मिथ्यात्वी।।(3)
सभी पाप सभी कषाय करके भी वे छिपाते,
बगुला सम अन्दर... काला बाहर से सफेद होते।
मिलावट भ्रष्टाचार ठगी व चोरी करते,

षडसंत्र, प्रपंच, निन्दा, परदोष प्रगट करते।।(4)
केवल भौतिक मिलावट ही वे न करते,
विचार वचन व्यवहार से ले धर्म में भी करते।
सत्यनिष्ठा प्रामाणिकता पवित्रता न रखते,
जिससे मिथ्यात्वी होकर संसार में भ्रमते।।(5)
कलह, फूट, वैमनस्य वैरत्व उत्पन्न करते,
तथापि स्वयं को पावन, स्वच्छ, सरल बताते।
स्वसमस्त दोष अपराध अन्य पर थोपते,
स्पिटिंगसर्पसम स्वविष अन्य पर फेंकते।।(6)
किंपाकफलसम मिठे वचनरूपी विष उगलते,
मुख में प्रभुनाम बोल बगल में छूरी घोंपते।
घडियालसम शिकार खाते हुए आँसू बहाते,
विषाक्त वृक्ष कीट पशु सम बाह्य में सुन्दर होते।।(7)
अन्धेरा के सम भी होते मायावी,
स्वदोष परगुणों को छिपाते हैं मायावी।
गिरगिट-आक्टोपससम होते हैं मायावी।।(8)
मायावी स्वमाता-पिता-गुरु-मित्र को भी ठगते,
कृतघ्न बनकर उपकारी का भी अपकार करते।
अतएव एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय पशु स्त्री बनते,
माया त्याग हेतु ''सूरीकनक'' उपदेश करते।।(9)

(ग.पु.का., दि.-22-2-2020, रात्रि-8.49-11.37)

सन्दर्भ- तिर्यंच आयु का आस्त्रव

माया तैर्यग्योनस्य।(16)

The inflow तिर्यग्योनि Sub human age karma is caused माया by deceit.

माया तिर्यंचायु का आस्त्रव है।

चारित्रमोह के उदय से कुटिल भाव होता है, वह माया है। चारित्र मोह कर्म

के उदय से उत्पन्न जो आत्मा का कुटिल स्वभाव है, वह माया कहलाती है। संक्षेपतः वह माया निकृति तिर्यंच आयु के आस्रव का कारण है। विस्तार से मिथ्यात्वयुक्त अधर्म का उपदेश, बहु आरम्भ, बहु परिग्रह, अतिवंचना (अत्यन्त मायाचार), कूटकर्म, पृथ्वी की रेखा के समान रोष, निःशीलता, शब्द और संकेत आदि से परवंचना का षड्यंत्र, छल-प्रपञ्च की रूचि, परस्पर फूट डालना, अनर्थोभ्दावन, वर्ण, रस, गन्ध आदि को विकृत करने की अभिरूचि, जातिकुलशीलसंदूषण, विसंवाद में रूचि, मिथ्याजीवित्व, किसी के सद्गुणों का लोप, असद्गुणख्यापन, नील एवं कापोत लेश्या के परिणाम, आर्तध्यान और मरणकाल में आर्त्तरौद्रपरिणाम इत्यादि तिर्यंच आयु के आस्रव के कारण है।

नैःशील्यं निर्व्रतत्वं च मिथ्यात्वं परवञ्चनम्।
मिथ्यात्वसमवेतानामधर्माणां देशनम्।।(35)
कृत्रिमागुरुकर्पूरकुङ्कमोत्पादनं तथा।
तथा मानतुलादीनां कूटादीनां प्रवर्तनम्।।(36)
सुवर्णमौक्तिकादीनां प्रतिरूपकनिर्मितः।
वर्णगन्धरसादीनामन्यथापादनं तथा।।(37)
तक्रक्षीरघृतादीनामन्यद्रव्यविमिश्रणम्।
वाचान्यदुत्काकरणमन्यस्य क्रियया तथा।।(38)
कापोतनीललेश्यात्वमार्त्तध्यानं च दारूणम्।
तैर्यग्योनायुषो ज्ञेया माया चास्रवहेतवः।।(39)

शीलरहित होना, व्रतरहित होना, मिथ्यात्व धारण करना, दूसरों को ठगना, मिथ्यात्व से सहित अधर्मों का उपदेश देना, कृत्रिम अगुरु, कपूर और केशर का बनाना, झूठे नाप-तौल के बाँट-तराजू तथा कूट आदि का चलाना, नकली सुवर्ण तथा मोती आदि का बनाना, वर्ण गंध, रस आदि को बदलकर अन्य रूप देना, छाछ, दूध तथा घी आदि में अन्य पदार्थों का मिलाना, वाणी तथा क्रिया द्वारा दूसरों की विषय अभिलाषा को उत्पन्न करना, कापोत और नील लेश्या से युक्त होना, तीव्र आर्तध्यान करना और मायाचार करना ये सब तिर्यंच आयु के आस्रव के हेतु जानना चाहिये।

मनुष्य आयु का आस्रव

अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य।(17)

The inflow of मानुष्यायु human age karma is caused by slight wordly activity and by attachment to a few wordly objects of by slight attachment.

अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह वाले का भाव मनुष्यायु का आस्रव है।

नरक आयु के आस्रव के कारणों से विपरीत भाव मनुष्य आस्रव के कारण है। नरक आयु के आस्रवों के कारण बहु आरम्भादि का वर्णन कर दिया है। उससे विपरीत अल्पारम्भ, अल्परिग्रहत्व संक्षेप में मनुष्य आयु के आस्रव के कारण हैं। विस्तार से मिथ्यादर्शन सहित बुद्धि, विनीत स्वभाव प्रकृतिभद्रता, मार्दव-आर्जव परिणाम, अच्छे आचरणों में सुख मानना, रेत की रेखा के समान क्रोधादि, सरल व्यवहार, अल्पारम्भ, अल्प परिग्रह, संतोष में रति, हिंसा से विरक्ति, दुष्ट कार्यों से निवृत्ति, स्वागत तत्परता, कम बोलना, प्रकृति मधुरता, सबके साथ उपकार-बुद्धि रखना, औदासीन्यवृत्ति, ईर्षारहित परिणाम, अल्प संक्लेशता, गुरु, देवता, अतिथि की पूजा सत्कार में रूचि, दानशीलता, कापोत, पीत लेश्या के परिणाम, मरण समय में धर्मध्यान परिणति आदि लक्षण वाले परिणाम मनुष्यायु के आस्रव के कारण है।

स्वभावमार्दवोपेता आर्जवाङ्कितविग्रहाः।
सन्तोषिणः सदाचारा नित्य मन्दकषायिणः।।(92)
शुद्धाशया विनीताश्च जिनेन्द्रगुरुधर्मिणाम्।
इत्याद्यन्यामलाचारैर्मण्डिता येऽत्र जन्तवः।।(93)
ते लभन्तेऽन्यपाकेन चार्यखण्डे शुभाश्रिते।
नृगति सत्कुलोपेता राज्यादिश्रीसुखान्विताम्।।(94)

जो स्वभाव से मृदुतायुक्त हैं, जिनका शरीर सरलता से संयुक्त है, संतोषी हैं, सदाचारी हैं, सदा जिनकी कषाय मन्द रहती है, शुभ अभिप्राय रखते हैं, विनीत हैं, जिनेन्द्र देव निर्ग्रंथ गुरु और जिनधर्म का विनय करते हैं, इन तथा ऐसे ही अन्य

निर्मल आचरणों से जो जीव यहाँ पर विभूषित होते हैं, वे पुण्य के परिपाक से शुभ के मनुष्यगति को प्राप्त करते हैं। (श्री वीरवर्धमानचरिते)

गुणरिक्तेन किं तेन मानेनार्थः प्रसिद्ध्यति।

तन्मन्ये मानिनां मानं यल्लोकद्वयशुद्धिदम्।।(55) ज्ञानावर्णव

गुणरहित रीते मानसे कौनसे अर्थ की सिद्धि है? वास्तव में मानी पुरुषों का वही मान उचित कहा जा सकता है, जो इस लोक और परलोक की शुद्धि देने वाला हो।

भावार्थ-यद्यपि मानकषाय दुर्गति का कारण है, तथापि मान दो प्रकार के हैं, एक तो प्रशस्तमान और एक अप्रशस्त मान। जिस मान के वशीभूत होकर नीच कार्यों में प्रवृत्ति हो और जो परको हानिकारक हो, वह अप्रशस्त मान है। कोई बड़ा विद्वान वा उच्च व्रतधारी हो और कोई असदाचारी वा धनाढ्य पुरुष उस विद्वान वा सदाचारी का आदरसत्कार न करें, मन में अपने धन के घमंड से उसे हल्का समझें तो उसके पास कदापि विद्वानों वा व्रतधारियों को नहीं जाना चाहिये, क्योंकि उनके पास जाने से वा उनकी हाँ में हाँ मिलाने से उच्च ज्ञान और आचरण (धर्म) का अपमान होता है। यह विधान वा उदाहरण गृहस्थों के लिये है, मुनियो के लिये नहीं है।

अपमानकरं कर्म येन दूरान्निषिध्यते।

स उच्चैश्चेतसां मानः परः स्वपरघातकः।।(56)

जिससे अपमान करने वाले कार्य दूर से ही छोड़ दिये जाय वही उच्चाशय वालों का प्रशस्त मान है। इसके अतिरिक्त जो अन्य मान हैं, वे स्वपरके घातक अर्थात् अप्रशस्त हैं।

क्व मानो नाम संसारे जन्तुव्रजविडम्बके।

यत्र प्राणी नृपो भूत्वा विष्ठामध्ये कृमिर्भवेत्।।(57)

जीवमात्र की विडंबना करने वाले इस संसार में मान नाम का पदार्थ है ही क्या? क्योंकि जिस संसार में राजा भी मरकर तत्काल विष्टा में कृमि आदि कीट हो जाता है, और प्रत्यक्ष में भी देखा जाता है कि जो आज राजगद्दी पर विराजमान है वही कल राज्यरहित होकर रंक हो जाता है।

जन्मभूमिरविद्यानामकीर्तेर्वासमन्दिरम्।

पापपङ्कमहागर्तो निकृतिः कीर्तिता बुधैः।।(58)

मायाकषाय अविद्या की भूमि है, अपयशका घर है और पापरूपी कर्दमका बडा भारी गड्ढ़ा है, इस प्रकार विद्वानों ने माया का कीर्तन (कथन) किया है।

अर्गलेवापवर्गस्य पदवी श्वभ्रवेश्मनः।

शीलशालवने वह्निर्मायेयमवगम्यताम्।।(59)

यह माया मोक्ष रोकने को अर्गला है क्योंकि जब तक मायाशल्य रहता है तब तक मोक्षमार्ग का आचरण नहीं आता और नरकरूपी घर में प्रवेश करने की पदवी (द्वार) है, तथा शीलरूपी शालवृक्ष के वन को दग्ध करने के लिये अग्निसमान है, क्योंकि मायावीकी प्रकृत्ति सदा दाहरूप रहा करती है।

कूटद्रव्यमिवासारं स्वप्नराज्यमिवाफलम्।

अनुष्ठानं मनुष्याणां मन्ये मायावलम्बिनाम्।।(60)

आचार्य कहते हैं कि मैं मायावलम्बी पुरुषों के अनुष्ठान-आचरण को कूटद्रव्य(नकली द्रव्य) के समान असार समझता हूँ अथवा स्वप्न में राज्यप्राप्ति के समान निष्फल समझता हूँ, क्योंकि मायावान का आचरण सत्यार्थ नहीं होता किन्तु निष्फल होता है।

लोकद्वयहितं केचित्तपोभिः कर्त्तुमुद्यताः।

निकृत्या वर्त्तमानस्ते हन्त हीना न लज्जिताः।।(61)

कोई पुरुष तप द्वारा उभय लोक में अपने हितसाधनार्थ उद्यमी तो हुए हैं, परन्तु खेद है कि वे मायाचारसहित रहते हैं, सो बड़े नीच हैं और निर्लज्ज हैं। ऐसा नहीं विचारते कि हम तपस्वी होकर यदि मायाचार रक्खेंगे तो लोग हमें क्या कहेंगे?

मुक्तेरविप्लुतैश्चौक्ता गतिर्ऋज्वी जिनेश्वरैः।

तत्र मायाविनां स्थातुं न स्वप्नेऽप्यस्ति योग्यता।।(62)

वीतराग सर्वज्ञ भगवान् ने मुक्तिमार्ग की गति सरल की है, उसमें मायावी जनों के स्थिर रहने की योग्यता स्वप्न में भी नहीं है।

व्रती निःशल्य एव स्यात्सशल्यो व्रतघातकः।

मायाशल्यं मतं साक्षात्सूरिभिर्भूरिभीतिदम्।।(63)

व्रती तो निःशल्य ही होता है, शल्यसहित तो व्रत का घातक होता है और आचार्यों ने माया को साक्षात् शल्य कहा है, क्योंकि माया अतिशय भयदायक है।

भावार्थ- मायावी के अपने मायाचार के प्रकट होने का भय बना ही रहता है, अतएव उस (कपटी) का व्रत सत्यार्थ नहीं होता।

इहाकीर्तिं समादत्ते मृतो यात्येव दुर्गतिम्।

मायाप्रपञ्चदोषेण जनोऽयं जिह्मिताशयः।।(64)

इस मायाप्रपंच के दोष से यह कुटिलाशय मनुष्य इस लोक में तो अपयश को प्राप्त होता है और मृत्यु होने पर दुर्गति में ही जाता हैं।

छाद्यमानमपि प्रायः कुकर्म स्फुटति स्वयम्।

अलं मायाप्रपञ्चेन लोकद्वयविरोधिना।।(65)

कुकर्म ढकते हुए भी प्रायः अपने आप ही प्रगट हो जाता है, इस कारण दोनों लोकों को बिगाड़ने वाले इस मायाप्रपंच से अलं(बस) है।

भावार्थ- मायाचार से निंद्य कार्य किया जाय और छिपाया जाय तो भी प्रगट हुए बिना नहीं रहता, प्रगट होने पर वह उभयलोक को बिगाडता है, अतः इस मायाचार से अलग ही रहना चाहिये।

क्व मायाचरणं हीनं क्व सन्मार्गपरिग्रहः।

नापवर्गपथि भ्रातः संचरन्तीह वञ्चकाः।।(66)

मायारूप हीनाचरण तो कहाँ! और समीचीन मार्ग का ग्रहण करना कहाँ! इनमें बड़ी विषमता है इस कारण आचार्य महाराज कहते हैं कि हे भाई! मायावी ठग इस मोक्षमार्ग में कदापि नहीं विचर सकते।

बकवृत्तिं समालम्ब्य वञ्चकैर्वञ्चितं जगत्।

कौटिल्यकुशलैः पापैः प्रसन्नं कश्मलाशयैः।।(67)

कुटिलता में चतुर ऐसे मलिनचित्त पापी ठग बगुले के ध्यान कीसी वृत्ति (क्रिया) का आलम्बन कर इस जगत् को ठगते रहते हैं।

भावार्थ- बगुले की वृत्ति लोकप्रसिद्ध है। बगुला जल में समस्त अंगों को संकोच कर एक पाँव से खड़ा रहकर ध्यानमग्न हो जाता है, यदि मछलियाँ उसे कमल-पुष्पवत् समझ उसके निकट आ जाती हैं तो तत्काल उन्हें उठा कर खा जाता है, इसी प्रकार मायावी की वृत्ति होती है।

कुशल जनन बंध्यां सत्य सूर्यास्त संध्यां।

कुगति युवति मालां मोह मातंग शालां।।

शम कमल हिमानी दुर्यशोराजधानी।

व्यसन शत सहायं दूरतो मुञ्च मायाम्।।(53) सिंदूर प्रकरण

हे भव्य जनों! माया कपट को दूर से ही त्याग करो। कैसी है माया? कुशलता को जन्म देने में बन्ध्या स्त्री के समान है। सत्य वचन रूपी सूर्य के अस्त होने में संध्या के समान है। कुगति रूपी स्त्री के गले में वरमाला के समान है। फिर कैसी है माया? मोह रूपी हाथी को बाँधने का स्थान है तथा यह माया समभाव रूपी कमलवन को नष्ट करने में हिमपात के समान है। अपकीर्ति के रहने की राजधानी यह माया है तथा हजारों कष्टों की सहायता करने वाली भी यह माया ही है। इसलिये इस माया को दूर से ही छोड़ दो ऐसा श्रवण कर हे भव्य! अपने मन में विवेक लाकर माया रूप पाप कर्म को छोड़ आर्जव गुण को धारण कर जिससे पुण्य की प्राप्ति होगी। पुण्य से मंगलो की माला प्राप्त होगी।

विधाय मायां विविधैरुपायैः परस्य ते वंचनमाचरन्ति।

ते वंचयन्ति त्रिदिवापवर्गसुखान्महामोह सखा स्वमेव।।(54)

मोह राजा के मित्रजन उपाय करके छलकर के अन्य धर्मात्मा व सरल स्वभावी जनों को ठगते हैं।

महान् अज्ञान से युक्त अपने आपको ही स्वर्ग और मोक्ष सुख से वंचित करते हैं अथवा अपने कर्त्तव्य के अनुसार वे कुदेव तिर्यंच और नारकी जीवों में उत्पन्न होकर किये गये छल के कारण निरंतर दुःख भोगते हैं।

मायामविश्वास विलास मंदिरं दुराशयो यः कुरुते धनाशया।

सोनर्थ सार्थ न पतंतमीक्षते यथा बिडालो लुगड़ पयः पिवन्।।(55)

जो दुष्ट चित्त वाला मानव धन की आशा से लोभ कषाय के वशीभूत होकर मायाचारी करता है वह आदमी अपने आत्मा को कष्टों के समूह की तरफ आते हुए की तरह अवलोकन नहीं करता है। कथं? जैसे बिल्ली छलकर दूध पीती है परन्तु डण्डा के आघात की तरफ नहीं देखती है। फिर यह माया अविश्वास के रहने का घर है।

जो मानव मन में अन्य भाव और वचन में अन्य भाव तथा क्रिया में अन्य भाव रखते हैं वे मानव मायावी कहलाते हैं। उसका कोई घर या बाहर वाले लोग पता नहीं पा सकते हें कि यह कल किसको फंसा देगा क्योंकि यह सत्य, मन, वचन और काय की क्रिया से रहित है।

मुग्ध प्रतारण परायण मुज्जिहीते, यत्पाटवं कपट चित्तवृत्तेः।
जीर्यत्युपप्लवमवश्य मिहाप्यकृत्वा, नापथ्यभोजन मिवामयमायतौ तत्।। (56)

मायाचारी करने में जिसका मन आसक्त है और धन वैभव को प्राप्त करने की इच्छा जिसके मन में है उस मनुष्य की चतुराई आगामी काल में नाना प्रकार के उपद्रवों को उत्पन्न अवश्य ही करेगी, तब तक शान्त नही होता हैं अथवा शक्ति रहित नहीं होगा जब तक उसका विपाक होता है। मूर्खों को यह माया जैसे रोगी को अपथ्य भोजन देने पर वह भोजन रोग की वृद्धि करता है उसी प्रकार उदय में आये बिना जीर्ण नही होती है। यह माया मूर्खजनों को ठगने में चतुर है और दुर्गति में ले जाकर रख देती है। अतः माया का त्याग करो।

शुद्धभाव ही धर्म अशुद्धभाव ही कुधर्म

(अशुद्धभाव व निदानयुक्त धर्म यथार्थ से कुधर्म)

(अशुद्धभाव व निदानयुक्त धर्म की कठोर साधना से श्रेष्ठ शुद्धभाव व निदानरिक्त धर्म की सरल-मृदु साधना)

(चाल : 1. आत्मशक्ति... 2. क्या मिलिए...)

''वस्तुस्वभाव ही होता है धर्म'' अतः शुद्धात्मास्वभाव ही यथार्थ धर्म।
''धर्मो सो सम्मोतिणिदिट्ठं'' अतः समताभाव ही यथार्थ से धर्म।।
द्रव्यभावनोकर्म रहित होता शुद्धात्म, जो शुद्धबुद्ध आनन्द स्वरूप।
''सो मोह खोहो विहिण'' होने से जीवों का अण्णोण्ण परिणाम रूप।।(1)
ऐसी ऋद्धा-प्रज्ञा-चर्यायुक्त जीव ही क्रमशः आत्मासाधना से बनता भगवान्।
ऐसी भावना-साधना अनुप्रेक्षा से ध्यान-अध्ययन तप-त्याग से बने भगवान्।।
इस हेतु ही क्रोध-मान-माया-लोभक्षय से उत्तमक्षमादि दशधर्म को करे प्रकट।
स्वशुद्धात्मागुण प्रकट करना ही लक्ष्य, नहीं ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि वर्चस्व।।(2)

इहलोक परलोक निदान रहित ही व्रत,''निश्शल्योव्रती'' अर्थात् शल्य रहित व्रती।
माया मिथ्यात्व निदान से रहित व्रती, वे होते हैं अणुव्रती व महाव्रती।।
शल्य सहित न दोनों प्रकार के व्रती, न अणुव्रती श्रावक व महाव्रती होते श्रमण।
प्रशस्त निदान से व्रती होना सम्भव, अप्रशस्तनिदान से व्रतच्युति ही सम्भव।।(3)
प्रशस्त निदान है मोक्ष प्राप्ति की भावना, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ।
सुगइगमणं, समाहिमरणं जिनगुणसम्पत्ति, होउमज्झं व तदनुकूल द्रव्यादि निमित्त।।
इसके अतिरिक्त यदि प्रसिद्धि निमित्त, गणधर से तीर्थंकर बनने की कामना।
वह भी है अप्रशस्त निदान शल्य, मानकषायजन्य प्रसिद्धि की कामना।।(4)
प्रसिद्धि हेतु यदि तीर्थंकर बनने की कामना, होती है निदान जिससे होता मिथ्यात्व।
तत्काल धर्म से जो मान-सम्मान चाहना क्यों न होगा निदान जिससे मिथ्यात्व।।
जो ख्यातिलाभपूजादि चाह, धरि करन विविध विध देहदाह।
आत्म-अनात्म के ज्ञानहीन, जे जे करनी तन करन छीन।।(छ.ढा.)।।(5)
रोके न चाह निजशक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुःखदायक अज्ञान जान।।(छ.ढा.)
इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताको जानो मिथ्याचारित्र।
ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आत्म के हित पंथ लाग।।(छ.ढा.)
जिनगुण सम्पत्ति होउ मज्झं ही होता लक्ष्य, तब तो वह है प्रशस्तनिदान।
अन्यथा सांसारिक भोग की यदि कामना, वह होती है अप्रशस्त निदान।।
इस दृष्टि से सत्ता-सम्पत्ति चाहना, स्वामित्व वर्चस्व धर्म से चाहना।
विवाह नौकरी सन्तान धन चाहना, क्यों न हीं निदान बोली से धन की कामना।।(6)
कषाय संक्लेश निदान से युक्त सभी धर्म नहीं है यथार्थ से अधर्म/(कुधर्म)।
यह है आध्यात्मिक कर्मसिद्धान्त का मर्म, ''सूरीकनक'' का लक्ष्य आत्मिक धर्म।।(7)

विसुद्धिं परिणामविशुद्धि।
'खवगो खणमवि च मुं चेज्ज' क्षपकः क्षणमपि न त्यजेत्।। (258)
विशुद्धि को क्षपक एक क्षण के लिये भी न छोड़े।
अज्झवसाणविसुद्धीउ वज्जिदा जे तवं विगट्ठंपि।
कुव्वंति बहिल्लेस्ससा ण होइ सा केवला सुद्धी।। (259) भ. आरा.

परिणमों की विशुद्धि को छोड़कर जो उत्कृष्ट भी तप करते हैं उनकी चित्तवृत्ति सदा सत्कार आदि में लगी होती है। उनके अशुभ कर्म के आस्रव से रहित शुद्धि नहीं होती।

अविगट्ठ पि तवं करेइ सुविसुद्धसुक्कलेस्साओ।
अज्झवसाणविसुद्धो सो पावदि केवलं सुद्धिं।। (260)

जो अतिविशुद्धि शुक्ललेश्या से युक्त और विशुद्ध परिणामवाला अनुत्कृष्ट भी तप करता है वह केवल शुद्धि को पाता है। यह गाथा का अर्थ है।

अज्झवसाणविसुद्धी कसायकलुसीकदस्स णत्थित्ति।
अज्झवसाणविसुद्धी कसायसल्लेहणा भणिदा।। (261)

जिसका चित्त कषाय से दूषित है उसके परिणाम विशुद्धि नहीं होती। इसलिये परिणाम विशुद्धि को कषाय सल्लेखना कहा है।

विशेषार्थ-जिस मुनि का चित्त क्रोधाग्नि के द्वारा कलुषित है उस मुनि के परिणाम विशुद्ध नहीं है। अतः उसके कषाय सल्लेखना नहीं है। कषाय के कृश करने को कषाय सल्लेखना कहते हैं। और कषाय के कृश हुए बिना परिणाम विशुद्ध नहीं होते। अतः परिणाम विशुद्धि के साथ कषाय सल्लेखना का साध्य साधन भाव सम्बन्ध है। जो शुभ परिणामों के प्रवाह में बहता है वही चार कषायों की सल्लेखना करता है यह कहकर, सामान्य से चारों कषायों को कृश करने का उपाय उनके प्रतिपक्षी चार प्रकार के परिणाम है, यह कहते हैं-

काध खमाए माणं च मद्दवेणाज्जवेण मायं च।
संतोसेण य लोहं जिणदु खु चत्तारि वि कसाए।। (262)

क्रोध को क्षमा से, मान को मार्दव से माया को आर्जव से और लोभ को सन्तोष से, इस प्रकार चारों ही कषायों को जीतो।

कोहस्स य माणस्स य मायालोभाण सो ण एदि वसं।
जो ताण कसायाणं उप्पत्तिं चेव वज्जेइ।। (263)

जो उन कषायों की उत्पत्ति को ही रोक देता है वह मुनि, क्रोध, मान, माया, लोभ के वश में नहीं होता।

त वत्थुं मोत्तव्वं जं पडि उप्पज्जदे कसायग्गि।
तं वत्थुमल्लिएज्जो जत्थोवसमो कसायाणं।। (264)

उस वस्तु को छोड़ देना चाहिए जिसको लेकर कषारूपी आग उत्पन्न होती है। और उस वस्तु को अपनाना चाहिए जिसके अपनाने से कषायों का उपशम हो।

जइ कहवि कसायग्गी समुट्ठिदो होज्ज विज्झवेदव्वो।
रागद्दोसुप्पत्ती विज्झादि हु परिहरंतस्स।। (265)

यदि थोड़ी भी कषायरूप आग उठती हो तो उसे बुझा दे। जो कषाय को दूर करता है उसके राग-द्वेष की उत्पत्ति शान्त हो जाती है।

नीच जन की संगति की तरह कषाय हृदय को जलाती है। अशुभ अंगोंपांग नामकर्म के उदय से जो मुख विरूप होता है वैसे ही कषायों के उदय में मनुष्य का मुख क्रोध से विरूप हो जाता है। जैसे धूल पड़ने से आँख लाल हो जाती है उसी तरह क्रोध से आँख लाल हो जाती है। जैसे महावायु से शरीर काँपने लगता है वैसे ही क्रोध से मनुष्य काँपने लगता है। जैसे शराबी शराब पीकर जो चाहे बकता है वैसे ही क्रोध में मनुष्य जो चाहे बोल देता है। जैसे जिसपर भूत का प्रकोप होता है वह कुछ भी करता है वैसे ही क्रोधी मनुष्य जो चाहे करता है। कषाय समीचीन ज्ञानरूपी दृष्टि को मलिन कर देती है। सम्यग्दर्शन वन को उजाड़ देती है। चारित्ररूपी सरोवर को सुखा देती है। तपरूपी पत्रों को जला देती है। अशुभकर्म बेल की जड़ जमा देती है। शुभकर्म के फल को रसहीन कर देती है। अच्छे मन को मलिन करती है। हृदय को कठोर बनाती है। प्राणियों का घात करती है। वाणी को असत्य की ओर ले जाती है। महान् गुणों का निरादर करती है। यशरूपी धन को नष्ट करती है। दूसरों को दोष लगाती है। महापुरुषों के भी गुणों को ढाँकती है, मित्रता की जड़ खोदती है। किये हुए भी उपकार को भुलाती है। महान् नरक के गढ़े में गिराती है। दुःखों के भँवर में फँसाती है। इस प्रकार कषाय अनेक अनर्थ करती है। ऐसी भावना से कषाय को शान्त करना चाहिए।

जावंति केइ संगा उदीरया होंति रागदोसाणं।
ते वज्जंतो जिणदि हु रागं दोसं च णिस्संगो।। (266)

जितने भी परिग्रह रागद्वेष को उत्पन्न करते हैं, उन परिग्रहों को छोड़नेवाला अपरिग्रह साधु राग और द्वेष को निश्चय से जीतता है।

इस प्रकार कषायरूपी अग्नि का उदय होता है और वह इस प्रकार अपकार

करती है, तथा इस प्रकार से उसे शान्त करना चाहिए, यह तीन गाथाओं से कहते हैं-

पडिचोदणासहणवायखुभिदपडिवयइंघणाइद्धो।
चंडो हु कसायग्गी सहसा संपज्जलेज्जाहि।। (267)

शिष्य की अयोग्य प्रवृत्ति को रोकने के लिए गुरु के द्वारा शिक्षा दिये जाने पर शिष्य ने जो प्रतिकूल वचन कहे वह गुरु को सहन नहीं हुए। वही हुई वायु। उस वायु से गुरु के मन में आग भड़क उठी। उसके पश्चात् गुरु ने शिष्य को पुनः समझाया तो शिष्यने पुनः प्रतिकूल वचन कहे उसने गुरु की कोपाग्नि में ईंधन का काम किया तो आग भड़क उठी। अथवा गुरुने शिष्य को शिक्षा दी। शिष्य उससे क्रुद्ध हुआ। शिष्य की क्रोधरूप वायु से क्षुब्ध होकर गुरुने पुनः उसे शिक्षा दी। उस शिक्षा ने शिष्य की क्रोधाग्नि की भड़काने में ईंधन का काम किया। ऐसे भयानक कषायाग्नि सहसा भड़कती है।

जलिदो हु कसायग्गी चरित्तसारं डहेज्ज कसिणं पि।
सम्मत्तं पि विराधिय अणंतसंसारियं कुज्जा।। (268)

जलती हुई कषायरूप आग समस्त चारित्र नामक सार को जला देती है। सम्यक्त्व को भी नष्ट करके अनन्त संसार के परिभ्रमण में लगा देती है।

इसलिए पापरूप कषायाग्नि को उत्पन्न होते ही बुझा देना चाहिए, उसको बुझाने का जल है-मैं भगवान् जिनेन्द्रदेव की शिक्षा की इच्छा करता हूँ। मेरा खोटा कर्म मिथ्या हो, मैं नमस्कार करता हूँ।

इसी तरह उत्कृष्ट उपशमभाव के द्वारा नोकषाय, संज्ञा, गारव और अशुभ लेश्याओं को घटाना चाहिए। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद नपुंसक वेद इन्हें नोकषाय कहते हैं। आहार, भय, मैथुन और परिग्रह की चाह का नाम संज्ञा है। ऋद्धि की तीव्र अभिलाषा, रस और सुख की चाह को गारव कहते हैं।

जो प्रतिदिन अपने नियमों को बढ़ाता है, जिसकी बड़ी और छोटी सिरायें दोनों आरे की हड्डियाँ और नेत्रों की हड्डियाँ स्पष्ट दिखाई देती हैं-शरीर को सम्यक्रूप से कृश करनेवाला वह यति नित्य आत्मा में लीन रहता है।

उक्त क्रम के अनुसार अभ्यास करनेवाला अभ्यन्तर सल्लेखना सहित बाह्य

सल्लेखना करने पर संसार के त्याग का दृढ़ निश्चय करके सब तपों में उत्कृष्ट तप करता हैं।

भावना का महात्म्य

ण करेदि भावणाभाविदो खु पीडं वदाण सव्वेसिं।
साधू पासुत्तो समुहदो व किमिदाणि वेदंतो।। (1206)

भावनाओं से भावित साधु गहरी नींद में सोता हुआ भी अथवा मूर्छित हुआ भी सब व्रतों में दोष नहीं लगाता। तब जागते हुए की तो बात ही क्या है।

इसलिये हे क्षपक! तुम प्रमाद त्यागकर इन भावनाओं से अपने को भावित करो। इससे तुम्हारे व्रत निरन्तर बने रहेंगे और सम्पूर्ण होंगे।

णिस्सल्लस्सेव पुणो महव्वदाइं हवंति सव्वाइं।
वदमुवहम्मदि तीहिं दु णिदाणमिच्छत्तमायाहिं।। (1208)

शल्य व्रतरूप परिणामों के घात में निमित्त होते हैं। अतः उनको त्यागना चाहिये, वह कहते हैं-

शल्य रहित के ही सब महाव्रत होते हैं। 'शृणाति' अर्थात् जो कष्ट देता है वह शल्य है। जैसे शरीर आदि में घुसनेवाला बाण, काँटा आदि। उनके समान जो अन्तरंग में घुसा परिणाम प्राणी को कष्ट पहुँचाने में निमित्त है उसे यहाँ शल्य शब्द से कहा है। जैसे एषणासमिति का अभाव अहिंसा व्रत का घातक है वैसे ही शल्य किसी एक व्रत का घातक है क्या? इस आशंका को दूर करने के लिये सर्व शब्द का प्रयोग किया है।

शंका-मिथ्यात्व आदि शल्य अणुव्रतों का भी घात करते है। यहाँ उन्हें महाव्रतों का घातक क्यों कहा?

समाधान-आपका कहना सत्य है किन्तु यहाँ महाव्रत का प्रकरण होने से महाव्रतों का घातक कहा है।

शंका-व्रत जो हिंसा आदि से विरतिरूप परिणाम मात्र हैं। वे मिथ्यात्व आदि शल्य के होने पर क्यों नहीं होते, जिससे यह कहा गया है कि निःशल्य के ही महाव्रत होते हैं?

समाधान-इस शङ्काका निराकरण करने के लिये कहते हैं-निदान, मिथ्यात्व

और माया इन तीनों के द्वारा व्रत का घात होता है।

शंका-माया शब्द अल्प अच्वाला है अतः उसे पहले रखना चाहिये?

समाधान-नहीं, क्योंकि मिथ्यात्व व्रत का घात प्रकर्ष रूप से करता है अतः प्रधान है। तब 'मिथ्यात्व और माया' ऐसा द्वन्द्व समास करने पर मिथ्यात्व शब्द का पूर्व निपात होता है। फिर निदान शब्द के साथ द्वन्द्व करने पर निदान शब्द का पूर्व निपात होता है क्योंकि वह अल्प अच्वाला है। यहाँ मोक्ष के मार्ग रूप से सम्यक्चारित्रका कथन है। वह सम्यक्चारित्र सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान नहीं होते। रत्नत्रयरूप अथवा अनन्त ज्ञानादिरूप मुक्ति से अन्यत्र चित्त का उपयोग लगाना कि इसका यह फल मुझे मिले, निदान है। वह सम्यग्दर्शन आदि की परम्परा से व्रत का घातक है। तथा मन से अपने दोषों को छिपाने रूप माया भी व्रतो का घात करती है।

विशेषार्थ-निदान से सम्यग्दर्शन में अतिचार लगता है और व्रत का मूल सम्यग्दर्शन है। तथा निदान से व्रतों का घात होता है।

तत्थं णिदाणं तिविहं होइ पसत्थापसत्थभोगकदं।

तिविधं पि तं णिदाणं परिपंथो सिद्धिमग्गस्स।। (1209)

'तत्थं' तेषु शल्येषु। **'णिदाणं'** निदानाख्यं शल्यं। **'त्रिविध'** त्रिविधं। **'होदि'** भवति। **'पसत्यमप्पसत्यभोगकदं'** प्रशस्तनिदानमप्रशस्तनिदानं, भोगनिदानं चेति। **'तिविधं पि तन्निदानं'** त्रिप्रकारमपि निदानं। **'परिपंथो'** विघ्नः। **'सिद्धिमग्गस्स'** रत्नत्रयस्य।।

उन शल्यों में निदान नामक के शल्य के तीन भेद हैं-प्रशस्त निदान, अप्रशस्त निदान और भोग निदान। तीनों ही प्रकार का निदान मोक्ष के मार्ग रत्नत्रय का विरोधी है।

प्रशस्त निदान का कथन-

संजमहेदुं पुरिसत्तसबलविरियसंघदणबुद्धी।

सावअबंधुकुलादीणि णिदाणं होदि हु पसत्थं।। (1210)

'संजमहेदु' संयमनिमित्तं। **'पुरिसत्तसत्तबलविरियसंघणबुद्धी'** पुरुषत्वमुत्साहः, बलं शरीरगतं दार्ढ्यं वीर्यं वीर्यान्तरायक्षयोपशमजः परिणामः। अस्थिबन्धविषया व्रजऋषभनाराचसहंननादिः। एतानि पुरुषत्वादोनि संयमसाधनानि

मम स्युरिति चित्तप्रणिधानं प्रशस्तनिदानं। **'सावयबंधकुलादिनिदानं'** श्रावकबन्धुनिदानं अदरिद्रकुले, अबन्धुकुले वा उत्पत्ति प्रार्थना प्रशस्तनिदानं।।

संयम में निमित्त होने से पुरुषत्व, उत्साह, शरीरगत दृढ़ता, वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से उत्पन्न वीर्यरूप परिणाम, अस्थियों के बन्धन विशेष रूप वज्रऋषभनाराच संहनन आदि ये संयम साधन मुझे प्राप्त हों, इस प्रकार चित्त में विचार होना प्रशस्त निदान है। तथा मेरा ये जन्म श्रावक कुल में हो, ऐसे कुल में हो जो दरिद्र न हो, बन्धु बान्धव परिवार न हो, ऐसी प्रार्थना प्रशस्त निदान है।

विशेषार्थ-एक प्रति में दरिद्रकुल तथा एक में बन्धुकुल पाठ भी मिलता है। दीक्षा लेने के लिये दरिद्रकुल भी उपयोगी हो सकता है और सम्पन्न घर भी उपयोगी हो सकता है। इसी तरह बन्धु बान्धव परिवारवाला कुल भी उपयोगी हो सकता है और एकाकीपना भी। मनुष्य के मन में विरक्ति उत्पन्न होने की बात है।

अप्रशस्त निदान-

माणेण जाइकुलरूवमादि आइरियगणधरजिणत्तं।
सोभग्गाणादेयं पत्थंतो अप्पसत्थं तु।। (1211)

'माणेण' मानने हेतुना। **'जातिकुलरूवमादि'** जातिर्मातृवंशः, कुलं पितृवंशः, जातिकुलरूपमात्रस्य सुलभत्वात्प्रशस्तजात्यादिपरिग्रहः। इह **'आइरियगणधरजिणत्तं'** आचार्यत्वं, गणधरत्वं, जिनत्वं। **'सोभग्गाणादेज्ज'** सौभाग्यं, आज्ञां, आदेयत्वं च। **'पच्छेतो'** प्रार्थमतः। **'अप्पसत्थं तु'** अप्रशस्तमेव निदानं मानकषाय दूषितत्वात्।।

मानकषाय के वश जाति, कुल, रूप आदि तथा आचार्यपद, गणधरपद, जिनपद, सौभाग्य, आज्ञा और आदेय आदि की प्राप्ति की प्रार्थना करना अप्रशस्त निदान है।

माता के वंश को जाति और पिता के वंश को कुल कहते है। जाति कुल और रूप मात्र तो सुलभ हैं क्योंकि मनुष्य पर्याय में जन्म लेने पर ये तीनों अवश्य मिलते हैं। इसलिये यहाँ जाति कुल और रूप से प्रशंसनीय जाति आदि लेना चाहिये। मान कषाय से दूषित होने से यह अप्रशस्त निदान है।

क्रोध कषाय के वश होकर भी कोई मरते समय दूसरे का वध करने की प्रार्थना करता है। जैसे वशिष्ठ ऋषिने उग्रसेन का घात करने का निदान किया था।

विशेषार्थ-वशिष्ठतापसने उग्रसेन को मारने का निदान किया था। इस निदान

के फल से वह मरकर उग्रसेन का पुत्र कंस हुआ। और उसने पिता को जेल में डालकर राज्यपद प्राप्त किया। पीछे कृष्ण के द्वारा स्वयं भी मारा गया।

भोगानिदान का कथन

देवों और मनुष्यों में होनेवाले भोगों की अभिलाषा करना तथा भोगों के लिए नारीपना, ईश्वरपना, श्रेष्ठिपना, सार्थवाहपना, नारायण और सकल चक्रवर्तीपना प्राप्त होने की वांछा करना भोगनिदान है।

संयम पर्वत के शिखर के समान है क्योंकि जैसे पर्वत का शिखर अचल और दुःख से चढ़ने योग्य है वैसा संयम भी है। उस संयमपर जो आरूढ़ है अर्थात् उत्कृष्ट संयम का धारी है, घोर तप करने में उत्साही है अर्थात् दुर्धर तप करता है और तीन गुप्तियों का धारी है, वह भी यदि निदान करता है तो अपना संसार बढ़ाता है, फिर दूसरे निदान करनेवाले का तो कहना ही क्या है।

जो मुक्ति के उत्कृष्ट सुख का अनादर करके अल्पसुख के लिए निदान करता है वह करोड़ों रुपयों के मूल्यवाली मणि को एक कौड़ी के बदले बेचता है।

जो निदान करता है वह लोहे की कील के लिए अनेक वस्तुओं से भरी नाव को जो समुद्र में जा रही है तोड़ता है, भस्म के लिए गोशीर्षचन्दन को जलाता है और धागा प्राप्त करने के लिए मणिनिर्मित हार को तोड़ता है। इस तरह का निदान करता है वह थोड़े से लाभ के लिए बहुत हानि करता है। एक सूपकार ने अपनी मूर्खता से अपनी नाव नष्ट कर डाली थी। इनकी कथाएँ (कथाकोशों से) जानना।

जैसे कोई कोढ़ी मनुष्य अपने रोग के लिए रसायन के समान ईख को पाकर उसे जलाकर नष्ट करता है वैसे ही भोग के लिए निदान करके मूर्ख मुनि सर्व दुःख और व्याधियों का विनाश करने में तत्पर मुनि पद को नष्ट करता है।

मोक्ष के अभिलाषी मुनिगण 'मैं मरकर पुरुष होऊँ' या मेरे वज्रऋषभानाराच संहनन आदि हो, इस प्रकार का भी निदान नहीं करते। क्योंकि पुरुष आदि पर्याय भवरूप है और भवपर्याय का परिवर्तन स्वरूप होने से संसार भवमय है। अर्थात् नाना भवधारण करने रूप ही तो संसार है।

हमारे शारिरिक, आगन्तुक और स्वभाविक दुःखों का नाश हो। तथा उनके कारणभूत कर्मों का क्षय हो। रत्नत्रय का पालन करते हुए मरण हो और जिनदीक्षा की

ओर अभिमुख करनेवाले ज्ञान का लाभ हो, इतनी ही प्रार्थना करने योग्य है। इनके सिवाय अन्य प्रार्थना करना योग्य नहीं है।

जो रत्नत्रय की आराधना करता है उसे निदान न करने पर भी आगामी जन्म में पुरुषत्व आदि का तथा संयम का लाभ निश्चय ही होता है।

निर्यापकाचार्य क्षपक को शिक्षा देता है कि तुम्हें मानकषाय का विनाश करने के लिए शरीर से निर्वेदका, मान के दोषों का और संसार से निर्वेद का चिन्तन करना चाहिये। शरीर के अशुचित्व आदि स्वभाव का चिन्तन करने से 'इस शरीर से क्या लाभ' इस प्रकार शरीर में अनादर होता है उसे ही शरीर निर्वेद कहते हैं।

शङ्का–शरीर का चिन्तन मानकषाय को दूर करने में निमित्त कैसे हो सकता है उससे तो शरीर में अनुराग का ही घात होता है क्योंकि शरीर निर्वेद उसका प्रतिपक्षी है?

समाधान–यद्यपि मान शब्द मानसामान्य का वाचक है तथापि वहाँ रूपविषयक अभिमान लिया है। वह शरीर के निर्वेद से नष्ट होता है। नीच कुलों में जन्म, आदरणीय गुणों प्राप्त न होना, सबका अपने से द्वेष करना, रत्नत्रय आदि का लाभ न होना, ये सब मानकषाय से होनेवाले दोष हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भवपरिवर्तन रूप संसार से विमुख होना संसार निर्वेद है। संसारनिर्वेद में उपयोग लगाने से अहंकार के निमित्तों का विनाश होता है। क्योंकि अनेक निन्दनीय गुण, जो अहंकार में निमित्त होते हैं, अनेक प्राणियों में पाये जाते हैं। तथा अपने को जो गुण प्राप्त हैं उनसे भी अतिशयशाली गुण दूसरों को प्राप्त हैं। अतः उनका अभिमान कैसा?

स्थान, मान, ऐश्वर्य आदि से हीन व्यक्ति को नीच कहते हैं। जो स्थान, मान ऐश्वर्य आदि से हीन होता है वह नीच हो जाता है। जीवों के कुल पथिक के विश्राम स्थान की तरह हैं। जैसे पथिक के विश्राम लेने का स्थान नियत नहीं है वैसे ही कुल भी नियत नहीं है। तब अनियत कुल का गर्व कैसा? 'कुलानि' पद बहुवचनान्त होने से कुलों की बहुतायत प्रकट करता है और कुलों की बहुतायत से कुलों की अनित्यता दिखलाई है।

आगे कहते हैं कि अपनी वृद्धि और दूसरे की हानि की भावना से गर्व होता है उसका अहंकार करना युक्त है किन्तु उच्च या नीच कुल में जन्म लेने से आत्मा की हानि वृद्धि नहीं होती-जिसमें रहकर जीव अपने शरीर को रचता है उसे योनि कहते

है योनि तो उच्च या नीच होती नहीं। तब 'उच्चासु व नीचासु' क्यों कहा?

समाधान-यहाँ योनि शब्द से कुल को ही कहा है। अतः ऐसा अर्थ होता है-मान्य कुल में अथवा निन्दनीय कुल में उत्पन्न हुए जीव को वृद्धि या हानि नहीं होती। सर्वत्र जीव का परिमाण उतना ही रहता है। ज्ञानादि गुणों में अतिशय होने से ही उत्कृष्टता होती है। कुलीन भी यदि निन्दित गुण वाला होता है तो दूसरे उसका आदर सम्मान नहीं करते। और अनादरणीय कुल में उत्पन्न होकर भी यदि गुणी होता है तो दूसरे उसका सन्मान करते हैं। कहा है-संसार में भ्रमण करते हुए प्राणी का कोई कुल स्थायी नहीं है। वही जीव अपने कर्म के अधीन होकर नीच, उत्तम अथवा मध्यम कुलों में जन्म लेता है। वही जीव अपने कर्म के वश होकर राजा और दास, चाण्डाल या ब्राह्मण, दरिद्र वंश वाला या सम्पन्न वंश वाला होता है तथा चोर, आग और दावानल से पीड़ित तथा माँगने वाला होता है। उच्च कुलों में मनुष्यों को जन्म लेने का गर्व कैसा? और नीच कुलों में जन्म लेने पर घृणा कैसी? गर्व करना हो तो धर्म में ही करना चाहिए और घृणा भी पाप से करनी चाहिए।

यह जीव अनन्तकाल तक नीच गोत्र में जन्म लेकर एक बार उच्च गोत्र में जन्म लेता है। इस प्रकार उच्च गोत्र की शलाका नीच गोत्र है। शलाका से मतलब है अनन्तकाल नीच गोत्र में जन्म लेकर एक बार उच्च गोत्र में जन्म। नीच गोत्रों के अन्तराल में प्राप्त उच्च गोत्र भी एक जीवने अनन्त बार प्राप्त किये हैं।

विशेषार्थ-यद्यपि यह जीव संसार में भ्रमण करते हुए अनन्तबार नीच गोत्र में जन्म लेता है तब कहीं एक बार उच्च गोत्र में जन्म लेता है। तथापि अनन्त बार नीच गोत्र में जन्म लेने के पश्चात् एक बार उच्च गोत्र में जन्म लेने की परम्परा को भी इसने अनन्त बार प्राप्त किया है अर्थात् इस क्रम से इसने उच्च गोत्र में भी अनन्त बार जन्म लिया है।

इस प्रकार अनन्त बार प्राप्त करके छोड़े हुए उच्च कुल में जन्म लेने का गर्व कैसा? गर्व तो तब होता जब अभी तक न पाने के बाद प्रथम बार ही इसे प्राप्त किया होता। तथा अनंत बार प्राप्त करके छोड़े हुए नीच गोत्र में जन्म लेने का दुःख कैसा।

'मैं उच्च कुल में जन्मा हूँ' ऐसा मन में संकल्प होने से जीव का उच्च कुल में अत्यन्त अनुराग होता है। इस प्रकार के संकल्प के बिना सामान्य कुल में जन्म

होने पर भी अनुराग नहीं होता। तथा नीच कुल में जन्म लेना ही दुःख का कारण नहीं है। दुःख का कारण है मान कषाय की बहुतायत। गाथा में कषाय शब्द सामान्यवाची है तथापि वहाँ उसका अर्थ मान कषाय लेना चाहिए। मानकषाय की बहुतायत जीव को दुःख देती है, केवल नीच गोत्र में जन्म ही दुःख का कारण नहीं होता।

गाथा में आये भाव शब्द के यद्यपि अनेक अर्थ है तथापि यहाँ उसका अचित्त लिया है। जो मन से उच्च गोत्र के समान नीच गोत्र को देखता है अर्थात् वह चाण्डाल कुल में जन्म श्रेष्ठ है ऐसा मानता है। मन में विचारता है कि जो जिसको प्राप्त है वही उसके लिए उत्तम है। जो प्राप्त नहीं है वह श्रेष्ठ भी हो तो उससे क्या? ऐसा विचार करते ही उच्च कुल के समाननीच कुल में भी अनुराग क्यों नहीं होगा? अवश्य ही होगा।

जो जीव भाव से उच्चपने को नीचपने की तरह देखता है उसको नीचपने की तरह उच्चपना में क्या दुःख नहीं होता? होता ही है। किसी से प्रीति या अप्रीति तो संकल्प के अधीन है यह बात समस्त जगत् के अनुभव से सिद्ध है। क्योंकि संकल्प से उच्च गोत्र होते हुए भी सुख का भाव और दुःख का अभाव नहीं होता।

अतः उच्च कुल या नीच कुल सुख या दुःख नहीं देता। किन्तु जीव का संकल्प सुख या दुःख करता है। संकल्प होने पर सुख दुःख होता है और संकल्प के अभाव में नहीं होता।

मानकषाय अर्थात् अहंकार पुरुष को अनेक जन्मों में नीच गोत्री बनाता है। देखो, लक्ष्मीमती, मैं सुन्दर हूँ, कुलीन हूँ यौवनवती हूँ इस गर्व के कारण अनेक बार नीच गोत्र में उत्पन्न हुई।

मानकषाय का जैसे निषेध किया है वैसे ही पूजा, अपमान, सौरूप्य, वैरूप्य सौभाग्य, दुर्भाग्य, आज्ञा अनाज्ञा का भी निषेध जानना। गाथा में आगत रूपशब्द यद्यपि सामान्य वाची होने से सुन्दर और असुन्दर दोनों ही प्रकार के रूप का वाचक है तथापि विरूप शब्द के साथ में प्रयुक्त होने से अतिशयरूप को कहता है। अतः उसका अर्थ सौरूप्य और वैरूप्य लिया गया है। सौभाग्य का अर्थ है सब को प्रिय होना और दुर्भाग्य का अर्थ है सबके द्वारा तिरस्कृत होना। जिसने अनेक जन्मों में तिरस्कार पाया है वह भी कभी पूजा जाता है। इसी प्रकार अनन्त जन्मों में पूजा प्राप्त

करनेवाला भी तिरस्कृत होता है। अतः उनमें अनुराग कैसा और तिरस्कार पाने पर दुःख कैसा? जो बहुत जन्मों में पूजा जाता है वह पुनः तिरस्कार को प्राप्त करेगा। पूजा होने पर आत्मा में वृद्धि नहीं होती और तिरस्कार होने पर आत्मा में कोई हानि नहीं होती। संकल्प के कारण ही प्रीति और सन्ताप होते हैं केवल पूजा और तिरस्कार से नहीं होते। कहा भी है-

जो मधुर वचनों के द्वारा अपने निर्मल गुणों के लिये संस्तुत होता है वही नाना प्रकार के कठोर वचनों से निन्दा का पात्र होता है। कैसा आश्चर्य है कि संसाररूपी संकट में पड़ा हुआ यह प्राणी अनेक प्रकार के कर्मों के फल को भोगता है। मनुष्यों का स्वामी होकर उनका नीच दास हो जाता है। पवित्र होकर पुनः अपवित्र हो जाता है। जो युवतियों के प्रिय होते हैं वे ही दुर्भाग्य आने पर द्वेष के पात्र बनते हैं। जो मनुष्य कभी उत्कृष्ट रत्नभूषणों से भूषित देखा गया है वही मनुष्य पुण्यहीन होने पर दरिद्र देखा जाता है। जो बहुत से मित्रों और बन्धु-बान्धवों से घिरा हुआ होता है, विपत्ति में पड़ने पर वही एकाकी देखा जाता है।

इत्यादि बातों का विचार न करनेवाले पुरुष को मान होता है। और जो इन बातों को सम्यक्रूप से देखता है उसको मान नहीं होता।

उच्चगोत्र, पुरुषत्व, शरीर की स्थिरता, अदरिद्रकुल में जन्म, बन्धु-बान्धव आदि परम्परा से मुक्ति के कारण हैं ऐसा चित्त में विचारकर इनका निदान करना कि ये मुझे प्राप्त हों, यदि संसार को बढ़ानेवाला है तो दूसरे के वध का चित्त में निदान करना दीर्घ संसार का कारण क्यों नहीं है? अवश्य है।

आयरियत्तादिणिदाणे वि कदे णत्थि तस्स तम्मि भवे।
धणिदं पि संजमंतस्स सिज्झणं माणदोसेण।। (1234)

'**आयरियत्तादिणिदाणे वि कदे**' आचार्यत्वादिनिदानेऽपि कृते। '**णत्थि तस्स**' नास्ति तस्य। '**तम्मि भवे**' तस्मिन्भवे निदानकरणभवे। '**धणिदं पि संजमंतस्स**' नितरामपि संयमं कुर्वतः। किं नास्ति '**सिज्झणं**' सेधनं मुक्तिः। केन? '**माणादोसेण**' मानकषायदोषेण। स ह्याचार्यत्वादिप्रार्थनां करोति। पृष्टो भविष्यामीति संकल्पेन, ततोऽप्यहंयुता।

यहाँ कोई शंका करता है कि रत्नत्रय में अतिशय लाभ की भावना से मैं

आचार्य गणधर आदि बनूँ ऐसी प्रार्थना क्यों बुरी है? इसका उत्तर देते हैं-

आचार्य पद आदि का निदान करेन पर भी जिस भव में निदान किया है उस भव में अत्यन्त संयम का पालन करने पर भी मानकषाय के दोष के कारण उसकी मुक्ति नहीं होती, क्योंकि वह 'मैं पूज्य होऊँ' इस संकल्प से आचार्य आदि होने की प्रार्थना करता है। इससे उसका अहंकार प्रकट होता है।

आगे कहते है कि भोगों के दोषों का चिन्तवन करने से भोगों का निदान नहीं होता-

ये भोग किंपाकफल के समान हैं। जैसे किंपाकफल खाते समय मीठा लगता है किन्तु उसका परिणाम अतिकटुक होता है। उसको खानेवाला मर जाता है। उसी प्रकार इन्द्रियों के भोग भोगने में मधुर लगते हैं किन्तु उनका फल अतिकटु होता है पीछे से जीव को बहुत दुःख और भय भोगना पड़ता है।

भोगनिदान के दोष

मुनि पद धारण करके भोग का निदान करने से तो मुनिपद भोगों के लिए ही धारण किया कहलायेगा। कर्मक्षय के लिये नहीं कहलायेगा। क्योंकि भोग का निदान करने पर चित्त राग से व्याकुल रहता है और ऐसा होने से नवीन कर्मों का बन्ध होता है तब उसके मुनिपद कैसा? जैसे कोई वन में वृक्ष की शाखा में लगे फलों को खाने में लग जाये तो उसके अपने इच्छित स्थानपर पहुँचने में विघ्न आ जाता है वैसे ही भोगका निदान करनेवाले श्रमण की भी दशा होती है।

आवडणत्थं जह ओसरणं मेसस्स होइ मेसादो।
सणिदाणबंभचेरं अब्बंभत्थं तहा होइ।। (1237)

'**आवडणत्थं**' अभिघातार्थं। '**जह**' यथा। '**ओसरणं**' अपगमः। '**मेसस्स होदि**' मेषस्य भवति। '**मेसादो**' मेषात्। '**सणिदाणबंभचेरं**' सनिदानस्य यतैर्ब्रह्मचर्य। '**अब्बंभत्थं**' मैथुनार्थं। '**तहा होदि**' तथा भवति।

जैसे एक मेढ़ा दूसरे मेढ़े पर अभिघात करने के लिये पीछे हटता है वैसे ही भोगों का निदान करनेवाले यति का ब्रह्मचर्य भी अब्रह्म अर्थात् मैथुन के लिए ही होता है।

जह वाणिया य पणियं लाभत्थं विक्किणंति लोभेण।
भोगाण पणिदभूदो सणिदाणो होइ तह धम्मो।। (1238)

जैसे व्यापारी लोभवश लाभ के लिये अपना माल बेचता है। वैसे ही निदान करनेवाला मुनि भोगों के लिए धर्म को बेचता है।

भोगों का निदान करनेवाले के मुनिपद की निन्दा करते हैं।

सपरिग्गहस्स अब्बंभचारिणो अविरदस्स से मणसा।
काएण सीलवहणं होदि दु णडसमणरूवं व।। (1239)

'सपरिग्गहस्स' सपरिग्रहस्य भोगनिदानवतो वेदजनितो रागोऽभ्यन्तरः परिग्रह इति सपरिग्रहः। तस्य। **'अब्बंभचारिणो'** मनसा मैथुनकर्मणि प्रवृत्तस्य। **'अविरदस्स'** अव्यावृत्तस्य मैथुनात्। **'मनसा'** चित्तेन। **'से'** तस्य कायेन खु शरीरेणैव। **'सीलवहणं'** ब्रह्मव्रतवहनं। **'होदि'** भवति। **'णडसमणरूवं व'** नटानां श्रमणरूपमिव। कायेन भावश्रामण्यरहितं यथा अफलमेवमिदमपि इति भावः।

भोगों का निदान करनेवालों के अभ्यन्तर में वेदजनित राग रहता है अतः वह परिग्रही है। तथा वह मन से मैथुन कर्म में प्रवृत्त होने से अब्रह्मचारी है और मन से मैथुन से निवृत्त न होने से अविरत है। वह केवल शरीर से ब्रह्मचर्य व्रत धारण करता है अतः वह नटश्रमण है। जैसे नट श्रमण का वेश धारण करता है वैसे ही अपने भी श्रमण का वेश धारण किया है। भावश्रामण्य के बिना केवल शरीर से मुनि बनना जैसे व्यर्थ है उसी तरह उस मुनि का मुनिपद भी व्यर्थ है।

जैसे कोई औषधि सेवन से सुख की अभिलाषा से रोगी होना चाहता है वैसे ही निदान करनेवाला भोगों की तृष्णा से दुःख चाहता है।

मैं इसके ऊपर सुखपूर्वक बैठूँगा, ऐसा मानकर जैसे कोई भारी शिला को कन्धे पर उठता है और उसके उठाने के कष्ट की परवाह नहीं करता। वैसे ही इस दुर्धर संयम को धारण करने से मुझे भोगों की प्राप्ति हो इस निदान के साथ जो संयम धारण करता है उसका संयम धारण भोगों के लिये है अर्थात् स्वल्पसुख के लिए बहुत दुःख उठाता है।

प्रमत्तयोग का अधिकार होने से ज्ञान, दर्शन और चारित्र में होने वाला ममत्व भाव परिग्रह नहीं है। क्योंकि निष्प्रमादी ज्ञान, दर्शन और चारित्रवान् व्यक्ति के मोह का

अभाव है। अतः निष्प्रमादी व्यक्ति के चारित्र का ममत्व मूर्च्छा नहीं है और उसके निष्परिग्रहत्व सिद्ध होता है। अथवा, ज्ञानादि तो आत्मा के स्वभाव हैं, अहेय हैं। अतः वे ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि परिग्रह हो ही नहीं सकते। उनमें तो अपरिग्रहत्व है। रागादि तो कर्मोदयजन्य है, अनात्म-स्वभाव है और हेय हैं। इसलिये इनमें होने वाला 'ममेद' संकल्प परिग्रह है। अर्थात् रागादि को परिग्रह कहते हैं।

परिग्रह ही सर्व दोषों का मूल कारण है। यह परिग्रह ही समस्त दोषों का मूल है। 'यह मेरा है' ऐसा संकल्प होने पर ही उसके रक्षण आदि की व्यवस्था करनी होती है और उसमें हिंसा अवश्यंभाविनी है, उस परिग्रह के लिए झूठ भी बोलता है, चोरी करता है, मैथनु कर्म में भी प्रयत्न करता है, अर्थात् परिग्रहाभिलाषी व्यक्ति सर्व कुकर्म करता है। इस परिग्रह के ममत्व के कारण नरकादि में अनेक प्रकार के दुःख भोगता है, इस लोक में भी निरंतर दुःख रूपी महासमुद्र में अवगाहन करता है, अर्थात् सैकड़ों दुःख भोगता है।

या मूर्छा नामेयं विज्ञातव्यः परिग्रहो ह्येषः।
मोहोदयादुदीर्णो मूर्छा तु ममत्वपरिणामः।। (111) पु.सि.

जो यह मूर्छा है यह ही परिग्रह जाननी चाहिए तथा मोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न हुआ ममता रूप परिणाम मूर्च्छा कहलाता है।

मूर्छा और परिग्रह की व्याप्ति

मूर्छालक्षणकरणात् सुघटा व्याप्तिः परिग्रहत्वस्य।
सग्रन्थो मूर्छावान् विनापि किल शेषसंगेभ्यः।। (112)

परिग्रह का मूर्छा लक्षण करने से दोनों प्रकार-बहिरंग अंतरंग परिग्रह की व्याप्ति अच्छी तरह घट जाती है बाकी सब परिग्रहों से रहित भी निश्चय करके मूर्छा वाला परिग्रह वाला है।

बाह्य परिग्रह में परिग्रहपना है या नहीं

यद्येवं भवति तदा परिग्रहो न खलु कोपि बहिरंगः।
भवति नितरां यतोसौ धत्ते मूर्छानिमित्तत्वं।। (113)

यदि इस प्रकार है अर्थात् परिग्रह का लक्षण मूर्छा ही किया जाता है उस अवस्था में निश्चय से कोई भी बहिरंग परिग्रह, परिग्रह नहीं ठहरता है इस आशंका के

उत्तर में आचार्य उत्तर देते हैं कि बाह्य परिग्रह भी परिग्रह कहलाता है क्योंकि यह बाह्य परिग्रह सदा मूर्छा का निमित्त कारण होने से अर्थात् यह मेरा है ऐसा ममत्वपरिणाम बाह्य परिग्रह में होता है इसलिये वह भी मूर्छा के निमित्तपने को धारण करता है।

परिग्रह में हिंसा

हिंसापर्यायत्वातु सिद्धा हिंसातरंगसंगेषु।

बहिरंगेषु तु नियतं प्रयायु मूर्छैव हिंसात्वं।। (119)

अंतरंग परिग्रहों में हिंसा के पर्याय होने से हिंसा सिद्ध है बहिरंग परिग्रहों में तो नियम से मूर्छा ही हिंसापने को सिद्ध करती है।

बाह्य परिग्रह के त्याग का उपदेश

बहिरंगादपि संगाद्यस्मात्प्रभवत्यसंयमोऽनुचितः।

परिवर्जयेदशेषं तमचित्तं वा सचित्तं वा।। (127)

जिस बाह्य परिग्रह से भी अनुचित संयम उत्पन्न होता है उस अचित्त अथवा सचित्त समस्त परिग्रह को छोड़ देना चाहिये।

धन धान्यादि भी कम करने उचित है

योपि न शक्तसत्यक्तुं धनधान्यमनुष्यवास्तुवित्तादि।

सोपि तनूकरणीयः निवृत्तिरूपं यतस्तत्त्वं।। (128)

जो कोई भी धन, धान्य, मनुष्य, घर, द्रव्य आदि छोड़ने के लिये नहीं समर्थ है वह परिग्रह भी कम करना चाहिये क्योंकि तत्त्वस्वरूप निवृत्तिस्वरूप है।

व्रतों की विशेषता

निश्शल्यो व्रती। (18) मोक्षशा.

A व्रती Vrati, or a vower should be without (blemish which is like a thron) शल्य Shalya, which makes the whole body restless.

जो शल्यरहित है वह व्रती है।

अनेक प्रकार से प्राणीगण को दुःख देने से शल्य कहलाती है। विविध प्रकार की वेदना रूपी शलाकाओं (सुइयों) के द्वारा प्राणियों को छेदती है, दुःख देती है, वे शल्य कहलाती है।

जैसे शरीर में चुभे हुए काँटा आदि प्राणियों को बाधा करने वाली शल्य हैं, अर्थात् शरीर में चुभा हुआ काँटा प्राणियों को दुःख देता है, उसी प्रकार कर्मोदय विकार भी शारीरिक और मानसिक बाधा का कारण होने से शल्य की भाँति शल्य नाम से उपचारित किया जाता है।

माया, मिथ्यात्व और निदान के भेद से शल्य तीन प्रकार के हैं। यह शल्य तीन प्रकार की है-माया, मिथ्यात्व और निदान। माया, निकृति, वञ्चना, छल-कपट से सब एकार्थवाची हैं। विषयभोगों की कांक्षा निदान है। अतत्वश्रद्धान मिथ्यादर्शन हैं।

व्रतों के भेद

अगार्यनगाश्च। (19)

उसके अगारी और अनागार ये दो भेद हैं। आश्रयार्थी जनों के द्वारा जो स्वीकार किया जाता है, वा उसमें पाया जाता है, वास किया जाता है, वह अगार-घर है। अगार, वेश्म, गृह ये सब एकार्थवाची हैं, अगार जिसके है, वह अगारी कहलाता है। जिसके अगार नहीं है, वह अनागार कहलता है।

यहाँ चारित्र मोह के उदय से घर के प्रति अनिवृत्त परिणामरूप भावागार विवक्षित है। अतः भावागार (जिसके चारित्र मोहनीय का उदय है वह) व्यक्ति किसी कारणवश घर को छोड़कर वन में रहता है तो भी वह अगारी है और चारित्रमोह के उदय के अभाव से निर्ग्रंथ मुनि किसी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के कारणवश शून्यागार, जिनमंदिर आदि में रहता है तो भी अनगार है अर्थात् विषय-तृष्णाओं से निवृत्त मुनि यदि शून्य घर, मंदिर आदि में रहता है तो भी वह अनागारी है। अथवा राजा की तरह व्रती कहलाता है।

जैसे बत्तीस हजार देशों का अधिपति चक्रवर्ती राजा कहलाता हैं। वैसे एक देश का स्वामी वा चक्रवर्ती आधे देश का स्वामी त्रिखण्डाधिपति क्या राजा नहीं कहलाता? अपितु, एकदेशपति वा आधे देश का पति भी राजा कहलाता ही है। उसी प्रकार अठारह हजार शील और चौरासी लाख उत्तरगुणों को धारण करने वाला जैसे पूर्ण व्रती है वैसे अणुव्रतधारक संयतासंयत व्रती नहीं है, फिर भी अणुव्रतधारी भी व्रती कहलाता है।

अगारी का लक्षण

अणुव्रतोऽगारी। (20)

'अणु' शब्द अल्पवाची है। जिसके व्रत अणु अर्थात् अल्प है वह अणुव्रत वाला अगारी कहा जाता है। अगारी के पूरे हिंसादि दोषों का त्याग संभव नहीं है इसलिए उसके व्रत अल्प होते हैं। यह त्रस जीवों की हिंसा का त्यागी है; इसलिए उसके पहला अहिंसा अणुव्रत होता है। गृहस्थ स्नेह और मोहादिक के वश से गृह विनाश और ग्राम विनाश के कारण असत्य वचन से निवृत्त है इसलिए उसके दूसरा सत्याणुव्रत होता है। श्रावक राजा के भय आदि के कारण दूसरे को पीड़ाकारी जानकर बिना दी हुई वस्तु को लेना यद्यपि अवश्य छोड़ देता है तो भी बिना दी हुई वस्तु के लेने से उसकी प्रीति घट जाती है इसलिये उसके तीसरा अचौर्याणुव्रत होता है। गृहस्थ के स्वीकार की हुई या बिना स्वीकार की हुई परस्त्री का संगत्याग करने से रति घट जाती है इसलिए उसके परस्त्रीत्याग नाम का चौथा अणुव्रत होता है तथा गृहस्थ, धन, धान्य और क्षेत्र आदि का स्वेच्छा से परिमाण कर लेता है इसलिये उसके पाँचवाँ परिग्रह परिमाण अणुव्रत होता है।

प्रतिशोध नहीं परिशोधन हेतु कविता-

श्रावक व साधु-साध्वियों की विपरीत परिणति

(उपगूहन-स्थितिकरण-वात्सल्य-प्रभावना हेतु)

(चाल : 1. क्या मिलिए... 2.आत्मशक्ति...)

कैसी हो रही विपरीत परिणति, अधिसंख्य गृहस्थ से साधु-साध्वी तक।
ज्ञान-वैराग्य-समता-शान्ति परे, ख्याति-पूजा-लाभ-वर्चस्व संक्लेश तक।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र मोक्षमार्ग परे, संकीर्ण पन्थ मत जाति स्वार्थ में चल रहे।
ज्ञान ध्यान तप त्याग समता परे, वाद-विवाद धन मान में उलझ रहे।। (1)...
निस्पृह निराडम्बर वीतराग परे, ढोंग पाखण्ड आडम्बर वित्त में डूब रहे।
दया दान सेवा परोपकार सहयोग परे, शोषण मिलावट चन्दा बोली कर रहे।।
शक्ति-भक्ति के अनुसार दान से परे, दबाव प्रलोभन बोली से धन उगाह रहे।
'वन्दे तद्गुण लब्धये' रूपी पूजा से परे, धन जन मान हेतु पूजा विधान कर रहे।। (2)...

पूजा सामग्री को निर्माल्य बताने वाले, धार्मिक धन करोड़ों ''ऊँ स्वाहा'' कर रहे।
ज्ञान वैराग्य निस्पृहतामय धार्मिक काम, वर्षायोग प्रवचन भी इस हेतु कर रहे।।
दान पूजा मुख्य होता श्रावक धर्म, ध्यान-अध्ययन होता मुख्य मुनि धर्म मे।
दोनों में अतिक्रम व्यतिक्रम हो रहा है, श्रावक साधु से स्वधर्म करवा रहे हैं।। (3)...
निस्पृह वीतरागी अपरिग्रही साधु से, धन जन मान सम्मान चाह रहे हैं।
ध्यान-अध्ययन समता शान्ति परे, श्रावक के अनुसार साधु चल रहे हैं।।
आत्म साधना आत्मविशुद्धि उन्नति परे, बाह्य प्रभावना में साधु लग रहे हैं।
जिसके कारण मुनि मुनीम के समान, गृहस्थों का धन मान सम्भाल रहे हैं।। (4)...
आत्म निर्माण व कर्म निर्जरा परे, भौतिक निर्माण-जीणोद्धार कर रहे हैं।
इस हेतु साधु-साध्वी आत्म साधना परे, मानी-धनी की साधना कर रहे हैं।।
मोक्ष प्राप्ति के प्रशस्त निदान परे, धन-मान-नाम के अप्रशस्त निदान कर रहे हैं।
दुक्खखहो कम्मक्खओ बोहिलाहो परे, ख्याति-पूजा-लाभ का निदान कर रहे हैं।। (5)...
व्यापार-राजनीति त्याग से बनते साधु, अभी दोनों काम भी साधु कर रहे हैं।
गृहस्थ तो दोनों में होते हैं लिप्त, साधु को भी दोनों में लिप्त कर रहे हैं।।
आगम विरुद्ध खूब हो रही है बोली, बोलना करना भी आगम विरुद्ध।
आगमदृष्टि व आत्मविशुद्धि से परे, संकीर्ण स्वार्थ कट्टरता से चल रहे हैं।। (6)...
पैर छूना पैर धोना आहार देना, सब कुछ होता है साधु का धन द्वारा।
धन से मानो धर्म बेचा जा रहा, निर्धन धार्मिक न खरीद सकता धर्म।।
भीड़ बोली प्रदर्शन हो गई प्रभावना, विलोम/(लोप) हो रही है पवित्र भावना।
धन त्याग या दान से नहीं है धर्म, धन विनिमय से हो रहा है धर्म।। (7)...
वीतराग के बदले में हो रहा वित्तराग, समता के बदले में हो रहा विषम।
अनेकान्त उदारता के बदले एकान्त कट्टर, मोक्ष के बदले में धन मान चक्कर।।
ऐसी विषमता के मध्य में भी जो, समता से करते आत्मा की विशुद्धि।
वे हैं महान् स्वागत योग्य अनुकरणीय, आत्मविशुद्धि ही 'कनक' का ध्येय।। (8)...

आगम सन्दर्भ-

जिण्णुद्धार पतिट्ठा जिणपूजा तित्थवंदण विसयं धणं।
जो भुंजइ सो भुंजइ जिणदिट्ठं णरयगय दुक्खं।। (32) रयणसार

जीर्णोद्धार, प्रतिष्ठा, जिनपूजा, तीर्थवन्दना के धन।
जो खाता है वह भोगता है जिनोक्त नरकगति दुःख।।

सम्म विसोही तव गुणचारित्तं सण्णाण दांण परिहीणं।
भरहे दुस्समकाले मणुयाणं जायदे णियदं।। (38)

भरत क्षेत्र में दुषमा काल में मनुष्यों में होते नीच गुण।
सम्यक्त्व विशुद्धि तप गुणचारित्र सुज्ञान दान परिहीन।।

भयं दाक्षिण्य कीर्ति च लज्ज्या आशा तथैव च।
पञ्चभिः पञ्चम काले जैनो धर्मः प्रवर्तते।।

पञ्चम काल में लोग जैन धर्म को (1) लोकभय (2) अन्य का मन दुःखित न होने के लिए (3) कीर्ति (4) लज्जा (5) आशा से पालन करेंगे।

चाहे किसी संगठन का हो, पंडित बिकाऊ है?

-अनुभव जैन

''चाहे किसी संगठन का हो, विद्वान बिकाऊ हो गया है, यह सिद्ध कर दिया कुछ विद्वानों ने किसी की हिम्मत नहीं हुई कि खड़े होकर, हाथ जोड़कर कह दे, महाराज अमुक घोषणा आगम विरुद्ध हैं, क्योंकि वजनदार लिफाफा अभी मिला नहीं था। यदि वहाँ कह देते तो हो सकता है वहाँ लिफाफा नहीं मिलता। जो दूसरों से भी कहते थे, इन विद्वानों को ज्यादा कौरा मत डाला करो, ये जिधर कौरा मिलता है, वहीं पूंछ हिलाने लगते हैं' इन्हें ये ज्ञान भी है, फिर भी...प्रवचनों की गद्दियों पर बड़ी-बड़ी डींगे हांकने वाले विद्वान अपने सारे सिद्धान्त ताक पर राखकर आगम व सिद्धान्त की धज्जियां उड़ा देते हैं, और दूसरे मंचों पर जिन बातों का विरोध कर रहे थे, मोटा लिफाफा मिलने पर तोता रटन्त जैसे उनकी बातों को दोहराकर चले आते हैं, फिर अपने यहां आकर पुनः वही डीगे हांकने लगते हैं। यह कथानक सच ही है- चार पंडितों ने मिलकर एक ब्राह्मण के हाथ से उसके बकरे को कुत्ता सिद्ध कर छीन लिया था।

हमने कुछ विद्वान और कुछ पत्रकारों को लंबे समय से देखा है, वह पहले मुनिराजों की खूब आलोचना करेंगे, फिर किसी न किसी तरह उनके पास एकांत में पहुँच जायेंगे और अपने लिए किसी पुरस्कार या किसी जेबी संस्था के लिए समाज

के कथित मालदार भक्तों से चंदे का आश्वासन ले आयेंगे।

अभी भी जैन सिद्धान्त के प्रति निष्ठावान कुछ विद्वान एवं कुछ संगठन है जिनके कारण विद्वत समाज की साख बची हुई है, किंतु ऐसे क्षणों में प्राचार्य नरेंद्र प्रकाश जी, फिरोजाबाद का स्मरण हो आता है।'' **दिशाबोधः जनवरी 2020**

हसरते कुछ और है, वक्त की इल्तज़ा कुछ और है!

-पुराने की कीमत पर नवनिर्माण क्यों-एक प्रश्न?

-विरोध नवनिर्माण का नहीं, विध्वंस का है। डॉ. बगडा.

आज हम अपनी बात शुरू कर रहे हैं अतिशय क्षेत्र बंधाजी के मीडिया प्रभारी चौधरी धर्मेन्द्र जैन शास्त्री के 25 दिसम्बर 2019 के व्हाट्सएप पोस्ट से-(हमने व्यक्तिगत रूप से भी धमेन्द्र जी से फोन पर बात की है।)

''बंधाजी में बनने वाले रजत मंदिर का विरोध करने वाले इस पोस्ट को जरूर पढ़े-

श्री 1008 दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बंधाजी की पावन पुण्य धरा पर परमपूज्य प्रातः स्मरणीय संत शिरोमणि आचार्य गुरुदेव **श्री 108 विद्यासागरजी महामुनिराज की प्ररेणा एंव मंगल आशीर्वाद से विश्व का प्रथम रजत मंदिर बनने जा रहा है,** जो कोई भी बंधाजी में बनने वाले रजत मंदिर का विरोध कर रहा है, वह एक बात अच्छी तरह से समझ ले कि आगम में कहा है कि '**जिनवच में शंका न धार**' तो हमारे लिए परमपूज्य आचार्य गुरुदवे श्री **108 विद्यासागरजी महाराज जिनेन्द्र देव है,** वर्त्तमान के वर्धमान हैं और आचार्य गुरुदेव के वचन में हमें कोई शंका नहीं है।

विशेष एक बात और सभी से निवेदन करता चाहता हूँ कि परमपूज्य आचार्य गुरुदेव श्री 108 विद्यासागरजी महाराज के प्रसंग में कुछ भी अपशब्द नहीं कहें, ना लिखें, क्योंकि यह बात जैन संस्कारों के विपरीत है।

और एक बात और विशेष श्री 1008 दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बंधाजी के अध्यक्ष श्री मुरली मनोहर जैन जो लगभग 30 वर्ष से बंधाजी के लिए तन-मन-धन से समर्पित है एवं **आचार्य गुरुदेव के अनन्य भक्त हैं,** कुछ लोग उनके बारे में गलत पोस्ट सोश्यल मीडिया पर शेयर कर रहे हैं, वह कृपया किसी ईमानदार

कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति के बार में ऐसा दुष्प्रचार ना करें।

प्रण लिया हैं, प्राण भी देंगें, ना पीछे कदम हटायेंगे।
बच्चा-बच्चा ले गुरुदेव की सौंगंध रजत मंदिर यहीं बनायेंगे।।

-चौधरी धर्मेन्द्र जैन शास्त्री, बंधाजी (7000829503)''

अब बात चंदेरी की; श्री दिगम्बर जैन चौबीसी बड़ा मंदिर ट्रस्ट, चंदेरी के लेटर हैड पर 4.10.19 का पत्र क्रमांक 625 का संदेश इस प्रकार है, जो ट्रस्ट ने मदद-गुहार हेतु श्री ज्योतिरादित्य सिंधिया जी को लिखा है-''अभी क्षेत्र पर भगवान आदिनाथ की प्रतिमा का कार्य राष्ट्रसंत, संत शिरोमणी, आचार्य श्रेष्ठ परमपूज्य श्री 108 विद्यासागरजी महामुनिराज के मार्गदर्शन और दिशा निर्देश में प्रारंभ है। आचार्य श्रेष्ठ के अनुसार यह कार्य पूर्ण हुआ तो अवश्य ही इस प्रतिमा का अद्भुत कार्य होगा, जिसकी प्रसिद्धि संपूर्ण भारतवर्ष ही नहीं विश्व में होगी। प्रतिमा के जीर्णोद्धार कार्य का प्रस्ताव हमारी चंदेरी जैन समाज के साथ जिला अशोक नगर के जैन समाज के द्वारा लिया गया था। जिसके कार्य में हम सभी तत्पर हैं।.....

डॉ. अशोक जैन, अध्यक्ष **डॉ. अविनाश कुमार सराफ, मंत्री**

दोनों संदर्भों से यह बात तो स्पष्ट हो गई कि चंदेरी हो या बंधाजी, सारे नवनिर्माण के कार्यों के पीछे परमपूज्य आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज का ही समर्थन है एवं मार्गदर्शन है।

बात नवनिर्माण की हो तो इसमें समाज को विरोध करने की कोई बात ही नहीं है, वरन् समाज सदैव ऐसे कार्यों का स्वागत ही करता है। परंतु नवनिर्माण की आड़ में यदि पुरातन का विध्वंश किया जा रहा है या करने की कोई योजना है तो फिर समाज के एक पक्ष द्वारा विरोध होना सहज स्वभाविक है। किसी क्रिया की प्रतिक्रिया होना कोई अनहोनी बात नहीं है। ऐसा करना उचित है या अनुचित, इस पर विचार भेद हो सकता है।

बीना बाराह हो या कुंडलपुर या ललितपुर, बंधाजी हो या चंदेरी हो, बुदेलखंड के सभी प्राचीन जिनबिंब और जिनायतनों का एक ही संघ विशेष के संतों द्वारा तोड़-फोड़ करना और फिर नव-निर्माण करना, कुछ संशय पैदा करता है उनकी नियत पर, उनके दूरगामी सोच पर।

क्या पारदर्शी तरीके से स्पष्ट अपनी पूर्ण योजना को बताकर
देश की संपर्ण जैन समाज को विश्वास में लेकर नवनिर्माण का कार्य करना
किसी भी प्रकार से समाज की अनुचित मांग है,
इस पर सबको गंभीरता से विचार करना चाहिए।

दिशोबोधः जनवरी 2020

संदर्भ-

धम्मेण होइ लिंगं, ण लिंगमत्तेण धम्मसंपत्ती।
जाणेहि भावधम्मं, किं ते लिंगेण कायव्वो।। (2) लिंग.पा.

धर्म से लिंग होता है, लिंगमात्र धारण करने से धर्म की प्राप्ति नहीं होती। इसलिए भावको धर्म जानो, भावरहित लिंग से तुझे क्या कार्य है?

भावार्थ-लिंग अर्थात् शरीर को वेष धर्म से होता है। जिसने भाव के बिना मात्र शरीर का वेष धारण किया है उसके धर्म की प्राप्ति नहीं होती, इसलिए भाव ही धर्म है। भाव के बिना मात्र वेष कार्यकारी नहीं है।

जो पावमोहिदमदी, लिंगं घेत्तूण जिणवरिंदाणं।
उवहसइ लिंगि भावं, लिंगं णासेदि लिंगीणं।। (3)

जिसकी बुद्धि पाप से मोहित हो रही है ऐसा जो पुरुष जिनेंद्र देव के लिंग को-नग्न दिंगबर वेष को ग्रहण कर लिंगी के यथार्थ भाव की हँसी करता है वह सच्चे वेषधारियों के वेष को नष्ट करता है अर्थात् लजाता है।

सम्मूहदि रक्खेदि य, अट्टं झाएदि बहुपयत्तेण।
सो पावमोहिदमदी, तिरिक्खजोणी ण सो समणो।। (5)

जो बहुत प्रकार के प्रयत्नों से परिग्रह को इकट्ठा करता है, उसकी रक्षा करता है तथा आर्तध्यान करता है वह पाप से मोहितबुद्धि पशु है, मुनि नहीं।

कलहं वादं जूवा, णिच्चं बहुमाणगव्विओ लिंगी।
वच्चदि णरयं पावो, करमाणो लिंगिरूवेण।। (6)

जो पुरुष मुनिलिंग का धारक होकर भी निरंतर अत्यधिक गर्व से युक्त होता हुआ कलह करता है, वादविवाद करता है अथवा जुवा खेलता है वह चूँकि मुनिलिंग से ऐसे कुकृत्य करता है अतः पापी है और नरक जाता है।

दंसणणाणचरित्ते, उवहाणे जइ ण लिंगरूवेण।

अंट्ठ झायदि झाणं, अणंतसंसारिओ होदी।। (8)

जो मुनिलिंग धारण कर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को उपधान अर्थात् आश्रय नहीं बनाता है तथा आर्तध्यान करता है वह अनंतसंसारी होता है।

जो जोडदि विव्वाहं, किसिकम्मवणिज्जजीवघादं च।

वच्चदि णरयं पावो, करमाणो लिंगिरूवेण।। (9)

जो मुनि का लिंग रखकर भी दूसरों के विवाहसंबंध जोड़ता है तथा खेती और व्यापार के द्वारा जीवों का घात करता है वह चूँकि मुनिलिंग के द्वारा इस कुकृत्य को करता है अतः पापी है और नरक जाता है।

चोराण मिच्छवाण य, जुद्ध विवादं च तिव्वकम्मेहिं।

जंतेण दिव्वमाणो, गच्छदि लिंगी णरयवासं।। (10)

जो लिंगी चोरों तथा झूठ बोलने वालों के युद्ध और विवाद को कराता है तथा तीव्रकर्म-खरकर्म अर्थात् हिंसावाले कार्यों से यंत्र अर्थात् चौपड़ आदि से क्रीड़ा करता है वह नरकवास को प्राप्त होता है।

दंसणणाणचरित्ते, तवसंजमणियमणिच्चकम्मम्मि।

पीडयदि वट्टमाणो, पावदि लिंगी णरयवासं।। (11)

जो मुनिवेषी दर्शन, ज्ञान, चारित्र तथा तप संयम नियम और नित्य कार्यों में प्रवृत्त होता हुआ दूसरे जीवों को पीड़ा पहुँचाता है वह नरकवास को प्राप्त होता है।

गिण्हदि अदत्तदाणं, परणिंदा वि य परोक्खदूसेहिं।

जिनलिंगं धारंतो, चोरेण व होइ सो समणो।। (14)

जो मनुष्य जिनलिंग को धारण करता हुआ भी बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण करता है तथा परोक्ष में दूषण लगा-लगाकर दूसरे की निंदा करता है वह चोर के समान है, साधु नहीं है।

बंधे णिरओ संतो, सस्सं खंडेदि तह य वसुहं पि।

छिंददि तरुगण बहुसो, तिरिक्खजोणी ण सो समणो।। (16)

जो किसी के बंध में लीन होकर अर्थात् उसका आज्ञाकारी बनकर धान

कूटता है, पृथिवी खोदता है और वृक्षों के समूह को छेदता है वह पशु है, मुनि नहीं।

भावार्थ-यह कथन साधुओं की अपेक्षा है। जो साधु वन में रहकर स्वयं धान तोड़ते हैं, उसे कूटते हैं अपने आश्रम में वृक्ष लगाने आदि के उद्देश्य से पृथिवी खोदते हैं तथा वृक्ष लता आदि को छेदते हैं वे पशु के तुल्य हैं, उन्हें हिंसा पाप की चिंता नहीं, ऐसा मनुष्य साधु नहीं कहला सकता।

रागो (रागं) करेदि णिच्चं, महिलावग्गं परं च दूसेदि।
दंसणणाणविहीणो, तिरिक्खजोणी ण सो समणो।। (17)

जो स्त्रियों के समूह के प्रति निरंतर राग करता है, दूसरे निर्दोष प्राणियों को दोष लगाता है तथा स्वयं दर्शन-ज्ञान से रहित है पशु है, साधु नहीं।

पव्वज्जहीणगहिणं, णेहं सीसम्मि वट्टदे बहुसो।
आयारविणयहीणो, तिरिक्खजोणी ण सो सवणो।। (18)

जो दीक्षा से रहित गृहस्थ शिष्य पर अधिक स्नेह रखता है तथा आचार और विनय से रहित है वह तिर्यंच है, साधु नहीं।

भावार्थ-कोई-कोई साधु अपने गृहस्थ शिष्य पर अधिक स्नेह रखते हैं, अपने पद का ध्यान न कर उसके घर जाते हैं, सुख-दुःख में आत्मीयता दिखाते हैं, तथा स्वयं मुनि के योग्य आचार तथा पूज्य पुरुषों की विनय से रहित होते हैं। आचार्य कहते हैं कि वे मुनि नहीं है, किंतु पशु हैं।

एवं सहिओ मुणिवर, संजदमज्झम्मि वट्टदे णिच्चं।
बहुलं पि जाणमाणो, भावविणट्ठो ण सो सवणो।।

हे मुनिवर! ऐसी खोटी प्रवृत्तियों से सहित मुनि यद्यपि संयमी जनों के बीच में रहता है और बहुत ज्ञानवान् भी है तो भी वह भाव से विनष्ट है अर्थात् भावलिंग से रहित है-यथार्थ मुनि नहीं है।

सुत मानहिं मातु पिता तब लौं, अबलानन दीख नहीं जब लौं।।

पुरुष कुलवन्ती और पतिव्रता स्त्री को घर से निकाल देते हैं और अच्छी चाल छोड़कर दासी को घर में रखते हैं। लड़के-माता-पिता को तब तक ही मानते हैं जब तक स्त्री का मुँह नहीं देखते।

कवि वृन्द उदार दुनी न सुनी

गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी।

लिक बारहिं बार दुकाल परै

बिनु अन्न दुःखी सब लोग मरै।। राम.मानस

कवि तो बहुत हैं संसार में कोई उदार पुरुष सुनने में नहीं आते। गुणों में दोष लगाने वाले हैं पर गुणी कोई नहीं है। कलियुग में बार-बार अकाल पड़ते हैं। सब लोग अन्न के बिना दुःखी होकर मरते हैं।

सुनु खगेस काल कपट हठ, दम्भ द्वेष पाषण्ड।

मान मोह मारादि मद, व्यापि रहे ब्रह्माण्ड।।

हे पक्षीराज गरुड़जी! सुनो कलियुग में छल, हठ, दम्भ, ईर्ष्या, पाखण्ड काम, क्रोध, लोभ और अहंकार संसार भर में फैल रहे हैं।

तामस धर्म करहिं नर, जप, तप, व्रत मख दान।

देव न वरषिहिं धरनी, बए न जामहिं धान।।

मनुष्य जप, तप, यज्ञ, व्रत, दान, तामसी भाव से करते हैं। देवता पृथ्वी पर वर्षा नहीं करते और बोया हुआ अन्न उगता नहीं।

नर पीड़ित रोग न भोग कहीं, अभिमान विरोध अकार नहीं।

लघु जीवन संबतु पंच दसा, कलपांत न नास गुमान असा।।

रोगों से मनुष्य पीड़ित हैं, सुख कहीं नहीं मिलता। बिना कारण ही लोग अभिमान करते हैं। दस-पाँच वर्ष की थोड़ी आयु होने पर भी ऐसा घमण्ड है कि मानों कल्पों तक भी नाश न होगा।

कलिकाल बिहाल किए मनुजा, नहिं मानतकौं अनुजा तनुजा।

नहिं तोष विचार न सीतलता, सब जाति कुजाति भए मगता।।

कलियुग ने मनुष्य को बेहाल कर डाला। कोई बहन-बेटी को भी नहीं मानता। न सन्तोष है, न विचार है, न शान्ति है। सब जाति, कुजाति बन गये हैं।

इरिषा पुरुषाच्छर लोलुपता, भरि पूरि रही समता बिगता।

सब लोग वियोग विसोक हुये, बरनाश्रम धर्म अचार गये।।

डाह, कठोरता, छल, लालच हो रहे हैं समता जाती रही। सब लोग वियोग व अधिक दुःख से भरे पड़े हैं वर्णाश्रम, धर्म व विचार जाता रहा।

दम दान दया नहिं जानपनी, जड़ता परवंचनताति घनी।
तनु पोषक नारि नरा सगरे, पर निंदक जे जग मो बगरे।।

इन्द्रियों को जीतना, दान, दया और समझदारी किसी में नहीं, मूर्खता और ठगाई बहुत बढ़ गई है। सब स्त्री-पुरुष अपने शरीर को पुष्ट करने वाले हैं। पराये निन्दक संसार में बहुत फैल गये हैं। (तुलसीदास कृत रामयाण)

दुर्गति का पात्र कौन ?

णहि दाणं णहि पूया णहि सीलं णहि गुणं ण चारित्तं।
जे जइणा भणिया ते णेरइया हुंति कुमाणुसा तिरिया।।(39) रयण.

पद्य- जो न देते दान नहीं पूजा नहीं शील नहीं गुण न चारित्र।
वह मानव कुमानव होता है तथाहि नारकी या तिर्यंच।। (1)

हेयोपादेय विचार से रहित जीव मिथ्यादृष्टि है!

ण वि जाणइ कज्जमकज्जं सेयमसेयं च पुण्ण पावं हि।
तच्चमतच्चं धम्ममधम्मं सो सम्मुउम्मुक्को।। (40) रयण.

पद्य- जो न जानता है कार्य-अकार्य, श्रेय-अश्रेय व पुण्य-पाप ही।
तत्त्व-अतत्त्व व धर्म-अधर्म वह होता सम्यक्त्व मुक्त।। (1)

हेयोपादेय विचार रहित जीव के सम्यक्त्व कहाँ ?

ण वि जाणइ जोग्गमजोग्गं णिच्चमणिच्चं हेयमुवादेयं।
सच्चमसच्चं भव्वमभव्वं सो सम्मउम्मुक्को।। (41) रयण.

पद्य- जो न जानता है योग्य-अयोग्य, नित्य-अनित्य व हेय-उपादेय
सत्य व असत्य, भव्य-अभव्य वह होता सम्यक्त्व रहित।। (1)

निजशुद्धात्म श्रद्धान बिन समस्त धर्म कार्य व्यर्थ संसारवर्द्धक

(चाल : छिप गया कोई रे ...)

सम्यग्दृष्टि महान् है... आत्मश्रद्धानी होते,
स्व-पर भेद ज्ञान से...सम्यग्ज्ञानी होते।
श्रद्धा-प्रज्ञा सहित वे...सदाचारी होते,
सातिशय पुण्यशाली...मोक्षमार्गी होते।। (1)

देव-शास्त्र-गुरु भक्ति...सहित वे होते,
तत्त्वार्थ-श्रद्धान युक्त...तत्त्वज्ञानी होते।
इसी से युक्त वे श्रावक-साधु बनते,
आत्मसाधना से वे अर्हन् सिद्ध बनते।। (2)

आत्मश्रद्धान से वे स्व को जीव द्रव्य मानते,
निश्चय से शुद्ध-बुद्ध-आनन्दमय मानते।
अनादि कर्म बन्ध से स्व को अशुद्ध मानते,
आत्मसाधना से शुद्ध/(सिद्ध) बनूँ यह लक्ष्य धरते।। (3)

आत्मश्रद्धान बिन सभी धर्म कार्य व्यर्थ,
आत्मश्रद्धान बिन सभी ज्ञान है कुज्ञान।
आत्मश्रद्धान बिन (सभी) आचरण मिथ्याचार,
मिथ्या श्रद्धा-ज्ञान आचरण संसार कारण।। (4)

बीज बिन यथा न होता है वृक्ष,
इकाई बिन यथा शून्य का मूल्य शून्य।
आत्मा बिन यथा शरीर होता है शव,
आत्मश्रद्धान बिन सभी धर्म है अधर्म।। (5)

आत्मश्रद्धान बिन लक्ष्य न होता मोक्ष,
आत्मश्रद्धान बिन तप होता है कुतप।
आत्मश्रद्धान बिन त्याग होता भोग/(संसार, दुःख) हेतु,
धर्म कार्य होते सभी ख्याति-पूजा-वर्चस्व हेतु।। (6)

आत्मश्रद्धा-प्रज्ञा-चर्या बिन न होता मोक्षमार्ग,
रत्नत्रय बिन न होते राग-द्वेष-मोह क्षय।
समता-शान्ति-शुचिता न होती संभव,
निस्पृह-वीतरागता न होते संभव।। (7)
सातिशय पुण्य बन्ध भी न होता संभव,
संवर-निर्जरा-मोक्ष भी न होते संभव।
अतः आत्मश्रद्धान ही प्रथम/(प्रधान) करणीय,
सर्वज्ञ कथित सत्य यह 'कनक' को मान्य।। (8)

पात्र-अपात्र का विवेक आवश्यक

पत्त विणा दाणं य सुपुत्त विणा बहुधनं महाखेत्तं।
चित्त विणा वय गुण चारित्तं णिक्कारणं जाणे।। (31) रयण.

पद्य- सुपात्र बिना दान होता है यथा सुपुत्र बिन बहु धन-धान्य।
उत्तम भाव बिन व्रत गुण चारित्र होते हैं सभी निरर्थक ।। (1)

समीक्षा- कुपात्र को दिया हुआ दान तथा सुपुत्र बिना वैभव।
होते हैं सभी निरर्थक यथा सुभाव बिन व्रत गुण चारित्र।।(2)

इससे मिलती है महान् शिक्षायें सुपात्र को ही दान देय।
सुपुत्र को ही धन देय सुभाव से ही व्रत-गुण-चारित्र पालनीय(3)

निर्माल्य द्रव्य के भोग का दुष्परिणाम

जिण्णुद्धार पतिट्ठा जिणपूजा तित्थवंदण विसयं धणं।
जो भुंजइ सो भुंजइ जिणदिट्ठं णरयगय दुक्खं।। (32) रयण.

जीर्णोद्धार प्रतिष्ठा जिनपूजा तीर्थ वन्दना के धन।
जो खाता वह भोगता है जिनोक्त नरक गति दुःख।। (1)
दान-पूजादि निमित्त देय दान तथाहि धार्मिक सम्पत्ति।
वे सब ही निर्माल्य द्रव्य उसे खाने से पाते दुर्गति।। (2)
केवल नहीं है पूजा में प्रयोग किया गया द्रव्य निर्माल्य द्रव्य।

किन्तु समस्त धार्मिक द्रव्य होते हैं निर्माल्य द्रव्य जो अग्राह्य।। (3)
इससे शिक्षा मिले कोई भी धार्मिक धन नहीं है ग्रहणीय।
रूढ़ि से पूजा द्रव्य को ही मानकर धार्मिक धन नहीं ग्रहणीय।। (4)

परस्त्रीगमनं नूनं देवद्रव्यस्य भक्षणं।
सप्तमं नरकं यांति प्राणिनो नात्र संशयः।। (प्र.चा.)

परस्त्री सेवन करने से और देव द्रव्य को हजम कर जाने से मनुष्य सातवें नरक को प्राप्त होता है। यदि समस्त पाप एक तरफ रक्खे जावें और परस्त्रीसंगम रूप पाप दूसरी बाजू रक्खा जाए,तो पर दारा सेवन का पाप समस्त पापों की अपेक्षा वजनदार निकलेगा, ऐसा शास्त्रों में लिखा हैं।

पुण्य की प्राप्ति और पूर्वोपार्जित पाप की हानि होगी, इसलिये पात्रदानादि करने के लिए धन कमाना चाहिये, नौकरी खेती आदि करके धन कमाता है, समझना चाहिये, कि वह 'स्नान कर डालूँगा' ऐसा विचार कर अपने शरीर को कीचड़ से लिप्त करता। स्पष्ट बात यह है कि जैसे कोई आदमी अपने निर्मल अंग को स्नान कर लूँगा का ख्याल कर कीचड़ से लिप्त कर डाले, तो वह मूर्ख ही गिना जायेगा।

उसी तरह पाप के द्वारा पहिले धन कमा लिया जाय, पीछे पात्र दानादि के पुण्य से उसे नष्ट कर डालूँगा, ऐसे ख्याल से धन के कमाने में लगा व्यक्ति भी समझना चाहिये। संस्कृत टीका में यह भी लिखा हुआ है कि चक्रवर्ती आदिकों की तरह जिसको बिना यत्न किये हुये धन की प्राप्ति हो जाय, तो वह उस धन से कल्याण के लिये पात्रदानादिक करे तो करे।

''सत्पुरुषों की सम्पत्तियाँ, शुद्ध ही शुद्ध धन से बढ़ती हैं, यह बात नहीं है। देखो, नदियाँ स्वच्छ जल से ही परिपूर्ण नहीं हुआ करती है। वर्षा में गंदले पानी से भी भरी रहती है।''

उपर्युक्त कारणों से सिद्ध होता है कि पूजक को पहले स्वयं में योग्यता लानी चाहिए। श्रावक के कुछ विशिष्ट गुणों का वर्णन करते हुए कहा भी है -

न्यायोपात्तधनो यजन् गुणगुरुन् सदगीस्त्रिवर्ग भजन्न
न्योन्यानुगुणं तदर्हगृहिणीस्थानालयो हीमयः।

युक्ताहारविहारआर्यसमितिः प्राज्ञः कृतज्ञो वशी
श्रृण्वन् धर्मविधिं दयालुरघभीः सागारधर्म चरेत्।।

न्यायपूर्वक धन कमाने वाला गुणों,गुरुजनों और गुणों से महान् गुरुओं को पूजने वाला, आदर, सत्कार करने वाला परनिन्दा, कठोरता आदि से रहित प्रशस्त वाणी बोलने वाला, परस्पर में एक दूसरे को हानि न पहुँचाते हुए धर्म, अर्थ और काम का सेवन करने वाला, धर्म, अर्थ और काम सेवन के योग्य, गाँव, नगर और मकान वाला, लज्जाशील, शास्त्रानुसार खान-पान और गमनागमन करने वाला सदाचारी पुरुषों की संगति करने वाला, विचारशील, पर के द्वारा किये गये उपकार को मानने वाला, जितेन्द्रिय, धर्म की विधि को प्रतिदिन सुनने वाला, दयालु और पापभीरू पुरुष गृहस्थ धर्म को पालन करने में समर्थ होता है।

उपर्युक्त श्रावकों के गुण में प्रथम गुण है ''न्यायपूर्वक धन कमाना'' श्रावक गृह में रहता है व्यापार धन्धा करना है इसलिए उसको धन की आवश्यकता पड़ती है। तथापि धनार्जन असत् उपायों से नहीं करना चाहिए।

स्वामिद्रोह, मित्रद्रोह, विश्वासघात, ठगना, चोरी करना आदि निन्दित उपायों से धनोपार्जनरहित तथा अपने-अपने वर्णों के अनुसार सदाचार को न्याय कहते हैं। न्यायपूर्वक धनोपार्जन करना न्यायोपात्तधन कहलाता है। जो पुरुष न्यायपूर्वक धनोपार्जन करता है वही गृहस्थ धर्म धारण करने योग्य है। क्योंकि गृहस्थों की मनोवृत्ति प्रायः कर वित्तोपार्जन में ही लगी रहती है। इसलिये धनेच्छुक मनुष्य यद्वा तद्वा न्याय अन्याय का विचार न करके धनोपार्जन करते हैं। उनकी मनोभूमि एकदेशव्रत पालन करने की तरफ नहीं झुक सकती है। न्यायोपार्जन किया हुआ धन ही इस लोक और परलोक में सुख देने वाला है। सो ही आचार्यों ने कहा है।

सर्वत्र शुचयो धीराः सुकर्मबलगर्विताः।
स्वकर्मनिहितात्मानः पापाः सर्वत्र शंकिताः।।

जो पुरुष न्याय और उत्तम कर्मों के बलगर्वित हैं वे पुरुष सब जगह प्रत्येक स्थिति में तथा प्रत्येक कार्य में धीर तथा पवित्र रहते हैं। उनको कहीं पर भी किसी प्रकार का भय नहीं होता है। परन्तु जिन्होंने निंद्य तथा नीच कर्मों से अपनी आत्मा को पतित किया है, वे सब शंकित तथा भयभीत हैं। और भी आचार्यों ने कहा है -

अन्यायोपार्जितं वित्त दश वर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते त्वेकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति।। (1)
यांति न्यायप्रवृत्तस्य तिर्यंचोऽपि सहायतां।
अपंथानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति।।(2) सा.ध.

अन्यायपूर्वक उपार्जन किया हुआ धन अधिक से अधिक दश वर्ष तक रह सकता है और ग्यारहवें वर्ष लगने पर मूल सहित नष्ट हो जाता है। न्याय मार्ग पर चलने वाले पुरुषों को तिर्यंच भी सहायता करता है और अन्यायपूर्वक प्रवृत्ति करने वालों का साथ अपना सगा भाई भी छोड़ देता है। दूसरों की तो बात ही क्या है। इसलिये न्यायपूर्वक धनोपार्जन करना चाहिये।

परन्तु वर्तमान में प्रायः दिखाई देता है कि अनेक लोग अनैतिक व्यापार हिंसात्मक व्यापार, निषिद्ध व्यापार आदि करके धन कमाते हैं और उससे दानादि करके धर्म करना चाहते हैं। जैसे कुछ व्यक्ति स्वयं तो शराब नहीं पीते किन्तु शराब की फेक्ट्रियाँ, दुकानें चलाते हैं। कुछ व्यक्ति स्वयं तो बीड़ी नहीं पीते परन्तु बीड़ी की फेक्ट्री में बीड़ी बनवाते हैं व दुकान पर बेचते हैं। कुछ व्यक्ति खुद तो मांस नहीं खाते किन्तु डालडा में चर्बी मिलाकर दूसरों को खिलाते हैं कुछ व्यक्ति स्वयं चर्म निर्मित वस्तुओं का प्रयोग नहीं करते परन्तु चर्म की विभिन्न सामग्रियाँ यथा जूते, चप्पल, बेल्ट,सूटकेस, मनी बैग आदि का निर्माण करके विक्रय करते हैं। वे सोचते हैं कि हम तो स्वयं नहीं खाते प्रयोग में भी नहीं लाते, हम तो केवल धन कमाने के लिये, व्यापार रूप में प्रयोग लाते हैं इसमें हमारा क्या दोष ? परन्तु उन्हें जान लेना चाहिये कि केवल पाप कृत रूप में नहीं होता है परन्तु पाप मनसा, वचसा, कर्मणा, कृत, कारित, अनुमोदना से भी होता हैं। उनका सोचना ऐसा है कि हम विष पीते नहीं पिलाते हैं यह क्या दोषकारक है ? परन्तु विवेक से विचार करने पर सिद्ध होता है कि विष पीने से तो स्वयं की एक ही हत्या होती है परन्तु विष पिलाने से अनेक व्यक्तियों की हत्या होती है। इस प्रकार मांस खाने से, बीड़ी, तम्बाकू आदि नशीली वस्तुओं का सेवन करने से तो स्वयं पाप कमाता है परन्तु इसके उत्पादन एवं विक्रय करने से तो स्वयं भी पाप कमाता है एवं दूसरों से भी पाप करवाता है, हिंसा करवाता है। इन हिंसात्मक व्यापारों से हिंसा के साथ-2

पर्यावरण भी दूषित हो जाता है। विश्व में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से हिंसा व अत्याचार को प्रोत्साहन मिलता है। इसलिये उपर्युक्त निषिद्ध व्यापार जो करता है वह कभी धार्मिक नहीं हो सकता। प्राचीन धार्मिक साहित्य में अनेक निषिद्ध व्यापारों का वर्णन पाया जाता है। यथा -

व्रतयेत्खरकर्मात्र मलान् पंचदश त्यजेत्।
वृत्तिं वनाग्न्यस्फोटभाटकैर्यत्रपीऽनम्। (21) सागार ध.

प्रभावना – प्रकृष्ट/उत्कृष्ट/उदार/निर्मल/पवित्र/साम्य भाव को प्रभावना कहते हैं। प्रभावना पहले स्वयं में होती है, उसके अनन्तर उसका प्रचार-प्रसार विभिन्न माध्यम से किया जाता है। रत्नत्रय रूपी प्रकाश को पहले स्वयं में प्रकाशित करना चाहिए उसके बाद दूसरों को प्रकाशित करना चाहिए। जैसे जो दीपक स्वयं पहले प्रकाशित होता है वही दीपक दूसरों को प्रकाशित करता है। बुझा हुआ दीपक न स्वयं को प्रकाशित कर सकता है न दूसरों को प्रकाशित कर सकता है। प्रभावना के अनेक कारक/कारण/उपाय होते हैं। जैसे दान, पूजा, उपवास, ज्ञान/उत्सव/सांस्कृतिक कार्यक्रम/रथयात्रा/पंचकल्याणक/वेदी प्रतिष्ठा/तीर्थयात्रा/सत्साहित्य/धार्मिक पत्रिका आदि आदि।

परन्तु पवित्र/प्रकृष्ट भावना या महान्-उदार उद्देश्य के बिना उपरोक्त कारक/कारण भी वस्तुतः प्रभावना के अंग/उपाय नहीं बन सकते हैं। जैसे अंकुरोत्पत्ति शक्ति से रहित बीज को कितना भी पानी, खाद, औषध देने पर भी उस बीज से अंकुरोत्पत्ति नहीं हो सकती है। अन्तरंग अच्छी भावना से रहित बाह्य प्रभावना की शोभा उसी प्रकार है जिस प्रकार शव-यात्रा की शोभा है। नाम बढ़ाई काम के लिये जो दानादि बाह्य प्रभावना करते हैं उसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं -

कुछ व्यक्ति माता-पिता-भाई-बहन की सेवा/सुश्रुषा/व्यवस्था के लिए तो बेपरवाह हैं, यहाँ तक कि अपने ग्राम, नगर में आगत उत्तम पात्र स्वरूप मुनि, आर्यिका आदि को दान-मान-सम्मान नहीं देता है, ग्राम के मंदिर में पूजा, दर्शनादि नहीं करता है वो भी पंचकल्याणकादि में भीड़ देखकर लाखों रूपयों की बोली लेता है।

देवदर्शन तीर्थयात्रा, पूजा, पंचकल्याणकादि का मुख्य उद्देश्य स्वदर्शन, अन्तर्यात्रा, स्वकल्याणक के लिये है। अभी अनेक व्यक्ति धर्मकार्य को धनकार्य,

परमार्थ को अर्थोपार्जन उपाय रूप में प्रयोग कर रहे हैं। अभी पंचकल्याणक तो पंचों के कल्याण (कमेटी वालों की स्वार्थ सिद्धि) रूप में हो रहा है। वहाँ विशेषता, धर्म के नाम पर धन की पूजा, धर्मी के नाम पर धनी की पूजा, प्रभावना के नाम पर बाह्य-आडम्बर, मनमंजन(भाव निर्मल के स्थान पर मनोरंजन (बैण्ड पार्टी, संगीत-नाटक कार्यक्रम के अतिरेक) पंचकल्याण की मूल क्रिया के स्थान पर बोली, धनी व्यक्तियों की मान-सम्मान की क्रिया होती है। धार्मिक कार्य के नाम पर पहले शोषण भी करते हैं और जो यात्री उस कार्यक्रम में आते हैं उनकी व्यवस्था नहीं करते हैं और व्यवस्था धनी की करेंगे तथा साधारण व्यक्ति की करेंगे तो शोषण करने के लिए। उसी ही प्रकार बड़े-बड़े तीर्थस्थान की भी महिमा है।

जो व्यक्ति बोली में लाखों रूपयें खर्च करते हैं वे भी सत्साहित्य प्रकाशन, प्रचार-प्रसार के लिए, बच्चों के धार्मिक संस्कार के लिए, धार्मिक विद्यालय-शिविर के लिए 10-20 रूपये भी दान में नहीं देंगे। मंदिर, धर्मशाला, मूर्तिनिर्माण, पंचकल्याण जरूर करना चाहिए परन्तु इससे भी अधिक आवश्यक है ज्ञान-प्रचार, बच्चों में संस्कार, स्वयं का निर्माण। आज जैन लोग करोड़ों, अरबों रूपये निर्जीव मूर्ति के भगवान् बनाने में खर्च करते हैं परन्तु हजारों रूपये भी सजीव बच्चों को संस्कार से महामानव या भगवान् बनाने में खर्च नहीं करते हैं। मैं मंदिर, मूर्ति पंचकल्याणक का विरोधी नहीं हूँ, परन्तु व्यर्थ खर्च, बाह्य आडम्बर का अवश्य विरोधी हूँ। कुछ त्यागी-व्रती, आचार्य, उपाध्याय, साधु-साध्वी, और पंडित, प्रतिष्ठाचार्य भी आडम्बर बोली आदि आगम विरुद्ध कार्य को करते, करवाते हैं। उनकी निन्दा जैन पत्रिकाओं तक में बार-बार आती हैं परन्तु वे वैसे कार्य समाज के लिए करके निन्दा के पात्र बनते हैं। कुछ निहित स्वार्थी व्यक्ति भी अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए साधु का इस्तेमाल करते हैं एवं स्वार्थ सिद्धि के बाद वे भी उन साधु आदि की निन्दादि करते हैं तथा साधु की सेवा/व्यवस्था भी नहीं करते हैं।

पूजा-दान आदि के द्रव्य के अपहरण का परिणाम

पुत्तकलत्त विदूरो दारिद्दो पंगु मूक बहिरंधो।
चाण्डालाइ कुजादो पूजा दाणाइ दव्वहरो।। (33) रयण.

पद्य-जो पूजा दानादि के द्रव्य हरण करते वे होते पुत्र स्त्री-रहित।

दरिद्र-पंगु-गुंगा बहरा अन्धा व चाण्डालादि कुजाति में जन्म ग्रहण।(1)
समीक्षा- जैसी करणी वैसी भरणी'' के अनुसार कर्म फल मिलता अवश्य।
इस जन्म में या पर भव में भोगते पापी जो दान द्रव्य हर।। (2)
न्याय से धन कमाने पर भी यदि होता है पापास्रव।
अन्याय से व धर्म धन ग्रहण से कितना होगा पापास्रव।। (3)
इससे शिक्षा मिलती है सर्व त्यागकर साधु बनना श्रेय।
नहीं तो कम से कम पाप हो ऐसे भाव-व्यवहार श्रेय।। (4)

पूजा-दान के द्रव्य का अपहरण बीमारियों का घर

इत्थियफलं ण लब्भइ जइ लब्भइ सो ण भुंजदे णियदं।
वाहीणमायरो सो पूजादाणाइ दव्वहरो।। (34) रयण.

पद्य- जो दानादि द्रव्य हरण करता वह न इच्छित फल पाता।
यदि वह लाभ प्राप्त करता रोगादि के कारण न भोग पाता।। (1)

समीक्षा- ''साधन पवित्र से साध्य पवित्र'' होता ''लक्ष्यानुसार प्राप्य''।
''शुभ भाव से शुभ फल है'' तो ''अशुभ भाव से अशुभ फल।। (2)
''चोरी का माल मोरी में जाता'' ''यथा बोया तथा पाता''।
यह है ''प्राकृतिक क्रिया प्रतिक्रिया'' या ''कार्य कारण सिद्धान्त''।। (3)

दान द्रव्य के अपहरण से विकलांग

गयहत्थपायणासिय कण्णउरं गुलविहीणदिट्ठीए।
जो तिव्वदुक्खमूलो पूयादाणाइ दव्वहरो।। (35) रयण.

पद्य- हाथ पैर से रहित पंगु नाक व कानों से भी रहित।
छाती-हाथ-पैर-अंगुल विहीन जन्मांध तीव्र दुःखी द्रव्य चोर।।

अशुभ नामकर्म के आस्रव के हेतु

मनोवाक्कायवक्रत्वं विसंवादनशीलता।
मिथ्यात्वं कूटसाक्षित्वं पिशुनास्थिरचित्तता।। (44)

विषक्रियेष्टकापाकदावाग्नीनां प्रवर्तनम्।
प्रतिमायतनोद्यानप्रतिश्रयविनाशनम्।। (45)
चैत्यस्य च तथा गन्धमाल्यधुपादिमोषणम्।
अतितीव्रकषायत्वं पापकर्मोपजीवनम्।। (46)
परूषासह्यवादित्वं सौभाग्यकारणं तथा।
अशुभस्येति निर्दिष्टा नाम्न आस्रवहेतवः।। (47) (तत्त्वार्थसार)

मन, वचन, काय की कुटिलता, विसंवाद करने का स्वभाव, मिथ्यात्व, झूठी गवाही देना, चुगली करना, चित्त का अस्थिर रहना, विष के प्रयोग, ईंट पकाना तथा दावाग्नि-वन में आग लगाने की प्रवृत्ति चलाना, मंदिर सम्बन्धी उद्यान के भवन का विनाश करना,प्रतिमा को चढ़ाने योग्य गन्ध, माला तथा धूप आदि की चोरी करना, अत्यन्त तीव्र कषाय करना, पाप कार्यों से जीविका करना, कठोर और असह्य वचन बोलना तथा सौभाग्य वृद्धि के लिये वशीकरण आदि उपायों को मिलाना ये सब अशुभ नामकर्म के आस्रव के हेतु हैं।

योगवक्रताविसंवादनं चाऽशुभस्यःनाम्नः।।(122)।। (तत्त्वार्थवार्तिक)

मन, वचन और काय की कुटिल वृत्ति रूप योगवक्रता तथा विसंवादन ये अशुभ नामकर्म के आस्रव के कारण है।

मिथ्यादर्शन, पिशुनता, अस्थिर चित्त स्वभावता, कूटमान तुलाकरण(झूठे बाट, तराजू रखना) कृत्रिम सुवर्ण मणि रत्न आदि बनाना, झूठी साक्षी देना, अंग-उपाङ्ग का छेदन करना, वर्ण,गन्ध,रस, स्पर्श का विपरीतपना अर्थात् स्वरूपविकृति कर देना, यन्त्र पिंजरा आदि पीड़ा कारक पदार्थ बनाना, एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का विषय सम्बन्ध करना, माया की बहुलता, परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, मिथ्याभाषण, परद्रव्यहरण, महारम्भ, महापरिग्रह, उज्ज्वल वेष और रूप का घमण्ड करना, कठोर और असभ्य भाषण करना क्रोध भाव रखने और अधिक बकवाद करने में अपने सौभाग्य का उपभोग करना, दूसरों को वश करने के प्रयोग करना, दूसरे में कुतूहल उत्पन्न करना, बढ़िया-बढ़िया आभूषण पहनने की चाह रखना, जिनमंदिर-चैत्यालय से गन्ध(चन्दन) माल्य, धूप, आदि को चुरा लेना, किसी की विडम्बना

करना, उपहास करना, ईंट चूने का भट्टा लगाना, वन में अग्नि लगाना, प्रतिमा का प्रतिमा के आयतन का अर्थात् चैत्यालय का और जिनकी छाया में विश्राम लिया जाये ऐसे बाग-बगीचों का विनाश करना, तीव्र, क्रोध, मान, माया और लोभ करना तथा पाप कर्म जिसमें हो ऐसी आजीविका करना इत्यादि बातों से भी अशुभ नामकर्म का आस्रव होता है। ये सब अशुभ नामकर्म के आस्रव के हेतु हैं।

शुभनाम के आस्रव के कारण

संसार भीरुता नित्यमविसंवादनं तथा।

योगानां चार्जव नाम्नः शुभस्यास्रवहेतवः।। (48) (तत्त्वार्थसार)

संसार से निरन्तर भयभीत रहना, सहधर्मी जनों के साथ विसंवाद विरोध नहीं करना और योगों की सरलता रखना वे शुभनाम कर्म के आस्रव के हेतु हैं।

तद् विपरीतं शुभस्य।। (23)

योग वक्रता और विसंवादन से विपरीत योगों की सरलता और अविसंवादन शुभ नामकर्म के आस्रव के कारण हैं। (रा.वा.)

सरल योग और अविसंवादन उस योगवक्रता आदि से विपरीत हैं। मन, वचन, काय की सरलता और अविसंवादन शुभ नामकर्म के आस्रव के कारण है। धर्मात्मा पुरुषों का दर्शन करना, आदर सत्कार करना, उनके प्रति सद्भाव रखना, संसार भीरुता, प्रमाद का त्याग, निश्छल चारित्र का पालन आदि पूर्वोक्त अशुभ नाम कर्म के आस्रव के कारण से विपरीत परिणाम शुभ नामकर्म के आस्रव के कारण हैं। इन सब शुभ नामकर्म के आस्रव के कारणों का 'च' शब्द से संग्रह होता है ऐसा समझना चाहिये।

पूजा-दानादि धर्मकार्यों में अन्तराय करने का फल

खयकुट्ठमूलसूलो लूयभयंदरजलोयरक्खिसिरो।

सीदुण्ह वाहिराइ पूयादाणांतरायकम्मफलं।। (36) रयण.

पद्य- क्षय-कुष्ठ-मूल-शूल लूला भगन्दर जलोदर खिसर।

शीत-उष्ण-व्याधि(आदि) रोग प्राप्त करे पूजा दान द्रव्य हर।।(1)

भोग भूमिज के योग्य कर्म

भक्त्योत्तमसुपात्रायान्नदानं ददतेऽत्र ये।
महाभोगसुखाकीर्णां भोगभूमिं व्रजन्ति ते।। (95)

जो पुरुष भक्ति से उत्तम सुपात्रों को यहाँ पर आहारदान देते हैं, वे महान् भोगों और सुखों से भरी हुई भोगभूमि को जाते हैं। (श्री वीरवर्धमानचरिते)

जैन धर्म की कुछ अतिविशेषतायें

(स्व शुद्धात्मा श्रद्धा प्रज्ञाचर्या से भगवान् बनना ही जैनधर्म की विशेषता न कि सत्ता सम्पत्ति प्रसिद्धि वर्चस्व भीड बोली प्रदर्शन भोगोपभोगादि)

(चाल : 1. झिलमिल सितारों का... 2. क्या मिलिए...)

जब तक जीव स्वशुद्धात्मा को नहीं मानेगा,
तब तक प्राथमिक धार्मिक न होगा।
जब तक उस का ज्ञान मिथ्या ही होगा,
कब तब उसका चारित्र मिथ्या ही होगा।। (1)

अनन्तानुबंधी क्रोधमानमायालोभ रहेगा,
भले बाह्य में शान्त भद्र भी रहेगा/(दिखेगा)।
दार्शनिक, वैज्ञानिक, गणितज्ञ भी रहेगा,
नेता, अभिनेता, प्रसिद्ध, धनी रहेगा।। (2)

अनन्तानुबन्धी चतुष्क के उपशमादि से,
पंचलब्धि व देवशास्त्रगुरु की उपलब्धि से।
जब मानेगा जीव ''मैं हूँ शुद्ध बुद्ध आनन्द'',
तब से ही जीव में प्रारम्भ होगा प्राथमिक धर्म।। (3)

मानव पशु-पक्षी से ले देव नारकी,
बनते उक्त प्रक्रिया से जैन-सम्यग्दृष्टि।
देव नारकी बन सकते सम्यग्दृष्टि जैन,
पशु-पक्षी बन सकते जैन से श्रावक तक।। (4)

मानव बन सकते सम्यग्दृष्टि से श्रावक तक,
साधु पाठक सूरी अरिहंत सिद्ध तक।
सिद्ध बनना ही सुदृष्टि का अन्तिम लक्ष्य,
इस हेतु ही सुदृष्टि श्रावक श्रमण करते धर्म।। (5)

अन्यथा सभी के सम्पूर्ण धर्म होता विपरीत/(व्यर्थ)
उनको होता पापानुबन्धी पुण्य का बन्ध।
उनकी चाह होती सांसारिक सुख-वैभव,
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि वर्चस्व भोग।। (6)

जिससे वे संसार में करते पंचपरिवर्तन,
भोगते उत्थान-पतन सुख-दुःख जन्म मरण।
स्वशरीर को ही मैं मानकर करते धर्म-कर्म,
स्वयं को मानते मैं नर तिर्यञ्च नारकी देव।। (7)

उनमें ही रचते-पचते अहं-ममकार करते,
जैन धर्मानुसार वे ही मिथ्यात्वी/(कुधर्म) होते।
आध्यात्मिक दृष्टि व शुद्धि इनमें न होती,
भले बाह्य में प्रवृत्ति जैन धर्मानुसार भी होती।। (8)

यथा मिथ्यादृष्टि देव न पूजते मिथ्यादेव,
पंचकल्याणक में भी भाग लेते वे देव।
यथा मिथ्यादृष्टि नौकर व पूजक होते,
तीर्थंकरों के मूर्तिकार व मंदिर के शिल्पी होते।। (9)

ऐसा ही जो धन मान सम्मान वर्चस्व हेतु,
जैन धर्म पालन करते केवल कामना हेतु।
इससे भिन्न जो केवल आत्मविशुद्धि मोक्ष हेतु,
जैन धर्म पालन करते आत्म हित हेतु।। (10)

वे न करते धर्म राजनीति व व्यापार हेतु,
न हि संकीर्ण कट्टर पंथ मत भेदभाव हेतु।
न हि संकल्प-विकल्प-संक्लेश-विभाव हेतु,

समस्त धर्म पालते केवल आत्मविकास हेतु।। (11)

वे ही यथार्थ से जैन-धर्मावलम्बी-सुदृष्टि,
मैत्री प्रमोद कारुण्य साम्य अनेकान्त दृष्टि।
उदार सहिष्णु पावन वीतराग आत्मदृष्टि,
वे ही बनते भगवान् शुद्ध-बुद्ध बनना ही 'कनक' की दृष्टि।। (12)

ग.पु.कॉलोनी दि. 3-3-2020 रात्रि 8.32

तत्त्व श्रद्धान की आराधना करने पर सम्यग्ज्ञान की आराधना अवश्य होती है। इस पर प्रश्न होता है कि ज्ञानाराधना और चारित्राराधना ऐसे दो भेद क्यों नहीं रखे? इसके उत्तर में कहा है कि सम्यग्ज्ञान की आराधना करने पर सम्यग्दर्शन की आराधना होती है किन्तु मिथ्याज्ञान की आराधना में सम्यक्त्व की आराधना नहीं होती। इस प्रकार ज्ञान और दर्शन में अविनाभाव न होने से ज्ञानाराधना में दर्शनाराधना भाज्य है। इस पर पुनः प्रश्न होता है कि जब 'सम्यग्ज्ञान की आराधना' कहने पर सम्यकत्व की आराधना का बोध हो सकता है तो वैसा क्यों नहीं कहा? इसका उत्तर है कि ज्ञान के सम्यक् व्यपदेश सम्यक्त्व मुख्य हेतु है। सम्यक्त्व के विना ज्ञान सम्यक् नहीं कहलाता। अतः सम्यग्ज्ञान का प्राधान्य नहीं है।

'ज्ञान के विना भी सम्यग्दर्शन होता है क्योंकि मिथ्यादृष्टि भी ज्ञान का आराधक होता है। अतः ज्ञान के साथ सम्यग्दर्शन का अविनाभाव सम्बन्ध नहीं है इस आशंका का उत्तर देते हैं-'

संदर्भ-

सुद्धणया पुण णाणं मिच्छादिट्ठिस्स वेंति अण्णाणं।
तम्हा मिच्छादिठ्ठी णाणस्साराहओ णेव।। (6) भ.आरा.

किन्तु शुद्धनय दृष्टि वाले ज्ञानी जन मिथ्यादृष्टि के ज्ञान को अज्ञान कहते हैं, इसलिए मिथ्यादृष्टि ज्ञान का आराधक नहीं ही होता।

अनन्त धर्मात्मक वस्तु के किसी एक धर्म के जानने को नय कहते हैं। यह नय उस धर्म के साथ ही रहनेवाले अन्य धर्मों के बल से उत्पन्न होता है। अर्थात् नय जिस धर्म को जानता है उस धर्म के साथ जो अनन्त धर्म उस वस्तु में रहते हैं उनका निषेध नही करता। किन्तु उनको गौण करके एक धर्म की मुख्यता से

वस्तु को जानने का नाम नय है। कहा भी है-युक्ति के बल से वस्तु के जानने को नय कहते हैं। शुद्ध नय जिनका है वे शुद्धनय होते हैं। यहाँ निरपेक्ष नय के निरासके लिए 'शुद्ध' विशेषण लगया है। वस्तु सर्वथा नित्य ही है अथवा सर्वथा क्षणिक ही है इस प्रकार जो ज्ञान हैं वे विपरीत रूप है क्योंकि इस प्रकार के प्रतिपक्षी धर्मों से निरपेक्ष रूप का वस्तु में अभाव है। वस्तु का स्वरूप सापेक्ष है उसे जो निरपेक्ष रूप से दिखलाने वाला ज्ञान है, वह भ्रान्त है। क्योंकि जो जिस रूप नहीं है उसे उस रूप दिखलाता है वह ज्ञान भ्रान्त होता है। और जो उक्त दोष से रहित है वह शुद्ध है। इसका खुलासा इस प्रकार है-वस्तु की उत्पत्ति को देखकर मिथ्याज्ञान वस्तु को सर्वथा अनित्य ही मानता है। किन्तु वह सर्वथा अनित्य नहीं है। समस्त वस्तु समूह नित्यानित्यात्मक है-कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य है। यदि वस्तु सर्वथा नित्य होती तो उसको करने के अनुरूप कारणों का अभाव होता। अतः वस्तु नित्य भी है और अनित्य भी है।

जिन ज्ञाताओं के नय शुद्ध होते हैं वे शुद्धनय वाले होते हैं। ऐसे शुद्धनय वाले मिथ्यादृष्टि के ज्ञान को अज्ञान कहते हैं। यहाँ ज्ञान शब्द सामान्य ज्ञान का वाचक नहीं है किन्तु ज्ञान शब्द का अर्थ यथार्थ ज्ञान ही है। जिसके द्वारा वस्तु जानी जाती है वह ज्ञान है। जो वस्तु में नहीं पाये जानेवाले रूप को दर्शाता है वह वस्तु को नहीं जानता। अतः ज्ञान शब्द का अर्थ मिथ्याज्ञान नहीं है। मिथ्याज्ञान अज्ञान ही है ऐसा स्वीकार करना चाहिए।

शंका-'गइ इंदिये च काये' इत्यादि गाथा के द्वारा चौदह मार्गणा बतलाई है। उनमें भी ज्ञान शब्द आता है जो ज्ञान सामान्य का वाचक है?

समाधान-आपका कहना सत्य है। 'ज्ञातिर्ज्ञानं' जानना ज्ञान है, इस व्युत्पत्ति के अनुसार वहाँ ज्ञान शब्द से ज्ञान सामान्य का ग्रहण किया है।

'तम्हा' इस कारण से 'मिच्छादिट्ठी' जो तत्त्व श्रद्धान से रहित है वह, णाणस्साराधको न होदि ज्ञान का आराधक नहीं होता। इस प्रकार पदों का सम्बन्ध होता है।

इस गाथा की अन्य टीकाकार इस प्रकार व्याख्या करते हैं-पूर्व में जो अज्ञान अवस्था में सम्यग्दर्शन की आराधना का अभाव कहा है वह अज्ञान क्या है

और किसको होता है, इसको बतलाने के लिए यह गाथा सूत्र है। किन्तु उनका यह कथन अयुक्त है। 'वह अज्ञान क्या है' इस प्रश्न का कोई उत्तर इस गाथा में नहीं है। उनका यह भी कथन है कि मिथ्याज्ञान का लक्षण कहते हुए जो मिथ्यादृष्टि से सम्बद्ध ज्ञान को अज्ञान कहा है उसमें उक्त दोनों प्रश्नों का उतर आता है। यदि इसे मान भी लिया जाये तब भी जो गाथा में 'तम्हा वा मिच्छादिट्ठी' इत्यादि कहा है वह बतलाया है कि गाथा सूत्र के कर्त्ता आचार्य 'मिथ्यादृष्टि ज्ञान का आराधक नहीं होता' यही उपसंहार करते हैं। अतः उसे छोड़कर जो बात गाथा सूत्र में नहीं कही, उसे ग्रहण करना, यह कैसी स्वतन्त्रता है।

आगे चारित्राराधना को कहते हैं। उसके साथ चौथी तप आराधना प्रतिपत्ति का क्रम दिखलाते हैं-

संजममाराहंतेण तओ आराहिओ हवे णियमा।
आराहंतेण तवं चारित्तं होइ भयणिज्जं।। (6)

संयम की आराधना करने वाले के द्वारा तप नियम से आराधित होता है। किन्तु तप की आराधना करने वाले के द्वारा चारित्र भजनीय होता है।

'संजममाराहंतेण' यहाँ आगत संयम शब्द से चारित्र का ग्रहण होता है। कर्मों के ग्रहण में निमित्त क्रियाओं के त्याग को संयम कहते हैं और वह चारित्र है। कहा भी है-ज्ञानी पुरुष के कर्मों के ग्रहण में निमित्त क्रियाओं के त्याग को चारित्र कहते हैं।

चारित्र की आराधना करने वाले के द्वारा तप नियम से आराधित कैसे होता है यह बतलाते है-अनशन नामक तप में अनशन नाम भोजन के त्याग का है। उसके तीन प्रकार हैं-मन से भोजन करता हूँ, भोजन कराता हूँ, भोजन में लगे हुए को अनुमति करता हूँ। मैं भोजन करता हूँ, तुम भोजन करो, भोजन बनाओ इस प्रकार वचन से कहना। तथा चार प्रकार के आहार का संकल्पपूर्वक काय से ग्रहण करना, हाथ से संकेत करना, काय से अनुमति का सूचन करना। ये जो मन वचन काय की क्रियाएँ हैं जो कर्मों के ग्रहण में कारण हैं उनका त्याग अनशन है जो चारित्र ही है।

तृप्ति करने वाले तथा मद पैदा करने वाले खानपान का मन वचन काय से त्याग अवमौदर्य है। आहार संज्ञा के जीतने को वृत्तिपरिसंख्यान तप कहते हैं। मन

वचन कार्य से रसविषयक लम्पटता के त्याग को रसपरित्याग तप कहते हैं। शारीरिक सुख की इच्छा के त्याग को कायक्लेश तप कहते हैं। चित्त की व्याकुलता के दूर करने को विविक्त शयनासन तप कहते हैं। अपने द्वारा किया गये अपराध को छिपाने का त्याग करना आलोचना है। अपने द्वारा किये गये अशुभ मन वचन काय के व्यापार का प्रतीकार करना प्रतिक्रमण है। इन दोनों को ही करना उभय है। जिसके द्वारा अथवा जिस स्थान पर अशुभ उपयोग हुआ हो उनसे अलग होना विवेक है। शरीर में ममत्व का त्याग कार्योत्सर्ग है। अनशनादि तप जिस प्रकार चारित्र हैं ऊपर कहा ही है।

असंयम के प्रति ग्लानि प्रकट करने के लिये दीक्षा के काल को कम करना देना छेद प्रायश्चित है। और पुनः चारित्र ग्रहण करना मूल प्रायश्चित है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप के अतीचारों को अशुभ क्रिया कहते हैं उनका त्याग अर्थात् ज्ञानादि में दोष न लगाना विनय है। चारित्र के कारणों में अनुमति देना वैयावृत्य है। इसी प्रकार स्वाध्याय और ध्यान भी चारित्र है क्योंकि ये सब अविरति, प्रमाद और कषाय के त्यागरूप हैं।

इस प्रकार चारित्राराधना के कथन से तप आराधना को जाना जा सकता है। यदि भोजन आदि का त्याग किया तो अविरति का त्याग नियम नहीं किया। 'भोजन का त्याग करने वाले भी असंयमी देखे जाते हैं' यह बात चित्त में रखकर आचार्य कहते हैं-

तप की आराधना करने वाले के द्वारा, सकलविरति से सम्बन्धरूप चारित्र, 'भयणिज्जं' भजनीय है। अर्थात् तप में जो संलग्न है वह असंयम का त्याग करता भी है और नहीं भी करता।

अन्य टीकाकार इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं-चारित्र की आराधना में तप की आराधना की सिद्धि अवश्य होती है ऐसा जो कहा वह कैसे? उसी के समाधान के लिये 'संजममाराधंतेण' इत्यादि कहा है। ऐसा वे इस गाथा की उत्थानिका में कहते हैं। उनका कथन ठीक नहीं हैं-क्योंकि चारित्र की आराधना करने पर तप आराधना की सिद्धि होती है ऐसा ग्रन्थकार ने कहीं भी नहीं कहा। तब कैसे कहते हैं कि ग्रन्थकार ने ऐसा कहा है? यदि कहोगे कि-

'विदियाय हवे चरित्तम्मि' इस कथन के द्वारा कहा है? तो यह भी ठीक नहीं है क्योंकि इन शब्दों का यह अर्थ नहीं है। शब्द के द्वारा जिसकी प्रतीति हो, उसे उनका कथन कहना युक्त है। तथा, यदि उन्होंने ऐसा कहा है तो पुनः उसी का उपन्यास वह क्यों करते और वह कैसे युक्त हो सकता है? क्योंकि गाथा में चारित्र की सिद्धि की अन्य की सिद्धि के क्रम का कथन नहीं है। 'प्रतिज्ञामात्र से विवादग्रस्त व्यक्ति नहीं समझता' इस प्रकार का युक्तिप्रश्न अन्य व्याख्याओं के द्वारा सूचित प्रतिविधान में कैसे युक्त हो सकता है?

एक अन्य व्याख्या में कहा है-'तेरह प्रकार के चारित्र में सर्वथा प्रयत्नशील होने का नाम संयम है। वह संयम बाह्य तप के द्वारा संस्कार किये गये अभ्यन्तर तप के बिना नहीं होता अर्थात् बाह्य और अभ्यन्तर तप के होने पर संयम होता है; क्योंकि संयम का स्वरूप तप के द्वारा उपकृत होता है किन्तु उक्त कथन घटित नहीं होता; क्योंकि संयम शब्द का अर्थ प्रयत्नशील होना नहीं है। किसी ग्रन्थ में संयम शब्द का प्रयोग इस अर्थ में नहीं हुआ है। शब्द का अर्थ उसके बारंबार प्रयोग से जाना जाता है।

'विदियाय ; हवे चरित्तम्मि' इस गाथा सूत्र में आगम चारित्र शब्द सामान्य चारित्र का वाचक है, उसका सकल चारित्र रूप विशेष अर्थ आप कैसे कहते है? समस्त सामायिक आदि चारित्र की आराधना चारित्राराधना है। आगे कहेंगे कि क्षीणकषाय और केवली के पण्डित पण्डित मरण होता है। अतः यथाख्यातचारित्राराधना भी उसमें आती है। तथा बाह्य तप के द्वारा संस्कारित अभ्यन्तर तप से इत्यादि कथन भी असम्बद्ध है क्योंकि बाह्य तप के अनुष्ठान के बिना भी अन्तर्मुहूर्तमात्र में रत्नत्रय को प्राप्त करके, भगवान् ऋषभेदव के शिष्य भद्दणराज वगैरह का निर्वाण गमन आगम में प्रसिद्ध ही है।

भावार्थ-संयम शब्द में 'सं' का अर्थ है समस्त मन वचन काय के द्वारा पापको लाने वाली क्रियाओं का 'यमन'-त्याग संयम है। अतः संयम का अर्थ चारित्र है। वह बाह्य अनशन आदि और अभ्यन्तर प्रायश्चत्तिदि के भेद से बारह प्रकार का है। उस तप की आराधना चारित्राराधना में आती है क्योंकि उसमें भी अविरति, प्रमाद और कषाय का त्याग होता है। किन्तु तप आराधना में चारित्राराधना

नहीं आती; क्योंकि तपस्वी असंयम का त्यागी होता भी है और नहीं भी होता। भोजनादि का त्याग करने वाले भी कोई-कोई असंयमी देखे जाते हैं। इस ग्रन्थ पर अन्य भी टीकाएँ थीं। उन्हीं के मत का निराकरण ऊपर टीकाकार अपराजित सूरि ने किया है। उन्होंने जो बाह्य तप के बिना मुक्ति प्राप्ति का निर्देश किया है उसका अभिप्राय इतना ही है कि जिन दीक्षा धारण करने के पश्चात् ही अन्तर्मुहूर्त में क्षपक श्रेणि पर आरोहण करके मुक्त हुए। अतः उन्हें अनशन आदि बाह्य तप नहीं करना पड़ा। अभ्यन्तर तप तो रहा ही।

निर्जरा तप के अधीन है। जब क्रम से निर्जरा को प्राप्त होते होते सब कर्म चले जाते हैं तब 'स्व' में स्थिति रूप निर्वाण की प्राप्ति होती है। अतः निर्वाण का कारण निर्जरा ही है और निर्जरा का सम्पादक है तप। इसलिये दर्शनाराधना और तप आराधना ये दो आराधना कहना युक्त है। इस आशंका के उत्तर में आचार्य संवर को करने वाले चारित्र के होने पर ही तप मुक्ति के अनूकूल निर्जरा करता है, अन्यथा नहीं-ऐसा कथन करते हैं-

सम्मादिट्ठिस्स वि अविरदस्स ण तवो महागुणो होदि।
होदि हु हत्थिण्हाणं चुंदच्चुदकम्म तं तस्स।। (7)

सम्यग्दृष्टी भी जो अविरत है अर्थात् अविरत सम्यग्दृष्टी का तप महान् उपकारी नहीं होता। उसका वह तप हाथी के स्नान की और मंथनचर्मपालिका का मथानी की रस्सी की तरह होता है।

तत्त्वार्थ श्रद्धानवान् भी, असंयमी का तप महागुणवाला नहीं होता।

गुण शब्द के अनेक अर्थ है। कहीं गुण, शब्द से रूपादि कहे जाते हैं जैसे वैशेषिक दर्शन के सूत्र में गुण शब्द से रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व अपरत्व बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, आदि लिये गये हैं। 'हम इस नगर में गुणभूत है' इस वाक्य में गुणशब्द का अर्थ गौण या अप्रधान है। 'इनने गुण किया' इस वाक्य में 'गुण' का अर्थ उपकार है। यहाँ भी गुणशब्द का अर्थ उपकार है। अतः महान् है 'गुण' अर्थात् उपकार इसका। गाथा में 'होदि' क्रिया है उसका अर्थ 'होता है'। उसके साथ 'ण' का सम्बन्ध लगाना चाहिये। तब अर्थ होता है-तप महान् उपकारी नहीं है। पूरे वाक्य

का अभिप्राय है-असंयमी सम्यग्दृष्टी का भी तप कर्मों को जड़ से नष्ट करने में असमर्थ है। फिर जो सम्यग्दृष्टी नहीं है, उनके संवर के अभाव में प्रति समय बन्धनेवाले कर्मों का संचय होते हुए मुक्ति की बात ही क्या है?

शङ्का-संयम के होने पर भी निर्जरा के बिना मुक्ति नहीं होती। अतः ऐसा भी कहा जा सकता है कि जिसने तप की भावना नहीं की उस सम्यग्दृष्टी का चारित्र महान् उपकारी नहीं है?

समाधान-आप का कथन यथार्थ ही है। यह कथन चारित्र की प्रधानता की विवक्षा को लिये हुए हैं। जैसे 'तलवार काटती है' ऐसा कहा जाता है। किन्तु काटने वाले व्यक्ति के बिना केवल अकेली तलवार नहीं काटती। परन्तु तलवार की तीक्ष्णता, गौरव और कठोरता आदि अतिशयों को बतलाने की इच्छा होने पर 'तलवार काटती' है इस प्रकार तलवार के स्वातन्त्रय को कहा जाता है। इसी तरह यहाँ भी है अतः कोई दोष नहीं है।

उक्त कथन के समर्थन में ग्रन्थकार दृष्टान्त देते हैं-जैसे हाथी स्नान करके भी निर्मल नहीं होता, वह अपनी सूँड के द्वारा धूल उठाकर अपने पर डालता है। उसी तरह तप के द्वारा कुछ कर्मों की निर्जरा होने पर भी असंयम के द्वारा उससे अधिक कर्मों का बन्ध होता रहता है। ऐसा माना गया है।

दूसरा दृष्टान्त देते हैं-मन्थनचर्मपालिका की तरह संयमहीन तप होता है।

शङ्का-दो दृष्टान्त किस लिये दिये हैं?

समाधान-तप के द्वारा जितनी कर्मनिर्जरा होती है, असंयम के निमित्त से उससे बहुत अधिक कर्मों का बन्ध होता है, यह बतलाने के लिए हस्तिस्नान का दृष्टान्त दिया है क्योंकि स्नान के पश्चात् शरीर के गीले होने से बहुत-सी धूल उस पर जम जाती है। तथा बन्धरहित निर्जरा मोक्ष प्राप्त कराती है, बन्ध के साथ होने वाली निर्जरा नहीं। जैसे मन्थनचर्मपालिका। वह तो बन्धसहित मुक्ति देती है अर्थात् मथानी चलाते समय एक ओर से रस्सी छूटती जाती है किन्तु साथ ही दूसरी ओर से लिपटती जाती है।

दूसरे टीकाकार कहते हैं-समयभेद की अपेक्षा न करके शुद्धि और अशुद्धि को दिखलाने के लिये प्रथम दृष्टान्त दिया है। किन्तु ऐसा कहना अयुक्त है क्योंकि

समस्त कर्मों के विनाश को शुद्धि और कर्मों के साथ रहने को अशुद्धि कहते हैं। जब वहाँ शुद्धि नहीं है तो कैसे उसे दिखलाते है? और कुछ कर्मों के चले जाने मात्र से यदि शुद्धि या मुक्ति मानते हो तो ऐसी शुद्धि किस जीव में नहीं है क्योंकि कर्मपुद्गलस्कन्ध प्रत्येक आत्मा को फल देकर जाते रहते हैं। और भी कहा है कि जब कालभेद से वैधर्म्य की आशंका की जाती है चूँकि बन्धन और निर्जरा एक ही काल है तब दूसरा दृष्टान्त दिया है; क्योंकि रस्सी के लिपटने और छूटने का एक ही काल है, यह कथन भी निस्सार है। 'चन्द्रमुखी कन्या' इस दृष्टान्त में इस प्रकार की आशंका सम्भव नहीं है कि कन्या का मुख तो सदा सम्पूर्ण रहता है और चन्द्रमा तो पूर्णिमा के ही दिन पूर्ण होता है। उपमान उपमेय भाव दोनों में पाये जानेवाले साधारण धर्मों को ही लेकर किया जाता है, दोनों में वैधर्म्य तो होता ही है। यदि न होता तो उनमें वह उपमान और यह उपमेय ऐसा भेद ही न होता। तथा उपमेय की विशेषता दिखलाने के लिए ही उपमान होता है। अकेले उपमान के लिये उपमेय नहीं होता।

भावार्थ-मिथ्यादृष्टि की तो बात ही क्या, तत्त्वों का श्रद्धानी सम्यग्दृष्टी भी यदि अविरत हैं, हिंसादि विषयों में प्रवृत्त रहता है, उसका तप करना महान् उपकारक नहीं है। अर्थात् वह कर्मों को सर्वथा नष्ट नहीं कर सकता। जो संयम से हीन होता है उसके संवर के अभाव में प्रतिसमय नये-नये कर्मों का बन्ध होता रहता है। अतः उसकी मुक्ति नहीं हो सकती। यह कथन चारित्र की प्रधानता दिखलाने के लिये है। जैसे तप के प्राधान्य की विवक्षा में कहा है-तप से ही मुक्ति होती है अतः तप करना चाहिए। असंयमी का तप हाथी के स्नान की तरह होता है। जैसे हाथी स्नान करके शरीर से भींग जाने से अपनी सूँड द्वारा अपने ऊपर डाली गई बहुत-सी धूल ग्रहण कर लेता है। उसी तरह असंयमी तप के द्वारा कुछ कर्मों की निर्जरा करके भोजनादि की लम्पटतावश बहुत अधिक कर्मबन्ध करता है। दूसरा दृष्टान्त है मन्थनचर्मपालिका। हस्तिस्नान दृष्टान्त के द्वारा तो यह बतलाया है कि जितनी निर्जरा करता है उससे बहुत अधिक कर्मबन्ध करता है और दूसरे दृष्टान्त से बतलाया है कि बन्ध के साथ-साथ होनेवाली निर्जरा से मुक्ति नहीं हो सकती।

संक्षेप से आराधना के अन्य प्रकार कहते है-

अहवा चारित्ताराहणाए आराहियं हवइ सव्वं।
आराहणाए सेसस्स चारित्ताराहणा भज्जा।। (8)

अथवा चारित्र की आराधना में ज्ञान, दर्शन, तप सब आराधित होता है। ज्ञान दर्शन और तप में से किसी की भी आराधना में चारित्र की आराधना भाज्य होती है।

जैनधर्म में वस्तु के कथन करने के एक, दो, संख्यात, असंख्यात और अनन्तरूप है। जिसके द्वारा जीव हित की प्राप्ति और अहित का निवारण करते हैं उसे चारित्र कहते हैं। अथवा सज्जनों के द्वारा जो 'चर्यते' सेवन किया जाता है वह सामायिक आदि रूप चारित्र है। उसकी आराधना करने पर अर्थात् उस रूप परिणति के होने पर सब-ज्ञान दर्शन और तप आराधित-निष्पादित होता है। यहाँ 'सर्व' शब्द समस्त प्रकारों में प्रयुक्त हुआ है। जैसे 'सब ओदन को खाता है,' यहाँ ओदन अर्थात् भात या चावल के व्रीहि, शालि आदि जितने प्रकार हैं वे सब खानेरूप से अभिप्राय है। इसी प्रकार यहाँ भी 'सर्व' शब्द से मुक्त के उपायों के जो प्रकार ज्ञानादि है उन यहाँ यह शंका होती है कि चारित्र की मुख्यता से ही आराधना का एक प्रकार क्यों कहा है अर्थात् आराधना के एक प्रकार में चारित्र को ही क्यों लिया है?

इसका उत्तर देते हुए आचार्य कहते हैं-शेष अर्थात् ज्ञान दर्शन और तप में किसी एक की आराधना करने पर चारित्र की आराधना भाज्य है; क्योंकि असंयत सम्यग्दृष्टि ज्ञान और दर्शन का ही आराधक होता है, चारित्र और तप का नहीं। और मिथ्यादृष्टि तो अनशन आदि में तत्पर रहते हुए भी चारित्र की की आराधना नहीं करता। कोई ज्ञानादि की आराधना करता है और कोई चारित्र की भी आराधना करता है। इस प्रकारों अन्य आराधनाओं के साथ चारित्र आराधना का अविनाभाव नहीं है अर्थात् चारित्राराधना के विना भी अन्य आराधना होती है। इसलिए उनकी मुख्यता से आराधना का एक प्रकार नहीं कहा है। यह उक्त कथन का भाव है।

शङ्का-क्षायिक वीतराग सम्यक्त्व की आराधना में और क्षायिकज्ञान की आराधना में अन्य चारित्रादि की भी आराधना नियम से होती है तब कैसे कहते हैं कि शेष आराधनाओं में चारित्रराधना भाज्य है?

उत्तर–उक्त कथन क्षायोपशमिकज्ञान और क्षायोपशमिक सम्यकत्व की अपेक्षा किया है ऐसा जानना।

इस गाथापर अन्य टीकाकारों की व्याख्या इस प्रकार है-'चारित्ताराधणाए' यहाँ चारित्र शब्द से सम्यक्चारित्र लिया है। वह सम्यक्चारित्र शास्त्र में कहे गये सम्यग्दर्शन से विशिष्ट सम्यग्ज्ञान के क्रम से च्युत न होते हुए अर्थात् सम्यग्दर्शनपूर्वक सम्यग्ज्ञान के साथ सावधानतापूर्वक प्रवृत्तिरूप होता है। उसकी आराधना करने पर शेष आराधनाओं की सिद्धि होती ही है क्योंकि सम्यग्ज्ञान का कार्य चारित्र है और सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शनपूर्वक होता है। कार्य कारण का अविनाभावी होता है-कारण के बिना कार्य नहीं होता।

किन्तु यह व्याख्या ठीक नहीं है। इस गाथा में तो गाथाकार ने केवल प्रतिज्ञामात्र की है कि चारित्राराधना में सब आराधना आती है। इसकी सिद्धि के लिए आगे दो गाथाएँ हैं जिनमें ग्रन्थाकार ने उसका कारण कहा है कि क्यों चारित्राराधना में अन्य आराधना समावष्टि होती है। वहाँ व्याख्याता को उसका कारण बतलाने का अवसर है। शास्त्रों में व्याख्या का यही क्रम है कि ग्रन्थकार ने स्वयं जहाँ जो कहा है वहाँ वही व्याख्याकार को कहना चाहिये। इस गाथा में तो उसने ऐसा नहीं कहा। व्याख्याकार स्वयं ही कल्पना करता है। गाथासूत्रकार तो आगे 'कादव्वमिणमकादव्व' इत्यादि द्वारा कहेंगे।

तथा 'चारित्राराधना की मुख्यता से एक ही आराधना है' इस व्याख्या में आगे के गाथासूत्र का कथन करना इष्ट है। यदि वह कथन यहीं कर दिया जाता है तो आगे की गाथा के कथन का अवसर नहीं रहता।

शङ्का–अन्य आराधनाओं को अपने में अन्तर्भाव करनेवाली चारित्राराधना का निरूपण करने पर चारित्र का स्वरूप बतलाने के लिये आगे की गाथा आई है? तब आप कैसे कहते हैं कि आगे की गाथा के कथन का अवसर नहीं रहता?

उत्तर–यदि ऐसा है तो दर्शनाराधना अपने में ज्ञानाराधना को अन्तर्भूत करके प्रवृत्त हुई है अतः गाथाकार ने सम्यग्दर्शन का भी स्वरूप क्यों नहीं कहा? वह भी कहना चाहिए था। यदि कहोगे कि यह उनकी इच्छा है तो ऐसा कहना भी ठीक

नहीं है क्योंकि न्याय का अनुसरण करने वाले शास्त्रकारों की इच्छा न्याय से रहित नहीं होती।

चारित्राराधना के कहने पर अन्य आराधनाओं का ज्ञान कैसे सम्भव है? इस प्रश्न का समाधान है कि चारित्रराधना के साथ ज्ञान और दर्शन का अविनाभाव है अतः उसमें उनका अर्न्तभाव होता है। यही वार्ता आगे की गाथा के पूर्वाद्ध से कहते हैं।

कायव्वमिणमकायव्वयत्ति णाऊण होइ परिहारो।
तं चेव हवइ णाणं तं चेव य होइ सम्मत्तं।। (9)

यह कर्त्तव्य है और यह अकर्त्तव्य है इस प्रकार जानकर त्याग होता है। वही चैतन्यज्ञान है और वही सम्यक्त्व है। पहले कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का परिज्ञान होता है। उसके पश्चात् अकर्त्तव्य का त्याग किया जाता है। यही चारित्र है। यह गाथासूत्र का अर्थ है।

शंका–'परिहारो' में परिहार शब्द का अर्थ त्याग है। इसका खुलासा इस प्रकार है-'सर्प का परिहार करता है' ऐसा कहने पर 'सर्प को त्यागता है' यही अर्थ ज्ञात होता है। अतः जो त्यागने योग्य है उसी का जानना योग्य है। ऐसी स्थिति में ऐसा कहना चाहिए कि 'अकर्त्तव्य को जानकर उसका परिहार होता है।' तब कर्त्तव्य को जानने को क्यों कहा? कर्त्तव्य का परिज्ञान तो करने के लिए होता है छोड़ने के लिए नहीं होता?

उत्तर–गाथा में 'कादव्वमिणत्ति णादूण हवदि परिहारो' यह एक पद सम्बन्ध है। और 'अकादव्वमिणत्ति णादूण हवदि परिहारो' यह दूसरा पद सम्बन्ध है। उनमें से प्रथम पद सम्बन्ध में 'परि' शब्द का अर्थ अच्छी तरह या पूर्णरूप से होता है। जैसे 'परिधावति' का अर्थ अच्छी तरह से, या पूर्ण से दौड़ता है। 'हरति' का अर्थ ग्रहण करना है। जैसे 'कपिलिकां हरति' का अर्थ कपिलिका को ग्रहण करता है। अतः इस वाक्य का अर्थ होता है-मन से, वचन से, काय से, संवर के हेतु कर्त्तव्य को ग्रहण करना, गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा और परीषह जय को अंगीकार करना चारित्र है। आस्रव और बन्ध के हेतु जो परिणाम हैं वे नहीं करने चाहिए। अतः उनका परिहार अर्थात् त्याग चारित्र है। इस प्रकार सम्बन्ध लगाना

चाहिये। जो पदार्थ त्यागने योग्य होता है, उसे जाने बिना भी उसका त्याग देखा जाता है, जैसे कोई शत्रुओं से युक्त स्थान को छोड़ता है। यद्यपि वह उस स्थान में उनके आवास को नहीं जानता, फिर भी दूसरे मार्ग से चला जाता है। इस प्रकार त्यागने योग्य को नहीं जानते हुए भी त्यागना चाहिए।

शङ्का–'जानकर परिहार होता है' इस वचन से ज्ञान और चारित्र की अविनाभाविता प्रकट होती है, श्रद्धान की अविनाभाविता प्रकट नहीं होती?

इस आशङ्काका आचार्य उत्तर देते हैं-वही चैतन्य ज्ञान रूप है और वही चैतन्य सम्यक्त्वरूप है। अतः चैतन्यरूरूप द्रव्य से अभिन्न होने से ज्ञान और दर्शन की एकता बतलाई है। अतः चारित्र की ज्ञान के साथ अविनाभाविता बतलाने से श्रद्धान की भी अविनाभाविता कही गई समझना।

यदि चारित्र को ही ज्ञान और दर्शन रूप माना जाता है तो 'जानकर परिहार होता है' इस कथन में जो पहले ज्ञान का और पश्चात् परिहार का भेदरूप से उपन्यास ग्रन्थकार ने किया है वह नहीं बन सकेगा। तथा 'तं चेव' इस पद में जो नपुंसक लिंग का निर्देश किया है वह भी नहीं बनेगा, किन्तु 'सो चेव हवइ णाणं' ऐसा प्रयोग करना होगा क्योंकि 'परिहार' शब्द पुंल्लिग है और वही चारित्र है। अथवा कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का परिज्ञान होने पर अकर्त्तव्य जो मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयम, कषाय और योग हैं उनका परिहार चारित्र हैं, ऐसा अर्थ लेने पर 'तं चेव' अर्थात् परिहार सामान्य ही चारित्र, ज्ञान और दर्शन है इस प्रकार एक ही है। इस प्रकार चारित्राराधना में ही भेदवादियों को इष्ट आराधना के प्रकारों का अर्न्तभाव होने से चारित्राराधना एक ही है यह इस गाथासूत्र का अर्थ है।

भावार्थ-चारित्र के दो प्रकार है-कर्त्तव्य को स्वीकार करना और अकर्त्तव्य को त्यागना। ज्ञान और दर्शन पूर्वक हित की प्राप्ति तथा अहित के परिहाररूप से परिणत चैतन्य ही ज्ञान और दर्शनरूप है। अतः चारित्र का ज्ञान और दर्शन के साथ अविनाभाव होने से चारित्र में दोनों का अर्न्तभाव होता है। चारित्राराधना में ज्ञानाराधना और दर्शनाराधना का ही अर्न्तभाव कहा है, तप आराधना का नहीं कहा। अतः कहते हैं-

चरणम्मि तम्मि जो उज्जमो आउंजणा य जो होई।
सो चेव जिणेहिं तवो भणिदो असढं चरंतस्स।। (10)

उस अकर्त्तव्य के त्यागरूप चारित्र में जो उद्योग है और उपयोग होता है, उन उद्योग और उपयोग को ही छल कपट त्यागकर करने वाले का जिनेन्द्रदेव ने तप कहा है।

उस अकर्त्तव्य के परिहाररूप चारित्र में जो उद्योग और उपयोग है जिनदेव ने उसे तप कहा है। अर्थात् चारित्र में उद्योग और उपयोग ही तप है, ऐसा कर्मरूपी शत्रुओं को पराजित करने वाले जिनदेव ने कहा है। जो सुख को त्यागता है वही चारित्र में प्रयत्नशील होता है, जिसका चित्त सुख में आसक्त है वह चारित्र धारण नहीं कर सकता। अतः बाह्य तप चारित्र को प्रारम्भ करने में सहायक होते हैं। आगे कहेंगे-'बाह्य तप से समस्त सुखशीलता छूट जाती है।' तथा स्वाध्याय के पाँच भेद पाँच श्रुत भावनारूप है। जो उसमें प्रवृत्ति करता है वह चारित्र में प्रवृत्ति करता है। आगे कहेंगे-'श्रुतभावना से ज्ञान, दर्शन, तप और संयमरूप परिणत होता है।' परिणाम का ही नाम उपयोग है। किये हुए दोषों के प्रति ग्लानि पूर्वक जो वचन होता है वह आलोचना है। तब अकर्त्तव्य के त्याग में जो उपयोग होता है वह चारित्र क्यों नहीं है। जिस साधुने अपने व्रतों में दोष लगाया है उसका उन दोषों से विमुख होकर, हाँ, मैंने बुरा किया, या बुरा विचारा या उसमें अनुमति दी, इस प्रकार के परिणामों को प्रतिक्रमण कहते हैं। आलोचना और प्रतिक्रमण को उभय कहते हैं। अतिचार में निमित्त द्रव्य, क्षेत्र आदि का मन से हटाना, उनमें अनादर भाव का होना विवेक प्रायश्चित है। इस प्रकार विवेकी की उपयोगिता है। जिसको छोड़ना कठिन है उस शरीर से ममत्व न करना 'यह शरीर मेरा नहीं है, न मैं इसका हूँ' इस प्रकार की भावना व्युत्सर्ग है वह भी परिग्रह के त्यागरूप उपयोग ही है अतः चारित्र है।

अनशन आदि तप चारित्र के परिकर हैं-उसके सहायक हैं, यह पहले कहा ही है सदोष चारित्र अचारित्र ही है ऐसा बुद्धि के द्वारा निश्चित करके आत्मा में पूर्णता का लाना, खड़े होना, वन्दना आदि क्रियाओं में असंयम का परिहार करते हुए प्रवृत्त होना, ये सब भी चारित्र का परिकर है। दोष लगाने पर पुनः दीक्षा ग्रहण करना भी चारित्र में उपयोग ही है। विनय के पाँच भेद हैं। उनमें से ज्ञानविनय और दर्शनविनय ज्ञान और दर्शन के परिकर होने से तथा ज्ञान और दर्शन में उपयोगरूप

होने से ज्ञान और दर्शन से अभिन्न है अतः ज्ञान और दर्शन की तरह उनका अन्तर्भाव चारित्राराधना में होता है।

इन्द्रियों के विषयों में राग द्वेष का तथा कषायों का त्याग, अनुचित वचन और काय की क्रिया का त्याग, तथा ईर्या समिति आदि में निर्दोष प्रवृत्ति चारित्रोपयोगरूप होने से चारित्रविनय का अन्तर्भाव चारित्र में होता है। विशिष्ट तपस्वियों में और तप में भक्ति यथा दूसरों की आसादना न करना तपविनय है। उसके बिना सम्यक् तप नहीं हो सकता। अतः तपविनय तप का परिकर है। और अपने परिकर के साथ तप चारित्र का परिकर है। उसके बिना गति नहीं है। जो कपट त्याग कर ऐसा करता है उसी के यह तप होता है। इस प्रकार आराधना के चार, दो और एक भेद हैं।

भावार्थ-चारित्र वही धारण करता है जो सुख को त्याग देता है। चारित्र में उद्यम करना बाह्य तप है। इस तरह बाह्य तप चारित्र का परिकर है उसकी सहायक सामग्री है। और चारित्ररूप परिणाम अन्तरंग तप है। अन्तरंग तप के भेद प्रायश्चित आदि पाप प्रवृत्तियों को दूर करते हैं अतः तप चारित्र से भिन्न नहीं है।

पुरुष सोच-विचारकर काम करता है। उसकी चेष्टा प्रयोजन के अधीन होती है। प्रयोजन होने पर उसकी सिद्धि के लिये वह प्रयत्न करता है। प्रयोजन न होने पर नहीं करता। तब यह आराधना का व्याख्यान कैसे उसका प्रयोजक है? ऐसी आशंका होने पर आचार्य कहते हैं बाधारहित मोक्ष सुख पुरुषार्थ है वह पुरुष का प्रयोजन है। जो मोक्ष सुख के अभिलाषी हैं उनको उसका उपाय बतलाने के लिये आराधना का कथन उपयोगी है। यह बतलाने के लिए आगे का कथन करते है। अथवा जिस आराधना के भेदों का कथन किया है उसमें चेष्टा करना चाहिये यह कहने के लिये आगे का कथन है। इसीलिये ग्रन्थकार ने उपसंहार में कहा है कि आत्महित के अन्वेषकको को उसके लिए चेष्टा करना चाहिये-

णाणस्स दंसणस्स य सारो चरणं हवे जहाखादं।
चरणस्स तस्स सारो णिव्वाणमणुत्तरं भणियं।। (11)

ज्ञान का और दर्शन का सार यथाख्यात चारित्र होता है। उस यथाख्यात चारित्र का सार सर्वोत्कृष्ट निर्वाण कहा है।

अन्य व्याख्याकार कहते हैं कि ज्ञान, दर्शन और चारित्र में कौन प्रधान है

ऐसा प्रश्न करने पर चारित्र की प्रधानता बतलाने के लिये यह गाथासूत्र कहा है। किन्तु यह अयुक्त है क्योंकि 'ज्ञान और दर्शन का सार यथाख्यात चारित्र है' ऐसा कहने पर 'चारित्र ज्ञान और दर्शन से प्रधान है' ऐसी प्रतीति नहीं होती। प्रश्न होता है कि ये तीनों कर्मों के विनाश में निमित्त है या नहीं? यदि कहते हो नहीं है तो सूत्र में विरोध आता है क्योंकि 'सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र मोक्ष का मार्ग है' ऐसा सूत्र है। यदि तीनों मोक्ष के उपाय है तो परार्थ-पर के लिये होने से तीनों गौण हो जाते हैं तब चारित्र की प्रधानता कैसी? यदि कहोगे कि ज्ञान और दर्शन चारित्र के लिये हैं चारित्र ज्ञान दर्शन के लिये नहीं है, तो ऐसा कहना युक्त नहीं है क्योंकि साध्य ज्ञान और दर्शन है। उनकी सिद्धि का उपाय चारित्र है। अतः चारित्र ज्ञान दर्शन के लिये है तब वह अप्रधान क्यों नहीं हुआ? चारित्र के बिना न तो क्षायिक ज्ञान होता है और न क्षायिक वीतराग सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। इसलिये जो पूर्व में उत्तरगाथा के क्रम के सम्बन्ध में कहा है वही युक्त है। यह गाथासूत्र यथाख्यात चारित्र का स्वरूप और उसका फल कहने के लिये आया है।

''पढमंमि य विगलियमच्छरेण सुयणेण गहियसारम्मि।
दोसं मोत्तूणं खलो गेह्णउ कव्वम्मि किं अण्णं।।''

'णाणस्स दंसणस्स य सारो' यहाँ सार शब्द सातिशय गुण का वाचक है। इस अर्थ में उसका प्रयोग देखा जाता है। किसी कवि ने कहा है-प्रथम ही मात्सर्य भाव से रहित साधुजनों के द्वारा काव्य का सार ग्रहण कर लिये जाने पर दोष के सिवाय दुर्जन और क्या ग्रहण करें। यहाँ 'सार' शब्द का प्रयोग सातिशय गुण के अर्थ में ही किया गया है।

प्रश्न होता है कि ज्ञान और दर्शन का सातिशय रूप क्या है? तो वह है मोहनीय से उत्पन्न होने वाले कलंक से रहित यथाख्यात चारित्र। कहा है-

''चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो सम्मोत्ति णिद्दिठ्ठो।
मोहक्खोहविहूणो परिणामो अप्पणो य समो।।'' **(प्रव.सा. 19)**

'निश्चय से चारित्र धर्म है और धर्म समभाव को कहा है। तथा मोह और क्षोभ से रहित आत्मा का परिणाम सम है। मोह के दो भेद हैं-दर्शनमोह और चारित्रमोह। उनमें से दर्शनमोह से अश्रद्धान उत्पन्न होता है। आत्मा, मोक्ष आदि के

अस्तित्व में शङ्का का होना, विषयभोगों की इच्छा, धर्मात्मा को देखकर ग्लानि, मिथ्यादृष्टी की मन से प्रशंसा और वचन से स्तुति करना, ये सब उस अश्रद्धान के रूप हैं। चारित्रमोह से राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं। उनसे रहित ज्ञान और दर्शन को यथाख्यात चारित्र कहते हैं। यह गाथासूत्र का अर्थ है।

उस यथाख्यात नामक चारित्र का सार अर्थात् सातिशय फल। यहाँ यह षष्ठी विभक्ति साध्य-साधनरूप सम्बन्ध के निमित्त को लेकर है। उससे साध्यफल का बोध होता है। और 'सार' शब्द उसके अतिशय को कहता है। अतः यह अर्थ हुआ कि यथाख्यात चारित्र का सातिशयफल निर्वाण है। निर्वाण का अर्थ विनाश है। कहा जाता है दीपक का निर्वाण हो गया अर्थात् दीपक नष्ट हो गया। इस तरह यद्यपि निर्वाण शब्द का अर्थ विनाशमात्र है तथापि उत्पन्न हुए कर्मों को नष्ट करने की शक्तिवाले चारित्र शब्द का प्रयोग होने से कर्मों का विनाश अर्थ लिया जाता है। कर्मों का विनाश दो प्रकार का है-कुछ कर्मों का विनाश और सब कर्मों का विनाश। यहाँ दूसरे का ग्रहण किया है क्योंकि 'अणुत्तर' शब्द का प्रयोग किया है। जिससे अधिक कोई नहीं है उसे अनुत्तर कहते हैं। 'भणिदं' अर्थात् आगम में कहा है। अथवा श्रद्धान और ज्ञान का फल दुःख की कारण क्रियाओं का त्याग है। यहाँ जो फल है त्याग उसमें उसके हेतु ज्ञान और दर्शन समाविष्ट हैं। अतः चारित्राराधना में अन्य आराधनाओं का अन्तर्भाव होने से 'ज्ञान और दर्शन का सार यथाख्यातचारित्र है' यह गाथा सूत्र आया है।

पापकर्म दुःख के कारण हैं। उनका त्याग ज्ञान और श्रद्धान के बिना सम्भव नहीं है। किसी में मन का अनुरक्त होना और किसी से द्वेष करना पापक्रिया है। चारित्र नवीन कर्मों के आने को रोकता है और पुराने कर्मों का विनाश करता है। अतः उचित ही कहा है कि उस चारित्र का सार सर्वोत्कृष्ट निर्वाण है।

भावार्थ-रागद्वेष से रहित ज्ञान और दर्शन को ही आगम में यथाख्यात चारित्र कहा है। उसका सार निर्वाण अर्थात् समस्त कर्मों का विनाश है। निर्वाण से उत्कृष्ट अन्य नहीं है।

दुःख के कारणों को दूर करना ज्ञान का फल है इस अन्वय की सिद्धि के लिए दृष्टान्त कहते हैं-

चक्खुस्स दंसणस्स य सारो सप्पादिदोसपरिहरणं।
चक्खू होइ णिरत्थं दट्ठूण बिले पडंतस्स।। (12)

चक्षु से देखने का सार सर्प आदि दोषों से दूर रहना है। देखकर भी आगे वर्तमान साँप के बिल में गिरनेवाले मनुष्य की आँख व्यर्थ है।

यहाँ 'चक्षु' से निर्वृति और उपकरणरूप द्रव्येन्द्रिय का ग्रहण किया है। उससे उत्पन्न और रूप को जाननेवाले ज्ञान को यहाँ दर्शन कहा है। उससे यह अर्थ होता है-चक्षु से होनेवाले ज्ञान का फल सर्प, कण्टक आदि की दुःख देनेवाली क्रिया-काटना या पैर में लगना आदि से बचना है। गाथा में सर्पादिदोष से बचना है। सो सर्प आदि के द्वारा किये जानेवाले स्पर्शन, काटना आदि क्रिया विशेष को सर्पादिदोष कहा जाता है। उसका परिहार फल है। तब वाक्य का अर्थ यह हुआ-जो ज्ञान है उसका फल दुःख का निराकरण है। जैसे चक्षु से होने वाले सर्पादिके ज्ञान का फल सर्पादि के स्पर्श से उनके काटने आदि से बचना है। यहाँ चक्षु से चक्षुज्ञान अर्थात् चक्षु से होनेवाला ज्ञान लेना चाहिए। आगे स्थित साँप के बिल आदि को देखकर भी, जानकर भी, उसमें गिरनेवाले मनुष्य का, चक्षुज्ञान, निरर्थक है।

'चरणस्स तस्स सारो' इत्यादि में समतारूप चारित्र का फल समस्त कर्मों का विनाश कहा है। किन्तु कर्मों का विनाश पुरुषार्थ कैसे है? दुःख की निवृत्ति और सुख को फल कहा है ऐसी आशङ्का होने पर ग्रन्थकार प्रधान पुरुषार्थ जो बाधारहित सुख है, उसका कारण होने से समस्त कर्मों के विनाश की उपयोगिता बतलाते हैं-

णिव्वाणस्स य सारो अव्वाबाहं सुहं अणोवमियं।
कायव्वा हु तदट्ठं आदहिदगवेसिणा चेट्ठा।। (13)

निर्वाण का सार बाधारहित उपमाररहित सुख है। अतः आत्महित के खोजी को उस अव्याबाध सुख की प्राप्ति के लिए चेष्टा करना चाहिए। समस्त कर्मों के विनाश का फल कर्मजन्य समस्त दुःखों से रहित, उपमारहित सुख है। अतः आत्महित के खोजी को, उस बाधारहित सुख के लिये, चेष्टा करना चाहिए। अर्थात् निरतिचार ज्ञानदर्शनचारित्र की परिणति रूप आराधना को अपनाना चाहिए।

जम्हा चरित्तसारो भणिया आराहणा पवयणम्मि।
सव्वस्स पवयणस्स स सारो आराहणा तम्हा।। (14)

क्योंकि प्रवचन में चारित्र का फल आराधना कहा है। इसलिए समस्त प्रवचन का सार आराधना ही है।

ज्ञान में, दर्शन में, और पापकर्म से निवृत्ति जो प्रयत्नशील है उसकी परिणति को यहाँ चारित्रशब्द से ग्रहण किया है। तब यह अर्थ प्राप्त होता है कि चारित्र का फल, प्रवचन में-जिसके द्वारा अथवा जिसमें जीवादिपदार्थ प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण से अविरुद्ध कहे जाते हैं यह प्रवचन अर्थात् जिनागम है उसमें, आराधना को कहा है।

गाथा के उत्तरार्धद्वारा प्रकरण प्राप्त आराधना की अतिशयवत्ता का उपसंहार करते हैं-इस कारण से समस्त जिनागम का सार आराधना है। गाथा में जो 'य' च शब्द है वह एवकार (ही) के अर्थ में है और उसे आराधना शब्द के आगे लगाना चाहिए अर्थात् जिनागम का सार आराधना ही है।

आगम में आराधना की अतिशयवत्ता क्यों कही है इसका समाधान करते हैं-

सुचिरमवि णिरदिचारं विहरित्ता णाणदंसणचरित्ते।
मरणे विराधयित्ता अणंतसंसारिओ दिठ्ठो।। (15)

ज्ञान श्रद्धान और चारित्र में बहुत काल तक भी अतिचार विना विहार करे मरण काल में विराधना करके अनन्तभव धारण करनेवाला देखा गया है।

ज्ञान में, दर्शन में और समतारूप चारित्र में सुदीर्घकालतक अतिचार रहित विहार करके भी अर्थात् ज्ञानदर्शनचारित्र का निर्दोष पालन करके भी जब उस पर्याय के विनाश का समय आवे अर्थात् मरते समय यदि रत्नत्रयरूप परिणामों को नष्ट करके मिथ्यादर्शन, अज्ञान और असंयमरूप परिणामों को अपनावे तो उसका संसार अनन्त होता है। अर्थात् कर्मभूमि में मनुष्य पर्याय की उत्कृष्ट आयु एक पूर्वकोटी होती है। आठ वर्ष की अवस्था के पश्चात् संयम धारण करके कुछ कम एक पूर्वकोटिकालतक उसका निरतिचार पालन किया। किन्तु मरणकाल आने पर उनसे च्युत हो गया तो संसार में चिरकालतक भ्रमण करना पड़ता है। इस चिरकाल परिभ्रमण के बहाने से सूत्रकार उसकी मुक्ति का अभाव बतलाते हैं।

जो मिथ्यात्वभाव को प्राप्त नहीं हुआ है जिसका चारित्र भी निश्चल है फिर भी यदि वह परीषह से घबराकर संक्लेशभाव को प्राप्त होता है तो उसका संसार सुदीर्घ है, ऐसा भय दिखलाकर ग्रन्थकार संक्लेश को त्यागने का उपदेश देते हैं-

समिदिसु य गुत्तीसु य दंसणणाणे य णिरदिचाराणं।
आसादणबहुलाणं उक्कस्सं अंतरं होई।। (16)

समितियों में और गुप्तियों में और दर्शन और ज्ञान मे जो अतिचार रहित प्रवृत्ति करते है। किन्तु मरणकाल आने पर परीषह के भय से समिति आदि में बारम्बार दोष लगाते हुए संक्लेश परिणाम करते हैं उनका अर्धपुद्गल परावर्तन काल प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है। अर्थात् मरते समय रत्नत्रय से च्युत होकर पुनः उतना काल बीतने पर रत्नत्रय प्राप्त करते हैं।

अन्य व्याख्याकार कहते हैं कि 'ऊपर जो अनन्त संसार कहा है उसका प्रमाण बतलाने के लिए यह गाथा आई है। क्योंकि अनन्त के अनन्त भेद होते हैं अतः अनन्तविशेषका कथन करना आवश्यक था। इस व्याख्या में 'उत्कृष्ट अन्तर होता' है गाथा के इस अन्तिम चरण की उपयुक्तता तो होती है, किन्तु शेष वचन रचना निरर्थक पड़ जाती है। अस्तु। सम्यक् अयन को समिति कहते है। सम्यक् अर्थात् श्रुतज्ञान में कहे गये क्रम के अनुसार चलने आदि में प्रवृत्ति करना समिति है। सावद्य योगों से अर्थात् सदोष मन वचन काय की प्रवृत्ति से आत्मा का गोपन अर्थात् रक्षण करना गुप्ति है। वस्तु का जैसा स्वरूप है वैसा ही श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। मिथ्यात्वरूप कलंक से रहित आत्मा के वस्तुत्व के परिज्ञान को मति आदिरूप क्षायोपशमिक ज्ञान कहते हैं।

यहाँ क्षायोपशमिक ज्ञान को ही लेने का हेतु यह है कि क्षायिकज्ञान के होते उसमें दोष लगाना असम्भव है। क्योंकि संक्लेश मोह के उदय से होता है और मोहकर्म केवलज्ञान के उत्पन्न होने से पहले ही नष्ट हो जाता है। कहा भी है-'मोह के क्षय से तदनन्तर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय के क्षय से केवलज्ञान होता है।' यहाँ दर्शन से वीतराग सम्यक्त्व का ग्रहण नहीं किया गया है क्योंकि मोह का नाश हुए विना वीतरागता नहीं होती।

इन्द्रिय-मन जय बिना शरीराश्रित धर्म कर्म सभी कुधर्म/ (व्यर्थ) (इन्द्रिय-मन-विजय हेतु योग्य शारीरिक साधना)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः 1. छोटी-छोटी गैया... 2.सायोनारा...)

शरीराश्रित धर्म करना है सरल, इन्द्रिय-मन जय करना कठिन।
शरीराश्रित धर्म करते अधिकतर, विभिन्न वेश, चिह्न, लिंगाधार।। (1)
इन्द्रिय मन जय हेतु इस से परे, क्रोध मान माया लोभ जय चाहिए।
ईर्ष्या तृष्णा घृणा काम जय चाहिए, इन्हें जय हेतु आत्मशक्ति चाहिए।। (2)
बगुला, घडियाल, एनाकोंडा, आक्टोपस, पोलर वियर आदि करते शरीर संयम।
शिकार पकडकर खाने हेतु, घंटो से महिनों तक रहते अचल।। (3)
बिना खाये पीये चले फिरे बिना, शरीर को रखते हल-चल बिना।
बिना बोले विभिन्न रूप रंग धारण किये,
पडे रहते शिकार को छल से खाने के लिए।। (4)
ऐसा ही जो जन आत्मश्रद्धा प्रज्ञा के बिना, समता शान्ति आत्मविशुद्धि बिना।
धर्म करते केवल तन व साधना द्वारा, उनका आत्म पतन होता कुभाव कुकर्म द्वारा।। (5)
ऐसा धर्म कुधर्म-अधर्म-मिथ्याधर्म, ढोंग पाखण्ड आडम्बर अनात्मधर्म।
स्व-पर अहितकारी ये पाखण्ड धर्म, पर पोषणकारी प्रपंच व ठग धर्म।। (6)
आत्मशक्ति हेतु आत्मविशुद्धि चाहिए, इस हेतु चाहिए शरीर पर विजय,
इस हेतु चाहिए इन्द्रिय मन विजय, अन्यथा अहितकर शारीरिक क्रिया व विजय।। (7)
शारीरिक क्रिया से अन्य को प्रभावित कर, चाहते धन जन मान सत्कार।
ऐसा चाहना भी निदान जो पापकर, 'सूरी कनक' साधना करे जो मोक्षकर।। (8)

ग.पु.कॉ. दि-4.3.2020, रात्रि 8.19

सन्दर्भः-

हिताहित प्राप्ति परिहार समर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्।। 'परीक्षामुख'(2)

जिससे हित की प्राप्ति अहित का परिहार होता है वह प्रमाण है जो कि सम्यग्ज्ञान स्वरूप है।

अज्ञान निवृत्तिहानोपादानोपेक्षाश्च फलम्। (प. मुख सूत्र 1 अध्याय 5)

अज्ञान की निवृत्ति अहित का त्याग, हित की प्राप्ति, वीतराग स्वरूप निरपेक्षरूप समता भाव यह सम्यग्ज्ञान का फल है।

समकित-ज्ञान वैराग्य औषधि

भू महिला कणयाइ लोहाहि विसहरं कहं पि हवे।
सम्मत्तणाण वेरग्गोसहमंतेण जिणुद्दिट्ठं।। 79. (रयणसार)

पद्य-

भूमि महिला स्वर्णादि लोभरूपी विषधर सर्प कैसा भी हो।
सम्यक्त्व ज्ञान वैराग्य औषध मंत्र से होते वश यह जिनोक्त।।
विषधर सर्प से अधिक घातक है लोभ रूपी सर्प।
इसे केवल वश कर सकते हैं सम्यक्त्व ज्ञान वैराग्य औषध।।
अन्यथा गृहस्थ हो श्रमण ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि में होते मूर्च्छित।
जिससे वे न कर सकते हैं आत्म विकास रूपी भाव विशुद्धि।।

मुनि दीक्षा से पूर्व 10 का मुण्डन आवश्यक

पुव्वं जो पंचिंदिय तणु मणु वचि हत्थपाय मुंडाउ।
पच्छा सिरमुंडाउ सिवगइ पहणायगो होइ।। 80 रयण.

पद्य- पहले जो करते मुण्डन पंचेन्द्रिय-तन-मन-वच-हस्त-पाद।
पश्चात करते शिरमुण्डन वे साधु शिवगति के पथिक।।
समीक्षा- केवल शिरमुण्डन से नहीं होता है कोई मोक्षमार्गी।
केशलोंचन के पूर्व कषाय-लोंचनादि अनिवार्य।।

एक भौतिक तापसी मैं परधन का त्यागी हूँ, दूसरे की भूमि का पादस्पर्श करना भी पाप समझता हूँ। इसलिये दिन में लम्बमान छींके पर बैठकर पंचाग्नि तप तपता था, और रात्रि में चोरी करता था। एक दिन कोतवाल ने पकड़ लिया, जिससे आर्त्तध्यान से मरा और नरक में गया।

साधुभेषधारी चोर की कथा

पूर्वकाल में कोसाम्बी नगरी में राजा सिंहरथ राज करते थे। बड़े न्यायवान् थे। उनकी स्त्री का नाम विजया था। उस नगरी में एक चोर रहता था। वह साधु के वेष में रहता और बड़के वृक्ष की डाल से सींका बाँध कर उसमें बैठ जाता था। लोग उसके पास जाते तो उनसे कहा करता था कि दूसरे की वस्तु की तो बात ही क्या है, पर मैं धरती तक नहीं छूता हूँ। दिन भर उसका ये ही हाल रहता था, पर रात को बस्ती में जाकर चोरी किया करता था। उसके साधुभेष और मीठी-मीठी बातों के कारण लोगों पर उसका इतना विश्वास बढ़ गया कि किसी को उस पर सन्देह भी नहीं होता था।

जब शहर में बहुत सी चोरी हुई और उनका पता न लगा तब राजा ने थानेदार को बुलाकर खूब डाँट लगाई। बेचारा थानेदार जहाँ तहाँ पता लगाता फिरा। पर कुछ पता नहीं लगा। अन्त में हार मान कर इसी चिन्ता में बैठा था कि इतने में एक भिखारी ब्राह्माण उसके पास पहुँचा और भोजन के लिये उससे कुछ माँगा! थानेदार ने उत्तर दिया कि भाई मुझे तो प्राणों की पड़ रही है, तुझे भीख जोड़ने की पड़ रही है। भिखारी ब्राह्मण ने थानेदार से इसका कारण पूछा।

पहिले तो थानेदार ने कुछ नहीं कहा, पर ब्राह्मण के बार-बार पूछने पर उसने सब हाल कह सुनाया। ब्राह्मण ने सोच-विचार कर कहा कि चोरी करनेवाला वही मनुष्य होगा जो सच्चाई के लिए बहुत प्रसिद्ध है। बहुत से मनुष्य अपनी सच्चाई का बड़ा ढोंग फैलाते हैं और अन्त में वे बड़े ठग निकलते हैं। थानेदार ने कहा कि यहाँ एक साधु बड़ा सन्तोषी मनुष्य है। मुझे तो उस बेचारे पर बिल्कुल सन्देह नहीं होता। मैं उसे महात्मा समझता हूँ।

ब्राह्माण बोला कि आप उसकी सच्चाई का ठीक पता लगावें। जिसे आप महात्मा कहते हैं वही चोर निकलेगा। इसके लिये मैं अपने ऊपर बीती हुई एक वार्ता आपको सुनाता हूँ, आप चित्त लगाकर सुनिये। थानेदार ने उत्तर दिया, अच्छा कहो-

ब्राह्मण कहने लगा कि मेरी स्त्री ने अपने को महासती प्रसिद्ध कर रखा था। जब बच्चे को दूध पिलाती थी तो अपनी दोनों छाती कपड़े से खूब ढाँक लेती

थी, केवल काली बुट्टी निकाल कर बच्चे के मुँह में दबा देती थी। बच्चे को अपनी छाती नहीं छूने देती थी। कारण पूछने पर उत्तर दिया करती थी कि बच्चा भी परपुरुष है, यदि परपुरुष मेरी छाती छू लेवे तो मेरा शीलभंग हो जावे। पर यह सब उसका ढोंग ही निकला। क्योंकि मैंने अपनी आँखों से उसे दूसरों के साथ व्यभिचार करते देखा था और तभी से मैं संसार से विरक्त होकर तीर्थयात्रा को निकल पड़ा हूँ।

मैं पहिले भिखारी नहीं था। मेरे पास बहुत धन था। उसका मैंने सोना ले लिया था और उसे एक पोली लाठी मे भर के उसका मुँह बन्द कर रक्खा था। उस लाठी को मैं अपने पास ही रखता था। यात्रा करते फिरते मुझे एक लड़का मिल गया और वह भी यात्रा में साथ रहने लगा। पहिले मुझे उस लड़के का विश्वास नहीं था इसलिये मैं उस लाठी को उस लड़के से बचाये रहता था।

एक दिन साँझ को एक कुम्हार के यहाँ मैं और वह ठहरे रहे। जब सबेरा होने पर दोनों ने चल दिया और बहुत दूर निकल गये, तब वह लड़का सिर पर हाथ रख के कहने लगा कि अरे! रे! रे! मुझसे बड़ी भूल हो गयी है। जिसके यहाँ हम आप रात को ठहरे रहे थे उसका यह एक तिनका मेरी पगड़ी में चिपट कर चला आया है। मैं चोरी का त्यागी हूँ, तिनका उसके घर पर देने को जाता हूँ। लड़का कुम्हार के घर तक गया और तिनका सौंप कर वापिस आया। तब से मैं उस पर बड़ा भरोसा करने लगा था।

एक दिन साँझ के समय गाँव में वह और मैं ठहरा। मेरे पास का भोजन खत्म हो चुका था, सो मैंने साथ के लड़के से भोजन लाने को कहा। लड़का कहने लगा कि भोजन लेकर लौटते-लौटते रात्रि बहुत हो जायेगी, इससे अपनी यह लाठी मुझे दे दीजिये, रास्ते में कुत्ते इत्यादि को ताड़ने के काम आयेगी। उसकी ये बातें सुनकर मैंने वह लाठी उसे दे दी। वह पापी हाथ में लाठी लेकर भोजन लेने को चला गया और फिर नहीं आया। ''ब्राह्मण रोते-रोते कहने लगा कि, मैंने उसका बहुत पता लगाया पर नहीं लगा।''

इसके सिवाय ब्राह्मण ने कई ढोंगी ठगों की बातें सुनाई और ऊँचे स्वर से कहा कि, जिस तापसी को आप बड़ा सच्चा बतलाते हैं वही चोर होगा। मैं ही

आज रात्रि को उसका पता लगाऊँगा। ब्राह्मण की इस बात-चीत का थानेदार के चित्त पर बड़ा असर पड़ा। उसने तापसी की परीक्षा करने को ब्राह्मण ही से कहा।

रात होते ही वह ब्राह्मण तापसी के आश्रम की ओर से निकला, तो तापसी के चेलों ने उसे रोका कि, कौन है? ब्राह्मण, बड़ी दीनवाणी से कहने लगा कि, मैं रास्तगीर हूँ, मुझे रात को सूझता नहीं है, यहाँ कहीं एक कोने में ठहर जाने दो। सबेरे कुछ-कुछ दिखने लगेगा, तब चला जाऊँगा। चेलों ने यह हाल अपने गुरु से कहा। तो तापसी ने सोचा कि यह अन्धा है, हमारे काम में कुछ बाधा नहीं डाल सकता, इसलिये उस ब्राह्मण को एक कोने में सोते रहने की आज्ञा दे दी। आज्ञा मिलने पर वह ब्राह्मण एक कोने में पड़ा रहा और चुपचाप टकटकी लगाकर सब हाल देखने लगा।

आधी रात को जब सुनसान हुई, तो तापसी और उसके चेलों ने नित्य का काम चालू कर दिया। वे शहर में गये और बहुत सा धन चुराकर लायें। तापसी के आश्रम के पास ही एक कुआँ था, उसमें वह सब चोरी का धन डालते गये। उस कुएँ के पास एक गुफा थी उसमें तापसी के स्त्री बच्चे रहते थे। उन सबके भोजन आदि का खर्च चोरी के धन से हुआ करता था, यह सब हाल ब्राह्मण ने चुपचाप देख लिया और सबेरा होने पर थानेदार और राजा को मालूम करा दिया। राजा ने, तपासी और उसके चेलों को तुरन्त ही पकड़ बुलाया। फिर ठोक खातरी करके पापी तापसी को तो फाँसी का दण्ड दिया, सो खोटे भावों से मरकर वह नरक को गया और तापसी के चेलों को जेलखाने की सजा दी।

सारांश, चोरी महापाप है, इस भव में और परभव में दुःखदायक है, ऐसा जानकर चोरी नहीं करना चाहिये।

ब्रह्मचर्य के दृढ़ता को करने के लिये कहते हैं-

पूर्वेऽपि बहवो यत्र स्खलित्वा नोद्गताः पुनः।
तत्परं ब्रह्म चरितुं ब्रह्मचर्यं परं चरेत्।। (47) सा.धर्मा.

जिस ब्रह्मचर्य व्रत के विषय में स्खलित होकर आज इस पंचमकाल के मुनियों की बात ही क्या है, किन्तु चौथे काल के ग्यारह अंग और नवपूर्व के पाठी बहुत से रुद्रादिक भी सातिचार प्रवृत्ति प्राप्त होकर पुनः उदय को प्राप्त नहीं हुये

अर्थात् अपने व्रतों में स्थिर नहीं हुये। किन्तु प्रत्युत अनाचार के ही आचरण करनेवाले हुये हैं। अतः हे आराधक! रोज तू शुद्ध ज्ञानानुभव तथा शुद्धात्मानुभव का कारण उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य व्रत की आराधना कर।

रुद्र ग्यारह होते हैं, और वे सब दिगम्बर दीक्षा को धारणकर उत्कृष्ट संयम का पालन कर 11 अंग और नौ पूर्व के पाठी होते हैं। परन्तु स्त्री के निमित्त से भ्रष्ट होकर नरक में जाते हैं। आचार्यों ने कहा है-कर्मों में मोहनीय कर्म का जीतना बड़ा कठिन है। इन्द्रियों में रसना इन्द्रिय पर विजय करना-व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना तथा गुप्तियों में मनोगुप्ति का पालन करना अत्यन्त कठिन है। रुद्र का तो उदाहरण है और भी बहुत ऐसे मानव हुए है जो ब्रह्मचर्य व्रत का घातकर नरक में गये। इसलिये वस्तुस्वरूप का विचारकर ब्रह्मचर्य व्रत में दृढ़ रहो और बाह्य वस्तु में रमण करने की भावना का त्याग कर ब्रह्म अर्थात् आत्मा उसमें चर्य अर्थात् रमण करो। इससे ही संसार का नाशकर प्राणी मोक्षपद को प्राप्त करता है।

अपरिग्रह महाव्रत की दृढ़ता का उपदेश-

मिथ्येष्टस्य स्मरन् श्मश्रुनवनीतस्य दुर्मृतेः।

मोपेक्षिष्ठाः क्वचित ग्रन्थे मनो मूर्छन्मनागपि।। (77) सा.धर्मा.

भो सुविहितसाधो! किंचित् परिग्रह के प्रति मिथ्याभावना करने के कारण सेठ का पुत्र श्मश्रुनवनीत आर्त्तध्यान से कुमरण कर दुर्गति को प्राप्त हुआ था। ऐसा विचार कर-यह धनसम्पदा मेरी है, मैं इनका स्वामी हूँ इस प्रकार के संकल्परूप भाव परिग्रह में यदि तेरा मन किंचित् समय के लिये भी प्रवेश करता है तो तुम सावधान होवो, अपने मन को अपने वश में करो तथा परिग्रह में थोड़ा सा भी आसक्त होने वाले मन की उपेक्षा मत करो। क्योंकि छोटा सा कोमल अंकुर ही आगे जाकर उन्नत वृक्ष बनता है। अंगुलि से उखाड़ने योग्य अंकुर समय पाकर कुल्हाड़ी से भी काटने के लिये कठिन होता है।

लुब्धदत्त अपरनाम श्मश्रुनवनीत की कथा

अयोध्या नगरी में एक सेठ रहते थे, उनका नाम भवदत्त था। उनका एक लड़का था। उसका नाम लुब्धदत्त था। लुब्धदत्त का जैसा नाम था, वैसा उसमें गुण भी था। अर्थात् वह बहुत लोभी था। एक दिन वह व्यापार के लिये विदेश को

गया और वहाँ जाकर बहुत सा धन लेकर घर को लौट आ रहा था तब रास्ते में उसे चोरों ने घेर लिया। बिचारा लुब्धदत्त धनहीन होकर घर को चला।

रास्ते में उसे अहीरों के घर मिले। उनके पास बहुत सा मही देखकर उसकी इच्छा मही पीने की हुई और उसने एक ग्वालिये से मही माँगा। ग्वालिये ने लुब्धदत्त को जो मही दिया था, उसमें थोड़ा सा मक्खन भी था, सो उसने छाँछ तो पी ली, और मक्खन बचा लिया। उसने सोचा कि, इस रीत से हररोज मही पिया करूँ और मक्खन बचा लिया करूँ तो थोड़े ही दिनों में बहुत सा मक्खन जुड़ जावेगा, सो उसे बेचकर फिर रोजगार करने लगूँगा। ऐसा सोचकर वह वहीं झोपड़ी बाँधकर रहने लगा।

वह प्रतिदिन ग्वालियों से मठ्ठा माँग लाता और उसमें का चिपका हुआ मक्खन बचाकर निरी छांछ पी लिया करता था। ऐसा करते करते एक मटकी भर घी जमा कर लिया। प्रतिदिन का यह काम देखकर वहाँ के ग्वाले उसे श्मश्रुतनवनीत कहकर पुकारने लगे थे।

जाड़े के दिनों में एक रात्रि को लुब्धदत्त ने अपनी झोपड़ी के भीतर आग जला दी और आप खाट पर लेट गया। इतने में सामने सीके पर टँगी हुई घी की मटकी पर उसकी नजर पड़ी।

उस देखकर वह मन में विचारने लगा कि अब बहुत घी जमा हो गया है, इसे बेचकर व्यापार करूँगा। जब अन्न, कपास आदि के व्यापार से मैं बहुत धनवान् हो जाऊँगा और लोग मेरा आदर करने लगेंगे, तो राज्य प्राप्त करने का उपाय करूँगा, और राज्य बढ़ाते-बढ़ाते जब मैं राजाओं का राजा हो जाऊँगा, तब रात को सतखण्डे महल में पलंग पर लेटूँगा, और जब मेरी स्त्री मेरे पाव दाबेगी तक मैं उससे हँसी में कहूँगा कि कैसे पाँव दाबती है? तुझे अबतक पाँव दाबना नहीं आता? ऐसा कह के लात फटकार दूँगा।

लुब्धदत्त इस विचार तरंग में इतना मग्न हो गया कि उसे कुछ भी सुधि न रही। उसने सचमुच बड़े जोर से लात फटकार दी और वह घी के घड़े में लग गई। लात की ठोकर लगने से घी का घड़ा फूट गया और घी गिरकर अग्नि पर फैल गया, जिससे आग खूब ही भड़क उठी और बढ़कर झोपड़ी में लग गई।

घी के घड़ा फूटने का एकदम भड़ाका सुनकर, वह लुब्धदत्त कुछ सावधान भी हो गया था, परन्तु आग के वेग के सामने वह कुछ न कर सकता था। चारों तरफ से आग फैलने के कारण वह मन का राजा झोपड़ी से बाहर न निकल सका। बेचारा वहीं जलकर राख हो गया और मरणकाल में भी खोटे ध्यान से शरीर छोड़कर कुगति में गया।

देखो, परिग्रह प्रमाण न होने पर लुब्धदत्त की आशा बढ़ती ही गई। इसलिये प्रथम तो परिग्रह को बिलकुल ही छोड़ना चाहिये और यदि बिलकुल न छोड़ा जा सके तो परिग्रह का प्रमाण कर लेना चाहिये कि इतने से अधिक नहीं रक्खूँगा और लुब्धदत्त के समान मन के लड्डू कभी नहीं खाना चाहिये।

निश्चयनय से नैर्ग्रन्थ्य की प्रपत्ति के लिए कहते हैं-

बाह्यो ग्रन्थोङ्गमक्षाणामान्तरो विषयैषिता।
निर्मोहस्तत्र निर्ग्रन्थः पान्थः शिवपुरेऽर्थतः।। (79)

वास्तव में विचार किया जाय तो शरीर बाह्य परिग्रह है और स्पर्शनादि पंचेन्द्रिय सम्बन्धी विषयाभिलाषा अन्तरंग परिग्रह है। जो मानव इन दोनों प्रकार के परिग्रह की ममता का त्याग करता है वही सच्चा निर्ग्रन्थ है। वही मोक्षमार्ग में चलने वाला होने से शिवपुर का पथिक (रास्तागिर) कहलाता है। क्योंकि निर्ग्रन्थ हुए बिना मोक्षगामी नहीं बन सकता है।

त्याग > दान V/s बोली V/s निर्माल्य

(चारों प्रकार के दान आगमोक्त-पुण्य/बोली आगमोक्त नहीं; विषमता जनक किन्तु बोली से लेकर धार्मिक धन ग्रहण महापाप)

(चालः 1. क्या मिलिए... 2. भातुकली..)

त्याग यदि न कर सको तो, दान अवश्य ही तुम करना।
साधु यदि न बन सको तो, सद्गृहस्थ अवश्य बनना।।
त्याग होता है सम्पूर्ण त्याग, सम्पूर्ण (अन्तरंग, बहिरंग) भौतिक वस्तुओं का त्याग।
दान (अन्तरंग, बहिरंग) होता है आंशिक त्याग,
आंशिक भौतिक वस्तुओं का त्याग।।...(1)...

दोनों से रिक्त होने से अनन्तभव, संसार में भ्रमण करता रहा।
आहार भय मैथुन परिग्रह हेतु, अहंकार ममकार ही करता रहा।।
संसार समुद्र पार हेतु तुझे, दोनों परिग्रह त्यागना अनिवार्य।
निस्पृह निर्ग्रन्थ वीतरागी बनकर, आत्मविशुद्धि से मोक्ष पाना श्रेयकर।।..(2)..
यदि यह न कर सको तो तुम, दया दान सेवा (पूजा) करो अनिवार्य।
यदि यह नहीं कर सको तो, तुम्हारा मानव जीवन हुआ नर्क।।
प्रकृति के त्याग व दान से ही, तुम्हारा जीवन अभी गतिशील।
अन्यथा भोजन पानी फल दूध बिन, तुम्हारा जीवन होगा बेकार।।..(3)..
आहार औषधि अभय ज्ञान दान, उपकरण वसतिका रूप में उत्तमदान।
पर्यावरण से ले पशु पक्षी रोगी गरीब, असहाय की सहायता करुणादान।।
इस हेतु करो उत्तमदान स्वरूप, स्व उपार्जित न्याय का एक चतुर्थांश (1/4)।।
मध्यम रूप में एक षट्मांश (1/6) दान, जघन्य रूप से एक दशमांश (1/10) दान।।..(4)..
यह तो हुआ आर्थिक दान, तथाहि (करो) तन मन वचन समय श्रम से।
निर्मल निर्लोभ निःस्वार्थ भाव से, ख्याति पूजालाभ प्रसिद्धि (वर्चस्व) रिक्त से।।
दान करो स्व प्रेरित भावना से, दबाव भय संकोच शंका रिक्त से।
अन्यथा न होगा यथार्थ दान, नवधा भक्ति सप्तगुण युक्त सुदान।।..(5)..
जैन आगम में या किसी धर्म में भी, दान का वर्णन है न कि बोलीका।
बोली में उक्त गुण न होते सम्भव, गुणों से विपरीत दोष सम्भव।।
देय वस्तु का विसर्जन होना विधेय, अन्यथा निर्माल्य दोष उत्पन्न।
निर्माल्य ग्रहण से घोरातिघोर पाप, नरक-तिर्यञ्च-रोग-निर्धन फल।।..(6)..
बोली में होते प्रतिस्पर्द्धा दबाव दम्भ, ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि वर्चस्व।
बोली का धन भी शीघ्रता से न देते, इस हेतु याचना से ले कलह होते।।
बोली का धन भी होता निर्माल्य, धार्मिक सम्पत्ति सभी निर्माल्य।
इन सब पर कब्जा रखना या खाना, महान् पापकारक आगम बखाना।।..(7)..
निर्माल्य खाने वाले भी कुछ दिखावा हेतु, बोली बोले स्व पाप छिपाने हेतु।
भीड़ में मान सम्मान वर्चस्व हेतु, अथवा दबाव से ले प्रतिस्पर्द्धा हेतु।।

बोली तो शक्ति भक्ति से अधिक बोलते, अन्यथा दान सेवादि नहीं/(कम) करते।
इसमें लोभ मान मायादि होते, जो दान न देते वे हिंसक होते।।..(8)..
व्यापार आदि लौकिक काम से/(में), होता न्याय से धनार्जन प्रयोजन।
दान पूजा त्याग पञ्चकल्याण/(चातुर्मास, विधान) से/(में), होता स्वेच्छा से धनादि का विसर्जन।।
केवल धनाश्रित नहीं होता धर्म, धनादि विसर्जन से होता धर्म।
गृहस्थाश्रित दानादि में धन चाहिए, धन बिना नवकोटि से अधिक धर्म।।..(9)..
बोली का धन भी न होता सदुपयोग, होते विविध भ्रष्टाचार वाद-विवाद।
ईर्ष्या तृष्णा घृणा मायाचारी विद्वेष, जिससे धर्म से अधिक होता अधर्म।।
शक्ति अनुसार दान सदा विधेय, बोली तो प्राप्त करते धनी विशेष।
अन्य जन बोली बिना धर्म से वञ्चित, उनमें दीन, हीन, ईर्ष्या होते उत्पन्न।।..(10)..
सच्चे धार्मिक भी धर्म से वञ्चित, दया, दान सेवा पूजा में जो समर्पित।
सहयोग समन्वय न होते सबके, अतः कनकसूरी बोली से साम्य रखते।।..(11)..

कुगृहस्थ < भद्रगृहस्थ < श्रावक

हर आयु हर क्षेत्र में मोही स्वार्थी का अस्त-व्यस्त-संत्रस्त जीवन

(मोही स्वार्थी के भाव-व्यवहार से परे निर्मोही ज्ञानी के होते हैं)

(चाल : 1. आत्मशक्ति...2. क्या मिलिए...)

अस्तव्यस्त व संत्रस्त जीवन में, मूढ (मोही, कुज्ञानी) न जाना तू स्वयं को
पढ़ाई बड़ाई व चमड़ी दमड़ी में, पढ़ न पाया तू स्वयं को।।
लौकिक पढ़ाई हेतु दबाव प्रलोभन, प्रतिस्पर्द्धा व अन्धानुकरण।
जिससे मेरा सरल सहज जीवन और भी हो गया मूढ़ जीवन।। (1)
जैसे तैसे पढ़ाई अनन्तर नौकरी हेतु किया तू षडयंत्र।
नौकर बनकर तू बना नौकरशाह फैशन व्यसन में मदमस्त।।
आलस प्रमाद कामचोरी दगाबाज घोटाला से ले भ्रष्टाचार।
अन्याय अत्याचार पापाचार शोषण से जीवन किया बदत्तर।। (2)

शादी करके किया स्वयं को बरबाद भोगविलास में मस्त हुआ।
माता-पिता भाई बन्धु से अलग होकर गृहस्थ कर्त्तव्य भी नहीं पाला।।
दाम्पत्य जीवन भी न सुखमय हुआ परस्पर वाद-विवाद में।
शंका-कुशंका व वर्चस्व के कारण सन्ताप पाया तू तलाक में।। (3)
व्यापारी भी बना तो लोभ के कारण मिलावट व जमाखोरी किया।
मापतौल में घोटाला करके शोषण के साथ-साथ रोग व मृत्यु दिया।।
ऐसा ही अन्य जीविका हेतु जो कुछ शिल्प-कृषि-राजनीति किया।
उसमें भी सुख शान्ति संतुष्टी न पाया आत्मकल्याण तो दूर रहा।।(4)
साधु भी बना तो ज्ञान-वैराग्य बिन ढोंग-पाखण्ड आडम्बर किया।
ख्यातिपूजालाभप्रसिद्धिवर्चस्व हेतु लन्द-फन्द व द्वन्द्व भी किया।।
संकीर्णपंथ-मत व परम्परा हेतु आग्रही दुराग्रही क्रूर कठोर बना।
अन्य को ठगने हेतु गोमुखव्याघ्र या बगुलाभक्त बना।। (5)
ऐसा ही रे मूढ़! तेरा जीवन संकल्प-विकल्प-संक्लेश में गया।
किसी भी आयु में किसी क्षेत्र में धूर्त चार्वाक सम रहा।।
ऐसा ही तेरे अनन्त भव चौरासीलक्षयोनियों में कष्टमय रहे।
आत्मविश्वासज्ञानचारित्र शून्य हो पंचपरिवर्तन में दुःख सहे।। (6)
अभी तू अनन्त अक्षय सुख हेतु आत्मविश्वासज्ञानचारित्र धरो।
निस्पृह निराडम्बर साम्य शान्त हो आत्मविशुद्धि से मोक्ष वरो।।
अनन्त भवों में जो किया है काम उसके अनन्तवा-भाग मोक्ष हेतु करो।
जिससे मिलेगा अनन्तसुख आप्तवचन से 'कनक' तुझे आह्वान करे।। (7)
सुदृष्टि बिना जीव ''भद्र'' भी होते जो जैनधर्म के अविरोधी।
आत्मश्रद्धान बिना भी जो जैनधर्म अन्यधर्म में माध्यस्थभावी।।
सम्यक्त्व प्राप्ति के पूर्व जीव होते हैं भद्रमिथ्यादृष्टि।
सम्यक्त्व प्राप्ति से होते सुदृष्टि अभव्य न बनते सम्यग्दृष्टि।। (8)
सम्यग्दृष्टि ही जब व्रती बनते पंचमगुणस्थानवर्ती होते श्रावक।
श्रद्धा सहित विवेकयुक्त व प्रथम प्रतिमा से ग्यारह प्रतिमा तक।। (9)

(ग.पु.कॉ, दि-9-2-2020, रात्रि-8:10)

8 वीं प्रतिमा धारी आदि श्रावक भी आरंभ-परिग्रह-अनुमति त्यागी होते वे मुनि बनने की भावना भाते तो साधु आंरभादि त्यागी क्यों नहीं होगे!?

पडिक्कमामि भंते! आरंभविरदिपडिमाए:-कसायवसंगएण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) आरम्भो, मणसा, वचसा, काएण, कदोवा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।। (8)

हे भगवन्! आरंभत्याग नामक आठवीं प्रतिमा के व्रत पालन में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। आरंभत्याग प्रतिमा में कषाय के वश से मेरे द्वारा जो भी आरंभ दिन या रात्रि में मन-वचन-काय या कृत-कारित-अनुमोदना से हुआ हो तो उस आरंभत्याग व्रत संबंधी मेरे पाप मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भंते! परिग्गहविरदिपडिमाए:-वत्थमेत्त परिग्गहादो अवरिम्म परिग्गहे मुच्छापरिणामे जो मे देवसियो (राइयो) अइचारो, अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।। (9) (श्रावक प्रतिक्रमण)

हे भगवन्! परिग्रहत्याग प्रतिमा के पालन में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। परिग्रहत्याग प्रतिमा व्रत में वस्त्रमात्र परिग्रह से भिन्न दूसरे परिग्रह में मूर्च्छापरिणाम होने से मेरे द्वारा जो भी दिन या रात्रि में अतिचार-अनाचार मन से, वचन से, काय से, कृत-कारित-अनुमोदना से हुआ हो तो व्रत संबंधी मेरा दोष मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भंते! अणुमणविरदिपडिमाए जं किं पि अणुमणणं पुट्ठापुट्ठेण कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।। (10)

हे भगवन्! अनुमतिविरत दसवीं प्रतिमा के पालन में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। अनुमतित्याग प्रतिमा में जो अन्य के द्वारा पूछने या नहीं पूछने पर भी जो कुछ भी मेरे द्वारा अनुमति दी गई हो, दिलाई गई हो या अनुमोदना की

गई हो तो मेरे सभी पाप मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते! उद्दिट्ठविरदिपडिमाए उद्दिट्ठदोस-बहुलं अहोरदियं आहारयं वा आहारावियं वा आहारिज्जंतं वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।। (11)

हे भगवन्! मैं उद्दिष्टत्याग ग्यारहवीं प्रतिमा के पालन में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। उद्दिष्टत्याग प्रतिमा व्रत में उद्दिष्ट दोष से युक्त आहार को मैंने किया हो, उद्दिष्ट दोष से दूषित आहार दूसरों को कराया हो या उद्दिष्ट दोष से दूषित आहार को करने की अनुमति दी हो तो उस व्रत संबंधी मेरा पाप मिथ्या हो।

निर्ग्रन्थ पद की वांछा

इच्छामि भंते! इमं णिग्गंथं पवयणं अणुत्तरं केवलियं, पडिपुण्णं, णेगाइयं, सामाइयं, संसुद्धं, सल्लघत्ताणं, सिद्धिमग्गं, सेढिमग्गं, खंतिमग्गं, पमुत्तिमग्गं, मोक्खमग्गं, पमोक्खमग्गं, णिज्जाणमग्गं, णिव्वाणमग्गं, सव्वदुःखपरिहाणिमग्गं, सुचरियपरि-णिव्वाणमग्गं, अवितहं, अविसंति-पवयणं, उत्तमं तं सद्दहामि, तं पत्तियामि, तं रोचेमि, तं फासेमि, इदोत्तर अण्णं णत्थि, ण भूदं, ण भविस्सदि, णाणेण वा, दंसणेण वा, चरित्तेण वा, सुत्तेण वा, इदो जीवा सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परि-णिव्वाण-यंति, सव्व-दुक्खाण-मंतकरेंति, पडिवियाणंति, समणोमि, संजदोमि, उवरदोमि, उवसंतोमि, उवधि-णियडिमाण-माया मोसमूरण-मिच्छाणाण-मिच्छा-दंसण-मिच्छाचरित्तं च पडिविरदोमि, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि, जं जिणवरेहिं पण्णत्तो, इत्थ मे जो कोई (राइओ) देवसिओ अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

हे भगवन्! इस निर्ग्रन्थ लिंग की मैं इच्छा करता हूँ। यह निर्ग्रन्थ लिंग मोक्षप्राप्ति का उपाय साक्षात् कारण है। यह अनुत्तर है अर्थात् इस निर्ग्रंथ लिंग से भिन्न दूसरा कोई उत्कृष्ट मोक्षमार्ग नहीं है। केवली संबंधी अर्थात् केवली कथित है। सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करने में समर्थ है नैकायिक अर्थात् रत्नत्रय के निकाय से संबंध रखने वाला है, सामायिक रूप है, परम उदासीनता रूप तथा सर्वसावद्य

योग का अभाव होने से यह ही सामायिक है। शुद्ध है। माया-मिथ्या-निदान शल्यों से दुःखी जीवों के शल्य का नाश करने वाला है। सिद्धि का मार्ग है, श्रेणी का मार्ग है, शान्ति और क्षमा का मार्ग है, उत्कृष्ट मार्ग है, मोक्ष का मार्ग, अरहंत सिद्ध अवस्था की प्राप्ति का उपाय है, चतुर्गति भ्रमण के अभाव का मार्ग है निर्वाण का मार्ग है, सर्व दुःखों के नाश का मार्ग है, सुचारित्र के द्वारा निर्वाण-प्राप्ति का मार्ग है, निर्विवाद रूप से निर्ग्रंथ लिंग से मुक्ति होती है, मोक्षार्थी इसी लिंग का आश्रय लेते हैं यह लिंग सर्वज्ञप्रणीत है उस उस उत्तम लिंग की मैं श्रद्धा करता हूँ, रुचि करता हूँ, उसी को प्राप्त होता हूँ। इससे भिन्न कोई मोक्ष का हेतु नहीं है, न भूत था और न भविष्य में होगा। ज्ञान दर्शन-चारित्र व श्रुत का ज्ञापक होने से इस निर्ग्रन्थ लिंग से जीव सिद्ध अवस्था को प्राप्त करते हैं, केवलज्ञान को प्राप्त कर मुक्त हो, कर्मों से रहित होते हैं। कृतकृत्य हो जाते हैं, सब दुःखों का अन्त करते हैं। निर्ग्रंथ लिंग के द्वारा ही समस्त पदार्थों को जानते हैं। 'मैं श्रमण होता हूँ, संयत होता हूँ, विषय भोगों से उपरत होता हूँ, उपशांत होता हूँ। परिग्रह, निकृति/वंचना मान, माया, कुटिलता, असत्य भाषण, मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन, मिथ्याचारित्र इनसे विरत होता हूँ। सम्यग्ज्ञान, दर्शन चारित्र में श्रद्धा करता हूँ। जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहे गये जो तत्त्व है उन्हीं की मैं श्रद्धा करता हूँ इस प्रकार मेरे द्वारा दिन-रात्रि की क्रियाओं में जो कोई अतिचार-अनाचार हुए तो तत्संबंधी मेरे समस्त पाप मिथ्या हो।

इच्छामि भंते! पडिकमणाइचारमालोचेउं जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, अणाचारो, अभोगो, अणाभोगे, काइओ, वाइओ, माणसिओ, दुच्चरिओ, दुच्चारिओ, दुब्भासिओ, दुप्परिणामिओ, णाणे, दंसणे, चरित्ते, सुत्ते, समाइए, एयारसण्हं-पडिमाणं विराहणाए, अट्ठ-विहस्स कम्मस्स-णिग्घादणाए, अण्णहा उस्सासिदेण वा, णिस्सासिदेण वा, उम्मिस्सिदेण वा, णिम्मिस्सिदेण वा, खासिदेण वा, छिंकिदेण वा, जंभाइदेण वा, सुहुमेहिं-अंग-चलाचलेहिं, दिट्ठिचलाचलेहिं, एदेहिं सव्वेहिं, अ-समाहिं-पत्तेहिं, आयरेहिं, जाव अरंहताणं, भयवंताणं, पुज्जवासं करेमि, ताव कायं पाव कम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण में लगे अतिचारों का आलोचना करने की इच्छा

करता हूँ। मेरे द्वारा दिन या रात्रि की क्रियाओं में अतिचार-अनाचार आभोग-अनोभोग कायिक, वाचिक, मानसिक दुश्चिंतन हुआ हो, दुश्चिरित्र हुआ हो। दुर्वचनों का उच्चारण हुआ हो, खोटे परिणाम हुए हों, ज्ञान में, दर्शन में, चारित्र में, सूत्र में, सामायिक में, ग्यारह प्रतिमाओं की विराधना की हो, आठ कर्मों का नाश करने वाली क्रियाओं के प्रयत्न करने में, श्वासोच्छ्वास में नेत्रों की टमकार से, खाँसने से, छींकने से, जंभाई लेने से, सूक्ष्म अंगो के हलन-चलन करने से, दृष्टि को चलायमान करने से इत्यादि अशुभ क्रियाओं से सूत्रपाठ आदि क्रियाओं का विस्मरण किया हो, अन्यथा प्ररूपणा की हो, असमाधि को प्राप्त कराने वाली क्रियाओं के आचरण से जो दोष लगा हो तो मैं इस प्रतिक्रमण सम्बन्धी कायोत्सर्ग करता हूँ और जब तक अरहंत भगवन्तों की पर्य्युपासना मैं करता हूँ तब तक पाप कर्म रूप दुश्चरित्र का त्याग करता हूँ।

दंसण वय सामाइय, पोसह सचित्त राइभत्तेय।
बंभारंभ परिग्गह, अणुमणमुद्दिट्ठदेस विरदेदे।। (1)

एयासु जधा कहिद पडिमासु पमादाइ कयाइचार सोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं। अरहंत सिद्ध आयरिय उवज्झाय सव्वसाहुसक्खियं सम्मत्तपुव्वगं, सुव्वदं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु, मे भवदु, मे भवदु।

धन-वाहन से दूर रहते हुए

ब्रह्मचारी एक सीढ़ी चढ़े या एक नीचे उतरे

-शरद जैन

आज ऐसे दस-बीस नहीं, सैकड़ों प्रतिमाधारी ब्रह्मचारी हैं, जो अनेक वर्षों से इसी पायदान पर हैं, उनमें एक सीढ़ी ऊपर चढ़कर मुनि बनने की मानो ललक नहीं, पर साथ ही पूजा-विधान, प्रतिष्ठाचार्य बनकर धन अर्जित आवागमन के लिए वाहनों का उपयोग उनकी दैनिक चर्या का अभिन्न अंग बन गया। ऐसे कुछ ब्रह्मचारी अलग विचरण कर रहे हैं तो कई आज बड़े से बड़े आचार्यों के पास मानो उस संघ के हिसाब-किताब कोषाध्यक्ष बने हुए हैं। अगर मैं श्रेष्ठ संतो या प्रमुख विद्वानों का नाम लेकर कहूं तो इनमें वर्तमान के श्रेष्ठतम आचार्य तक के

पास ब्रह्मचारी करोड़ों की सम्पत्ति बना चुक हैं। अपनी श्रेष्ठतम चर्या के साथ-साथ संघ के उत्तम चर्या के बावजूद उन संघों के ब्रह्मचारी गाड़ी से लेकर हवाई जहाज तक यात्रा करने से नहीं चूकते। अगर सीमा का उल्लंघन करूं तो क्षुल्लक पद पर भी कई वर्षों से आसीन, अपने पद की मर्यादाओं को तार-तार करते देखें जाते हैं, गाड़ी-हवाईजहाज से यात्राएं तो उनकी आदत में शुमार हो गई हैं। इस बिगड़ती दशा और दिशा के लिए क्या समाज जिम्मेदार है या वे स्वयं? अगर मैं अपनी सीमाओं की बंदिशों से एक बार के लिए अपने को मुक्त समझूं तो इसके लिए सबसे ज्यादा दोषी उन संघों के नेतृत्व करने वाले आचार्य हैं, और वे आचार्य जिन्होंने इन्हें व्रत अंगीकार करायें। आगम इस बात का स्पष्ट निषेध करता है कि प्रतिमाधारी ब्रह्मचारी सम्मान धनराशि लेकर विधान पूजा आदि नहीं करा सकता है। ऐसे संघों के नेतृत्व करने वाले आचार्यों का यह कर्त्तव्य बनता है कि वे उनकी चर्या को ध्यान में रखते हुए एक सीढ़ी ऊपर चढ़ाकर मुनि पद पर लाये या फिर गृहस्थी में रहकर विधान पूजा वाहन का प्रयोग करने की छूट दे दें परन्तु इस पद पर रहते हुए उनकी गरिमा को खंडित न होने दे।

इस लौकिक शिक्षा के काल में कोई बच्चा एक ही कक्षा में दो-तीन वर्ष रह जाये तो स्कूल में रहने नहीं दिया जाता। हर स्कूल बदनामी का डर रहता है।

आज ऐसे सैकड़ों ब्रह्मचारी हैं जो किसी न किसी संघ से जुड़े हुए हैं। पर उन संघ संचालकों को ऐसी गतिविधियां भी आगम के विरुद्ध चलाने पर ठेस न लगती हो, यह पंचम काल के 2500 वर्ष बाद का आश्चर्य ही कहना होगा। एक तरफ मुनियों में फटाफट आचार्य बनने की होड़ लगी है, कुछ संघ चुनाव में टिकट की तरह आचार्य पद तक बांटने में कोई सीमा नहीं रखते, वहीं दूसरी तरफ दादा गुरु आचार्यश्री ज्ञानसागरजी से आचार्यश्री विद्यासागरजी ने वृद्धावस्था देखकर अपना पद छोड़ने की जो परंपरा वर्तमान में जीवन्त की थी, उसको भी अपने हित में कोई निभाना मानों नहीं चाह रहा, ऐसा पिछले एक दशक के देवलोक गमन के आकड़े स्पष्ट करते हैं। श्रावक बिगड़ा हुआ है। यह सत्य है, पर उसे साधने, सुधारने के लिए उनके ऊपर वाले को सही होना जरूरी है। श्रावकगण पितातुल्य

श्रमण संघ के बेदाग होने पर भी न सुधरे हम कदापि नहीं मानते। जहाँ-जहाँ श्रमणचर्या अच्छी है, उनसे जो-जो जुड़ता है, उनको सुधरते देर नहीं लगती। इसके लिए वर्तमान का इतिहास साक्षी है। **सुधार करना ही होगा, वरना श्रेष्ठतम कहे जाने वाले इस धर्म पर ऊँगलियां उठाने में देर नहीं लगेगी। (दिशाबोध अक्टू-2019)**

आचार्य श्री विद्यासागरजी से मिलने पहुँचे भागवत

इंदौर. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ प्रमुख मोहन भागवत और सरकार्यवाह भैय्याजी जोशी मंगलवार को आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज से मिलने पहुंचे। लवकुश विद्या विहार स्कूल में आचार्यश्री से मुलाकात हुई। करीब 20 मिनट चली मुलाकात में भागवत, जोशी और आचार्यश्री में कई विषयों पर बात हुई। इस मौके पर उदय नगर स्थित प्रतिभा स्थली पर चल रहे शिक्षा के साथ संस्कार प्रोजेक्ट तथा हथकरघा के संबंध में जानकारी दी गई। **ब्रह्मचारी सुनील भैया ने संघ पदाधिकारियों को हथकरघा से बने वस्त्र दिखाए। (रा.पत्रिका 8-1-2020)**

तीसरी खबर कोलकाता महानगर की है। नगर के सुप्रसिद्ध पंचसितारा होटल 'ताल बंगाल' में दिगम्बर जैन समाज के सर्वाधिक पवित्र दशलक्षण पर्व के दौरान 11 और 12 सितम्बर (अनंत चतुर्दशी के दिन) परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज की पावन प्रेरणा से बीना बाराह तीर्थ पर संचालित हस्तशिल्प कारखाने के मुख्य निर्देशक ब्रह्मचारी उत्कर्ष भैयाजी की उपस्थिति में हैंडलूम कपड़ों के प्रदर्शनी का आयोजन किया गया है।

गौर करने योग्य मुख्य बातें-मांसाहार होटल, अनंत चतुर्दशी का पावन दिन उच्च पदस्थ ब्रह्मचारी भैयाजी की उपस्थिति और वस्त्र विक्रय का व्यापार-वाह रे, हमारे जैन समाज? देखिए चौरंगी परिवार ग्रुप में दिनांक 7 सितम्बर 2019 की प्रसारित व्हाट्सएप पोस्ट-

"In this exhibition a stall of handloom clothes blessed by Acharya Vidhyasagarji Maharaj will also be installed. For this Brahmachari Shri Utkarsh Bhaiya ji (Chief Director of Shantidhara

and Handloom Factory operating at Binabaraha ji Tirtha area) is visiting himself. It is a humble request to all of you that please come to visit and please encourage the Brahmacharis engaged in the best work like handloom."

विचारणीय बिन्दु है कि जैन समाज स्वयम् अपने पर्वराज पर्यूषण/दशलक्षण पर्व को कितना समझ पाया है? पूरे देश की जैन समाज सरकार पर दबाव बनाने में लग जाती है कि हमारे इतने पावन पर्व पर कत्लखाने/बूचड़खाने बंद रखे जायें, मांस की दुकाने बंद रखी जाय, परंतु समाज स्वयम् अपने लोभ-कषाय पर अंकुश नहीं लगा पाती है। अर्थात् अनंत चतुर्दशी के पावन पवित्र दिन भी जैन समाज के व्यक्ति एक दिन के लिए भी व्यवसाय बंद नहीं पाते, यह कैसी विडम्बना है? **-दिशाबोध-अक्टूबर-2019**

लौकिक जनों के बाह्य धर्म निष्फल

(गृहस्थ-श्रावक से ले साधु भी होते हैं लौकिक जन)

(अधार्मिक-बाह्य ढोंगी-लौकिक स्वार्थी होते हैं लौकिक जन)

(चालः-1.वैष्णव जन तो...2.क्या मिलिए...)

लौकिक जन तो तेने कहिए जो राग द्वेष मोह सहित है।
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि युक्त गृहस्थ हो या संन्यासी है।।
जो न जानते आत्मस्वरूप मैं हूँ ''सच्चिदानन्दमय'' है।
शरीर को ही 'मैं' मानते हैं धन जनादि को माने 'मेरा' है।। (1)
राग द्वेष मोह काम क्रोध मद माया मत्सर से सहित है।
ईर्ष्या तृष्णा घृणा निन्दा प्रपञ्च वैर विरोध सहित है।।
असि मसि कृषि वाणिज्य शिल्प सेवा करते या करवाते हैं।
हिंसा झूठ चोरी कुशील परिग्रह जो प्रत्यक्ष या परोक्ष करते हैं।। (2)
मन्त्र यन्त्र तन्त्र औषधि ज्योतिष से जो धनार्जनादि करते हैं।
धन जन संग्रह भौतिक निर्माण जो नवकोटि से करते हैं।।
नट नटी या बहुरूपिया सम जो लोकानुरञ्जन आदि करते हैं।
इस हेतु लौकिक या धार्मिक ज्ञानार्जन करते या करवाते हैं।। (3)

गृहस्थ से ले यथायोग्य व्रती श्रावक जो उक्त कामों को करते हैं।
उन्हें तो कम पापबन्ध होता, साधुओं को पाप अधिक बन्धता है।।
साधु तो पहिले प्रतिज्ञापूर्वक उक्त कामों का त्याग करते हैं।
पुनः उन कामों को करने से प्रतिज्ञा भंग का भी पाप बान्धते हैं।। (4)
साधु का परम लक्ष्य होता है आत्महित सहित परहित भी।
आत्महित पहिले करणीय अनन्तर परहित करणीय भी।
जो दीपक पहिले प्रकाशित होता उससे प्रकाशित पर भी।
बुझा हुआ दीपक स्व प्रकाशी बिना न बन सके पर प्रकाशी भी।। (5)
आत्मविशुद्धि व ज्ञान-वैराग्य बिन बाह्य साधु वेश धारण से।
ख्याति पूजा लाभ व प्रसिद्धि वर्चस्व हेतु उक्त काम करते मोह से।।
ऐसे साधु होते स्व-पर घातक तथाहि इह पर लोक घातक भी।
वे होते अतो भ्रष्ट व ततो भ्रष्ट वे हैं श्रमणाभास-पापश्रमण भी।। (6)
ऐसे साधु जो एक लाख करोड़ भवों में जो कर्मनाश करते हैं।
उसे एक श्वास मात्र से नाश करते जो समता से ध्यान-अध्ययन करते हैं।
आत्मविशुद्धि समता शान्ति निस्पृहता बिन कठोर तप त्याग से।
मोक्ष न मिले करोड़ों भवों में किन्तु मोक्ष मिले आत्मविशुद्धि से।। (7)
ऐसे सरल व सहज उपाय निस्पृह वीतरागी श्रमण करते।
किन्तु रागी मोही लौकिक जन साधु बाह्य से ढोंग पाखण्ड करते।।
चतुर्थ काल में अपवाद में होता था अभी होता है प्रचुर।
इससे बचने हेतु 'सूरी कनक' प्रयत्नरत नवधा प्रकार।। (8)

इतने महिला मंडल आखिर कर क्या रहे हैं

हमारे समाज में तमाम महिला संगठन/मंडल है। एक ही शैली में चार-चार महिला मंडल बन गए हैं। कुछ महत्वाकांक्षी महिलाओं को जब अध्यक्ष-मंत्री पद चाहने की लालसा जागती है तो वह अपना अलग महिला मंडल बना लेती हैं ताकि उनका नाम भी चले और उनकी पूछ भी हो। लेकिन हमारे इतने महिला मंडल आखिर कर क्या रहे हैं? वह सिर्फ पर्व त्यौहार पर नाच वाले गेम और खाने-पीने के अलावा और क्या करते है? इससे समाज का क्या भला हो रहा है?

अगर सिर्फ निजी मनोरंजन और समय व्यतीत करने के लिए ही कार्यक्रम करने हैं तो फिर वह रविवार को कहीं इकट्ठी हो जाया करें और पार्टी कर लिया करें। वर्ना इन महिला मंडलों ने कभी सोचा है कि समाज की समस्याओं पर मंथन करें, अपने बच्चों को कैसे संस्कार दें ताकि उन्हें व्यसनों से दूर रखा जा सके। आज घर-घर में लड़के-लड़कियाँ लव मैरिज करने लगे हैं। इनमें कई केस तो ऐसे होते हैं जिसमें परिवार के साथ-साथ पूरे समाज की आँखे झुक जाती है, लेकिन कभी किसी महिला मंडल ने इन मामलों में जिक्र नहीं किया। जबकि इस मामले में घर की महिला की प्रमुख जिम्मेदारी होती है। कभी किसी महिला मंडल ने इस बात पर विचार नहीं किया कि अपने विवाह व अन्य कार्यक्रम में फिजूल खर्ची को कैसे रोका जाए? हर सामाजिक व धार्मिक कार्यक्रम में आडंबर और हावी हो रहे हैं, लेकिन महिला मंडलों का इस पर ध्यान नहीं है। अपितु वे उल्टे इन आडम्बरों को प्रोत्साहित करते दिखती है। महिला मंडल चाहे तो विवाह व अन्य कार्यक्रमों में पनप रही नई नई परंपराओं को रोक सकती है। रात्रि में होने वाले ऐसे कार्यक्रम को हतोत्साहित कर सकती हैं। कहने को तो मंदिरों में अब हर रोज महिला मंडलों द्वारा कई कार्यक्रम कराए जाते हैं, कभी भक्तामर पाठ, तो कभी कुछ और। लेकिन यह कार्यक्रम धार्मिक कम, आडंबर ज्यादा प्रतीत होते हैं। इन कार्यक्रमों में गिफ्ट बांटने का नया प्रचलन चल रहा है और कोई गरीब भक्तामर पाठ या अन्य पाठ कराना चाहे तो पहले उस गिफ्ट बांटने का इंतजाम करना पड़ेगा। तब वह इस बारे में सोच सकेगा। महिला मंडल क्यों नहीं ऐसी कुप्रथा के ऊपर रोक लगाने का प्रयास करती हैं। सिर्फ मनोंरजन और अखबार में फोटो छपवाने के लिए कार्यक्रम करना बिल्कुल सही नहीं है। तो कई को तो जबरदस्ती सदस्या बना लिया जाता है और जब अध्यक्ष/मंत्री कार्यक्रम तैयार कर लेते हैं तब उन्हें बुलावा भेज दिया जाता है। सदस्यों की राय ही कहाँ ली जाती है। पूरे संगठन में 1-2 तेजतर्रार राजनीतिक टाइप महिलाओं की चलती है और वे ही मंडल को अपनी इच्छा से चलाती है। ज्यादातर महिला मंडलों का यही हाल है।

साभार-स्वतंत्र जैन चिन्तन
दिशाबोधः अक्टूबर-2019

दुनिया में एक भी देश नहीं, जहां लैंगिक समानता हो

संयुक्त राष्ट्र ने हाल ही 'जेंडर सोशल नॉर्म्स' इंडेक्स पर रिपोर्ट जारी की। इसमें दुनिया के 75 देशों और क्षेत्रों में शिक्षा और राजनीति समेत विविध क्षेत्रों में लैंगिक भेदभाव का विश्लेषण किया गया।

रिपोर्ट में खुलासा हुआ कि दुनिया में कोई भी देश ऐसा नहीं है, जहां लैंगिक समानता हो। रिपोर्ट के मुताबिक 86 फीसदी महिलाएं और 90 फीसदी पुरुष, महिलाओं के प्रति किसी न किसी तरह का भेदभाव (2018) बरतते हैं।

भार में (2014-15) 97 फीसदी महिलाएं और 99 फीसदी पुरुष, महिलाओं से भेदभाव करते हैं। पांच सालों में महिला राष्ट्रध्यक्षों की संख्या में महज 10 रह गई है, जबकि 2014 में यह संख्या 25 थी।

विश्व राजनीति में लैंगिक अंतर

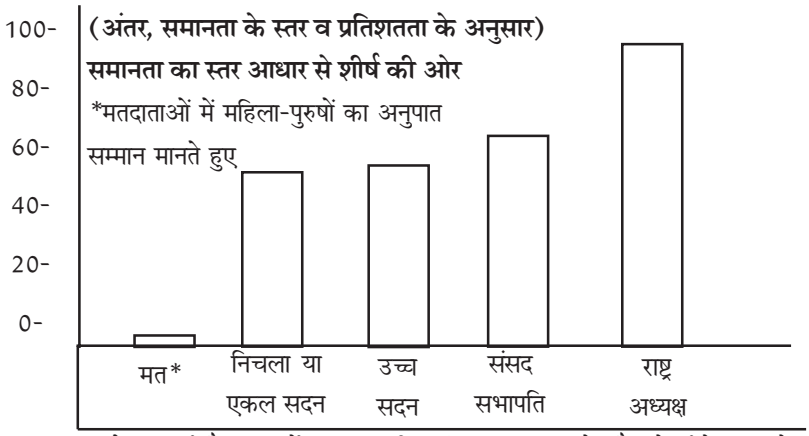

स्रोतः वर्ल्ड वैल्यूज सर्वे, अंतरसंसदीय यूनियन, आइएलओ और फोर्ब्स के आंकड़ों पर आधारित मानव विकास रिपोर्ट ऑफिस की गणनाएँ

राजनीति

संकेतकः 1.पुरुष, महिलाओं से बेहतर राजनेता, 2. महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार,

शैक्षणिक

संकेतकः 3. यूनिवर्सिटी महिलाओं की तुलना में पुरुषों के लिए अधिक अहम।

आर्थिक

संकेतकः 4. रोजगार पर पुरुष का हक महिलाओं से अधिक होना चाहिए, 5.पुरुष, महिलाओं से बेहतर व्यावसायिक समझ वाले होते हैं

शारीरिक संपूर्णता

संकेतकः 6.पत्नी से हिंसा के लिए हकदार 7. प्रजनन संबंधी अधिकारों के लिए हकदार।

लैंगिक समानता और महिला सशक्तीकरण को लेकर भेदभाव

	महिलाएं	पुरुष
भेदभाव नहीं	13.9	9.4
एक संकेतक	23.7	17.6
दो संकेतक	20.3	17.2
तीन संकेतक	15.7	17.1
चार संकेतक	13.9	17.8
पाँच संकेतक	9.0	13.5
छह संकेतक	2.9	6.3
सभी सात	0.4	1.1

नोटः वर्ल्ड वैल्यूज सर्वे के वेव 5, 6 के आंकड़ों के साथ 75 देशों व क्षेत्रों पर आधारित। 81 प्रतिशत वैश्विक आबादी का प्रतिनिधित्व शामिल।

स्त्रोतः मुखोपाध्याय, रिवेरा और तापिया (2019) वर्ल्ड वैल्यूज सर्वे के आंकड़ों पर आधारित।

दुनिया में हर 10 में से 9 लोग महिलाओं के साथ भेदभाव करते हैं, पाकिस्तान में ऐसा करने वाले 99% और भारत में 98%

दुनिया की 80% आबादी वाले 75 देशों के आधार पर रिपोर्ट

लैंगिक समानता के क्षेत्र में सुधार के बावजूद आज भी करीब 90% लोग ऐसे हैं जो महिलाओं के प्रति भेदभाव या पूर्वाग्रह रखते हैं। लोगों ने तो पत्नी की पिटाई तक को जायज बताया है। इनमें महिलाएँ भी हैं। आधे से ज्यादा लोग मानते हैं कि पुरुष श्रेष्ठ राजनेता होते हैं, जबकि 40% के मुताबिक पुरुष बेहतर कोराबारी एग्जीक्यूटिव होते हैं, इसलिए तब अर्थव्यवस्था धीमी हो तो इस तरह के काम या नौकरियाँ पुरुषों को मिलनी चाहिए।

घरेलु कामों की सैलरी मिलती, तो पिछले साल 774 लाख करोड़ कमा लेतीं

ऑक्सफैम के मुताबिक महिलाओं की बच्चों की देखभाल, खाना पकाने जैसे घरेलू कामों के लिए न्यूनतम वेतन मिलता है, तो वे पिछले साल 774 लाख करोड़ रुपए कमा लेतीं। यह फॉर्च्यून-500 में शामिल दुनिया की सबसे बड़ी 50 कंपनियों की कमाई के बराबर है। इनमें एपल, वॉलमार्ट, गूगल जैसी कंपनियां भी शामिल है।

इन देशों में सबसे ज्यादा भेदभाव

पाकिस्तान	**99.81%**
कतर	**99.33%**
नाइजीरिया	**99.33%**
मलेशिया	**98.54%**
ईरान	**98.54%**
भारत	**98.28%**

30 देशों में महिलाओं के प्रति सोच बदली है। सबसे कम भेदभाव स्वीडन (30%) नीदरलैंड्स (39%) में होता है।

यह खुलासा संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) की अपनी तरह के पहले जेंडर सोशल नॉर्म्स इंडेक्स में हुआ है। इसे दुनिया की 80% आबादी वाले 75 देशों में अध्ययन के आधार पर बनाया गया है। हालांकि 30 देशों में महिलाओं के प्रति सोच सूधरी है। यूएन के मानव विकास के प्रमुख पैड्रो कॉन्सिकाओ ने कहा-स्कूलो में लड़कियों की संख्या लड़कों के बराबर हो गई। 1990 के बाद से मातृत्व से जुड़ी बीमारियों से मौतों की संख्या भी 45% घटी है। इसके बावजूद लैंगिक असमानता बनी हुई है, खास तौर पर ऐसे क्षेत्रों में जहां ताकत या पावर से जुड़ें पदों के चुनौती मिलती हो। एक जैसे काम के लिए उन्हें पुरुषों से कम वेतन मिलता है। वरिष्ठ पदों पर पहुंचने के अवसर भी कम मिलते हैं। यूएनडीपी ने कहा है कि पुरुष और महिलाएं एक ही तरह से मतदान करते हैं, मगर दुनिया में सहज 24% संसदीय सीटों पर महिलाएं चुनी गई हैं। 193 में से वे सिर्फ 10 देशों में सत्ता की प्रमुख महिलाएं हैं। पुरुषों की तुलना में वे ज्यादा घंटों तक कामकाज करती है, फिर भी बहुत सा कामकाज ऐसा होता है, जिसका उन्हें कोई मेहनताना भी नहीं मिलता।

90% पुरुष रखते हैं महिलाओं के प्रति पक्षपात की भावना

वाशिंगटन. क्या आप जानते हैं कि दुनिया के 90 प्रतिशत पुरुष महिलाओं के प्रति पक्षपात की भावना रखते हैं। इतना ही नहीं यही भाव महिलाएँ भी महिलाओं के प्रति रखती हैं।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) के 75 देशों में किए अध्ययन में यह बात सामने आई है। दुनिया के 80 फीसदी जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करने वाले देशों में 10 में से 9 लोग नारी शक्ति के प्रति ऐसी सोच रखते हैं। इन 75 देशों के विश्व की लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या रहती है। जेंडर सोशल नॉर्म्स इंडेक्स नामक इस रिपोर्ट के विश्वलेषण में पता चला है कि महिलाओं को समानता हासिल करने के मामले में कई ऐसी बाधाओं का सामना करना पड़ता है जो नजर नहीं आती। अध्ययन के अनुसार आधे लोगों का मानना था कि पुरुष श्रेष्ठ राजनीतिक नेता होते हैं, वहीं 40 प्रतिशत से ज्यादा मानते हैं कि पुरुष अच्छे उद्योगपति या व्यापारी होते हैं। वह यह सुझाव देते हैं कि जब अर्थव्यवस्था

की हालत पस्त हो तो नौकरियां पुरुषों को ही मिलनी चाहिए।

भेदभावपूर्ण मान्यताओं और परम्पराओं को बदलने की आवश्यकता

यूएनडीपी ने एक उदाहरण पेश किया है कि पुरुष और महिलाएं एक ही तरह से मतदान करते हैं, फिर भी दुनिया में केवल 24 प्रतिशत संसदीय सीटों पर महिलाएं चुनी गई हैं। रिपोर्ट कहती हैं कि दुनिया में 193 देशों में से केवल 10 देशों में सरकारों की अध्यक्ष महिलाएं हैं। यूएनडीपी ने सभी सरकारों और संस्थानों से अपील की है कि वे महिलाओं के लिए भेदभावपूर्ण मान्यताओं और परम्पराओं को बदलने के लिए नई नीतियों का लाभ उठाएं और इसके लिए शिक्षा, जागरूकतर का स्तर बढ़ाने का सहारा लिया जाए।

शक्ति वाले मामलों शक्ति की चुनौती ज्यादा

यूएनडीपी के मानव विकास रिपोर्ट कार्यालय के अध्यक्ष पैड्रो कॉन्सीकाओ बताते हैं कि महिलाओं के प्रति लैंगिग भेदभाव बना हुआ है। उन क्षेत्रों में ज्यादा हैं जहां शक्ति से जुड़े संबंधों को चुनौती मिलती है, जबकि महिलाएं हर क्षेत्र में प्रगति कर रही हैं।

वर्षों से संचित पुण्य पर भारी पड़ सकती है हमारी एक भूल

समझे कर्म सिद्धान्त के मर्म को

जैन धर्म-दर्शन का प्राणतत्व उसका कर्म सिद्धान्त है जो कर्त्तावाद को सर्वथा नकारता है। यह सिद्धान्त क्रिया-प्रतिक्रिया पर आश्रित एक सर्वसत्ता सम्पन्न पूर्णतया स्वतंत्र सिद्धान्त है।

बंधुओं, अक्सर होता है कि हमारे आसपास कुछ गलत हो रहा होता है और हम कुछ नहीं कहते, कुछ नहीं करते। हम सोचते हैं कि इस पाप के भागी हम नहीं हैं किन्तु मदद करने या विरोध करने की स्थिति में होते हुए भी कुछ ना करने से हम भी उस पाप के उतने ही भागीदार हो जाते हैं, यही तो कर्म सिद्धान्त की बारीकी है।

हमारे अधर्म का, अकर्मण्यता का एक कृत्य, एक क्षण, सारे जीवन के

संचित पुण्य को नष्ट कर सकता है। एक कवि के शब्दों में-''नहीं पाप में भागी केवल व्याघ्र, जो तटस्थ है समय लिखेगा उनका भी इतिहास।''

इसे हम व्यावहारिक जीवन में इस प्रकार भी समझ सकते हैं कि एक छात्र, जो साल भर खूब मेहनत करता है, खूब पढ़ता है, होशियार भी है, परंतु फाईनल परीक्षा में किसी कारण से असफल हो जाता है तो उसका पूरे एक वर्ष का पुरुषार्थ निष्फल हो जाता है।

यह परीक्षा पूर्व निर्धारति समय पर होती है, हम उसके लिए भरपूर तैयारी करते हैं, परंतु जीवन में तो परीक्षा की घड़ी अनियत होती है, हमें पता भी नहीं चलता, पूर्व सूचना भी नहीं मिलती, तैयारी करने का मौका भी नहीं मिलता और हम असफल हो जाते हैं।

शास्त्रों में इसीलिए हमें हर समय, हर पल सचेत-सावधान-जागरुक-अप्रमत्त बने रहने का उपदेश दिया गया है। कब, किस समय, कृत-कारित-अनुमोदना आदि कर्मों के 108 द्वारों से पता नहीं किस द्वार से कौन-सा कर्मबंध हमारे गतिबंध का कारण बन जायें?

कोलकाता महानगरी में हाल ही में **विधान 513** में सैकड़ों मण्डलों के माध्यम से सिद्धों की महाअर्चना का भव्यातिभव्य ऐतिहासिक आयोजन सम्पन्न हुआ है। समाज को चिन्तन करना चाहिए कि कृत-कारित-अनुमोदना से उसमें हमारी भूमिका कैसी रही? हमारे परिणामों में कितनी विशुद्धि आई? सिद्धचक्र महामण्डल जैसे अति पावन धार्मिक महा-अनुष्ठान में हमने कितनी शूचिता से अपनी भूमिका का निर्वहन किया? इतने पवित्र विधान में क्या बिना संकल्पित हुए भागीदारी उचित है? प्रश्न अनेक हैं, कहीं हमने इस पवित्र धार्मिक अनुष्ठान को एक इवेंट का रूप तो नहीं दे दिया, चिंतन अपेक्षित हैं।

विश्व में पहली बार की होड़ा-होड़ी में, कुछ लोगों की अहम् पुष्टि की भावना से सम्पूर्ण समाज को जाने-अनजाने में जिनशासन के अवर्णवाद में हिस्सेदार बनाने के गंभीर दूरगामी परिणाम मूलक ऐसे इवेंट को कर्म सिद्धान्त की कसौटी पर कस कर विचार करना जरूरी है।

धार्मिक अनुष्ठान और सामाजिक समारोह, इन दोनों के बीच

मौलिक फर्क को भी समझना, आज समय की जरूरत है। विद्वतजन इस पर प्रकाश जरूर डालें।

जीव-हिंसा से बचने के लिए जैन संतों द्वारा चार माह एक स्थान पर स्थिर ही वर्षायोग किया जाता है और अगर वहीं वर्षायोग वनस्पतिकाय के अतिसूक्ष्म जीव हिंसा का निमित्त बन जाए तो क्या समझना चाहिए? वर्षायोग अभी-अभी समाप्त हुआ है। बेलगछिया उपवन मंदिर, कोलकाला के पाण्डुक शिला परिसर में कार्तिक के चौथ के कलशाभिषेक के अवसर पर उपवन की वर्तमान की दशा को देखकर हृदय आप्लावित हो गया, मन व्यथित हो गया उसकी दुर्दशा देखकर; क्या कभी हम धर्म के मर्म को, उसके अन्तस्तल को समझ भी पायेंगे या यूं ही थोथी धर्म प्रभावना की डफली ही बाजते रहेंगे!? वनस्पतिकाय के जीवों के प्रति समाज की संवेदना को क्या हो गया है? अब समझ में आ रहा है कि शास्त्रों में स्वाध्याय को परम तप क्यों कहा गया है। इस रहस्य को जाने बिना सम्यक् धर्माचरण हो ही नहीं सकता।

जीवन भर के अच्छे कामों पर हमारी एक छोटी-सी ज्ञात-अज्ञात भूल कैसे भारी पड़ सकती है, इसे समझकर हम सदैव अप्रमत्त बनें रहें, इसी शुभभावनाओं के साथ....

उद्धरण का अभिप्राय मात्र विषय के मर्म को समझना-समझाना है, किसी की भावना को ठेस पहुँचाना नहीं है। क्षमाभाव की प्रार्थना के साथ इतिशुभम्।

-डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा

दिशाबोधः दिसम्बर 2019

मुझे वह प्रभावना-ज्ञान-तप-धर्म आदि नहीं चाहिए!?

(मेरी नकारात्मकता से परे सकारात्मकता (आत्मविशुद्धि)

(आत्महित युक्त परहित करूँ, किन्तु पर के सन्तोष, असन्तोष, भय, आशा, अनुकरण, प्रतिस्पर्द्धा से भी आत्महित न करूँ)

- आचार्य कनकनन्दी

(चालः 1.छू लेने दो... 2.क्या मिलिए...)

वह प्रभावना मुझे नहीं चाहिए, जिस प्रभावना में प्रकृष्ट भाव न हो।
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि वर्चस्व, धन जन मान बोली प्रधान हो।।
वह ज्ञान भी मुझे नहीं चाहिए, जिस ज्ञान से उपरोक्त काम करूँ।
परोपदेशी पण्डित बनकर, पर निन्दा अपमान वैर विभाव करूँ।। (1)...
वह तप त्याग मुझे नहीं चाहिए, जिस तप से उपरोक्त काम करूँ।
समता शान्ति सहिष्णुता घटे, विष त्याग बिन सर्प काँचली त्यागे।।
वह धर्म कर्म मुझे नहीं चाहिए, जिससे उपरोक्त भाव काम हुए।
श्रद्धा प्रज्ञा आचरण विकृत बने, उदारता व्यापकता गुणग्राहीता नशे।। (2)...
वह प्रवचन भी नहीं करना चाहूँ, जिससे उपरोक्त विभाव जन्मे।
सास बहू कथा चुटकुला मनोरञ्जन, भीड़ प्रदर्शन द्वारा लोकानुरञ्जन।।
गुण-गुणी प्रशंसा प्रोत्साहन करूँ, गुण गण कथा दोष वादे च मौनम्।
इससे विपरीत व चापलूस ठगी न करूँ, स्व-पर-विश्व हित हेतु भावना करूँ।। (3)...
मौन एकान्त में आत्म साधना करूँ, मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ धरूँ।
हित मित प्रिय सामान्य कथन करूँ, योग्य शिष्य (भक्त) हेतु योग्य कठोर भी बोलूँ।
मेरे उक्त भाव काम वचन को, (यदि) कोई ग्रहण करे तो धन्यवाद दूँ।
अच्छा माने या कहे तो प्रमोद करूँ, न माने या विरोधी से साम्य धरूँ।। (4)...
सभी को सन्तोष करने का दम्भ (काम) न करूँ, असन्तोषी-विरोधी से साम्यधरूँ।
उनके कारण उक्त भाव व काम, त्याग न करूँ न प्रभावित बनूँ।।
तीर्थंकर बुद्ध ईसा गान्धी टेरेसा, मीराबाई सुकरात लिंकन मण्डेला।
अभी तक सबको सन्तोष करने वाला, न हुआ न है न आगे कभी होगा।। (5)....
आत्महित पहले सच्चा-अच्छा करूँ, परहित भी यथायोग्य सही करूँ।
दोनों में प्राधान्यता से स्वहित करूँ, पर प्रकाशी के पहले स्वप्रकाशी बनूँ।।
अभी तो रागी द्वेषी कामी फैशनी व्यसनी, परिग्रह धारी अन्यायी भ्रष्टचारी।
दया दान पूजा परोपकार हीन भी, करते निस्पृही सन्त की निन्दा-विरोध।। (6)...
संकीर्ण पन्थ मत स्वार्थ हेतु, करते वे अयोग्य साधु की स्तुति।
आत्मविशुद्धि साम्य शान्त सन्त को, न मानते श्रेष्ठ करते तिरस्कार।।
संकीर्ण पन्थ मत जाति तप त्याग को, सम्पर्ण धर्म मानते स्वार्थ सिद्धि को।

न जानते मानते आत्मविशुद्धि धर्म, आत्मविशुद्धि समता होती कठिन।। (7)...
चतुर्थकाल में भी ऐसा ही हुआ, इससे भी अधिक कुकार्य हुआ।
तीर्थंकर मुनि ऋद्धिधारी प्रति हुआ, ''श्रेयांसी बहु विघ्नानि'' घटित हुआ।
अनादिकाल से जीव रागी द्वेषी मोही, एकेन्द्रिय से लेकर मनुष्य तक।
जिससे वे कर्म से परिचालित होकर, करते तदनुकूल भाव-व्यवहार।। (8)...
गाय हंस सम होते गुणग्राही कम, मच्छर जोंक सम गुणद्रोही अधिक।
द्रव्यक्षेत्र काल भाव के अनुसार, सन्तुलित करूँ 'कनक' भाव-व्यवहार।। (9)...

जैन धर्मावलम्बियों की दिशा-दशा एवं आशा

अन्तरंग

व्यक्ति की दशा (मनस्थिति) से ही उसकी दिशा (परिस्थिति, विकास का क्षेत्र) बनती है और व्यक्ति की आशा पूर्ति या निराशा का निर्द्धारण होता है। ''उन्नत मानसयस्य तस्य भाग्यं समुन्नतम्। नोन्नत मानसयस्य तस्य भाग्यमसमुन्नतम्।। As you think so you become, जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि, पुरुषार्थ सिहमुपैति लक्ष्मी। As you sow so you reap, ''जैसे बोयेगें वैसा काटेगें'' आदि महान् सुक्तियाँ हमें प्रेरित करती है कि 'उत्तिष्ठः जाग्रतः प्राप्यः' 'चरैवेति, चरैवेति, चरैवेति' के अनुसार आत्मजागृति से आध्यात्म प्रकाश में अनन्तवीर्य के सामर्थ्य से ''असतो मा सत्गमयः'' ''तमसो मा ज्योतिर्गमयः'' ''मृत्युर्मा अमृतंगमयः'' की उपलब्धि करें। यह प्रत्येक जीव का स्वभाव है, कर्त्तव्य है, अधिकार है, प्राप्य है, श्रेय है, प्रेय है, परम पावन सर्वोच्च लक्ष्य है।

जिसे उपर्युक्त परमसत्य का श्रद्धान, विवेक-ज्ञान हो जाता है उसे विश्व के अन्यान्य समस्त कर्त्तव्य/चारित्र स्वभावों की दशा, दिशा, गुणवत्ता का भी श्रद्धान्, विवेक-ज्ञान हो जाता है। वह दूसरों के क्रिया-काण्ड पंथ-मत, परम्परा, आड़म्बरों से अप्रभावित होकर वह यथार्थ/प्रभावना में संलग्न रहता है।

आ. कनकनन्दी, मुंगाणा

15-8-2003 प्रथम संस्करण

जैन धर्म की प्रभावना हो तो कैसे?

जैन धर्म वस्तु स्वभावात्मक, वैश्विक, सार्वभौम, परम उदारवादी, अनेकान्तात्मक, सर्वजीव हितकारी, सर्वजीव सुखकारी वैज्ञानिक, गणितीय, शाश्वतिक धर्म है। जिस प्रकार सूर्य रश्मि, वायु आदि को जो ग्रहण करे वह उसकी है उसी प्रकार जो जैन धर्म को जाने, माने, पाले उसका जैन धर्म है और जैन धर्म उसके लिए है जो स्व-वैभाविक भाव, दुर्बलताओं को जीते वह ''जैनी'' है। जो समता का आचरण करे वह ''श्रमण है जो श्रद्धावान, विवेकवान, क्रियावान हो वह श्रावक'' है। जैसा कि जो धन से युक्त हो वह ''धनी'' है, जो ज्ञान से युक्त है वह ''ज्ञानी'' है, न कि जो धन की चर्चा करे या धनी होने का दिखावा करते वह धनी है।

क्योंकि धन की चर्चा या दिखावा से धन का जो कार्य-फल है वह नहीं पाया जाता है। उसी प्रकार जैन धर्म की चर्चा या दिखावा से जैन धर्म का जो कार्य/फल है वह नहीं पाया जाता है। जैसा कि, मृगमरीचिका से प्यास दूर करने रूप कार्य/फल नहीं पाया जाता है। इसी प्रकार के संदर्भ/परिपेक्ष दृष्टि-कोण से मैंने जो जैन वाङ्मय का अध्ययन, मनन तथा यथायोग्य अनुसरण, अनुकरण, प्रायोगिकि-करण वर्षों से करते हुए तथा भारत के 13 प्रदेशों का विहार करते हुए अनुभव किया उसके आधार पर उपरोक्त विषय पर कुछ दिशा निर्देश कर रहा हूँ जिससे गुणग्राही स्वदोषों को त्याग करते हुए आत्म प्रभावना के साथ धर्म प्रभावना में भी अपना योगदान दें।

(1) आत्म प्रभावना-धर्म प्रभावना

''आत्म प्रभावनीये रत्नत्रय तेजसा सततमेव'' ''आद हिदं कादवं यदि चेत् पर हिदं कादवं'' ''आद दिवो भवो पर दिवो भवः'' ''न धर्मः धार्मिकैर्बिना'' आदि महान् सूत्रों से हमें यह शिक्षा मिलती है कि आत्म-प्रभावना पूर्वक धर्म-प्रभावना करो, स्वयं प्रकाशमान बनो दूसरों को प्रकाशित करो, स्व-कल्याण के साथ साथ पर कल्याण करो। अन्यथा बूझा हुआ दीपक, जैसे स्व-पर को प्रकाशित नहीं कर सकता है वैसे ही आध्यात्मिक, नैतिक रूपी प्रकाश से रहित व्यक्ति स्व-पर की प्रभावना नहीं कर सकता। प्र+भावना अर्थात् प्रकृष्ठ/श्रेष्ठ/पवित्र भावना ही प्रभावना है न कि केवल भीड़ एकत्रित होना, बाह्य आड़म्बर करना, धर्म के नाम पर धन संग्रह करना,

संकीर्णता, पंथवाद, मतवाद आदि का प्रचार-प्रसार करना है।

अपरिपक्व फल को कृत्रिम उपाय से पकाने पर जैसा कि वह फल सड़-गल जाता है और उसका बीज नवीन वृक्ष को उत्पन्न करके अनेक बीजों को उत्पन्न नहीं कर सकता है वैसे ही अपरिपक्व भावना, अपूर्ण भावना, कमजोर भावना या स्वार्थ भावना से की गई प्रभावना न यथार्थ फल को दे सकती है न नवीन प्रभावना को उत्पन्न कर सकती है। प्रायोगिक रूप से अनुभव में आता है कि सामान्य जैन धर्मावलम्बी से लेकर स्वार्थ भावना, पंथ-मत भावना से युक्त होकर धर्म की प्रभावना करते हैं जिससे यथार्थ प्रभावोत्पादक, क्रान्तिकारी, व्यापक, श्रेष्ठ, परिवर्तनकारी, स्थाई प्रभावना नहीं हो पा रही है।

(2) प्रभावना में कारण गुण वृद्धि न गुण विकृति

ताजा, परिपक्व अंगुर स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है परन्तु सड़ा-गला, कच्चा या अंगुर से बना मद्य स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। वैसे ही अच्छे गुण स्व-पर प्रभावनाकारी है परन्तु गुण-विकृत स्वपर विनाशकारी है। सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र मोक्षमार्ग है तो मिथ्या दर्शन ज्ञान चारित्र संसार मार्ग है, उत्तम क्षमादि दश धर्म आत्म विकास के लिए कारण है तो असम्यक् अयोग्य क्षमा आदि विनाश के लिए कारण है, भाव शुद्धता रूपी अंतरंग तप से युक्त या कारण भूत बाह्य तप संवर, निर्जरा तथा मन-वचन-काय-स्वास्थ्य के लिए कारण भूत है, तो अंतरंग विशुद्धता से रहित बाह्य तप पतन के लिए कारण है, आस्रव, बंध के लिए निमित्त है तथा तन-मन-वचन अस्वास्थ्य के लिए कारक है। वैसा ही अनुसंगिक एकेन्द्रिय जीव वध के बचाने को दिखावा करने वाले भी स्व-गर्भस्थ शीशु-हत्या और हिंसात्मक वस्तु जैसे चर्म, चर्बी, लिपिस्टिक, नेल पॉलिश, क्रीम, टुथपेस्ट जो रक्त आदि से निर्मित वस्तुओं का क्रय-विक्रय, प्रयोग करते हैं। भले कुछ स्वयं मद्य, मांस, चर्म, तम्बाकु आदि का सेवन नहीं करेंगे, परन्तु उत्पादन, विक्रय आदि करके उससे उपार्जित धन से शाकाहार करके स्वयं को अहिंसक, शाकाहारी, निर्व्यसनी सिद्ध करेंगे परन्तु आध्यात्मिक, कर्मसिद्धान्त एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वह मांसाहारी, हिंसक व्यसनी है। ऐसे निषिद्ध तथा अन्याय पूर्ण उपाय से उपार्जित धन को प्रसिद्धि के लिए धार्मिक आयोजन में खर्च करेंगे जिससे साधन एवं भाव की अशुद्धता के कारण धर्म में भी

पवित्रता, श्रेष्ठता, तेजस्विता, प्रगतिशीलता नहीं आ पाती है। धर्म प्रभावना के पहले (1) निःशंकित (2) निकांक्षित (सांसारिक धन, मान आदि की कामना नहीं करना) (3) निर्विचिकित्सा (धार्मिक व्यक्ति से ग्लानी, मात्सर्य, ईर्ष्या नहीं करना) (4) अमूढ़दृष्टि (अंधानुकरण, संकीर्ण नहीं बनना तथा सनम्र सत्याग्राही बनना) (5) उपगूहन, उपबृहण (दूसरों के दोषों को ढ़ांकना एवं स्व गुणों को बढ़ाना) (6) स्थिति करण (धर्म मार्ग से विचलित हुए स्व-पर को पुनः धर्म मार्ग में प्रवृत्त करना) (7) वात्सल्य (धार्मिक जनों से निस्वार्थ प्रेम) अनिवार्य है अर्थात् प्रभावना के लिए उपर्युक्त अंग गुण पहले होना चाहिए, परन्तु प्रायोगिक रूप में अनुभव में आता है कि कुछ व्यक्ति जो स्वयं को धार्मिक में दिखावा करने वाले तथा स्व-प्रसिद्धि या स्वार्थ के लिए धर्म की बाह्य प्रभावना करने वाले उपर्युक्त गुणों से विपरीत स्वार्थी, लालची, ईर्ष्यालु, निन्दक, धार्मिक व्यक्तिओं को धर्म भ्रष्ट करने वाले धूर्त, चालाक, दगाबाज, झूठे, ढ़ोंगी पाये जाते हैं। इसलिए ऐसे व्यक्तिओं से यथार्थ से धर्म की अप्रभावना होती है जैसा कि मृग-मरीचिका से प्यास बुझाने के लिए दौड़ने वाला मृग और भी अधिक श्रम एवं प्यास से पीड़ित होता है।

(3) धर्म के विलोम कारणः-

जैन धर्म के मूलभूत सिद्धान्त (1) अनेकान्त (स्याद्वाद्) (2) अहिंसा (3) सत्य (4) अचौर्य (5) ब्रह्मचर्य (6) अपरिग्रह (7) समता (8) भाव की पवित्रता (9) सेवा, परोपकार, दान (10) सहिष्णुता (11) उदारता (12) वीतरागता (13) सरलता (14) मृदुता (15) क्षमा शीलता (16) सादा जीवन उच्च विचार (17) वैज्ञानिकता (18) प्रगतिशीलता आदि आदि है। इस सब महान् गुणों के लिए बाह्य साधन निमित्त, उपादान, रीति रिवाज, परम्परा, क्रिया-काण्ड आदि की भी आवश्यकता होती है। जैसा कि धातु की मूर्ति निर्माण के लिए सांचा (मुसा) पानी को रखने के लिए बर्तन आदि। परन्तु धातु के बिना केवल सांचा से मूर्ति नहीं बन सकती है पानी के अभाव से केवल बर्तन से पानी का काम नहीं हो सकता, वैसा ही अनेकान्त आदि गुणों के बिना केवल बाह्य साधन से लेकर क्रिया-काण्ड़ को ही महत्व देने पर या साधन आदि को मुख्य करके अनेकान्त आदि को गौण करने पर भी धर्म की प्रभावना नहीं हो सकती है। जैसा कि अच्छा सांचा में

अपर्याप्त धातु से पूर्ण मूर्ति नहीं बन सकती है। इसी प्रकार कुछ गृहस्थ से लेकर साधु-संत तो बाह्य साधन आदि को अति महत्व देते है परन्तु अनेकान्त आदि को कम महत्व देते है, जिससे स्व-पर प्रभावना कम होती है। अनुभव में आता है कि वे एकान्तवादी, हठग्राही, पूर्वग्राही, संकीर्ण, संक्लेशी, परीग्रही, विषमता युक्त, पर क्लेशकारी, ईर्ष्यालु, अनुदार, कुटील, धूर्त, क्रोधी, कठोर, अवैज्ञानिक, रूढिवादी होते हुए भी बाह्य साधन आदि को अधिक महत्व देते हैं और उसमें कुछ थोड़ा बहुत कम बेसी होने पर और भी भाव को अधिक प्रदूषित, संक्लेशित करते हैं। अनुभव में आता है कि अपरिपक्व विद्वान जो ज्ञान चारित्र संयम से रहीत तथा लोभी, स्वार्थी, पंथवादी मतवादी, संकीर्ण है उनसे धर्म की सच्चि प्रभावना नहीं होती है इसी, प्रकार जो साधु गुरु से परिपक्व ज्ञान, चारित्र, संयम, व्यवहारिकता, लोकज्ञता, आधुनिकता आदि का प्रशिक्षण प्राप्त किए बिना ख्याति-पूजा, प्रसिद्धि, चंदा-चिठ्ठा, लोक प्रसिद्धि, संघ निर्माण के लिए अलग से विहार करते हैं उनसे भी सच्चि धर्म प्रभावना नहीं होती है। वर्तमान युग आधुनिक, वैज्ञानिक, उदारवादी, समन्वयकारी, प्रगतिशील युग होने से धर्म की प्रभावना भी उस पद्धति से होनी चाहिए और उपर्युक्त गुणों से युक्त साधु-श्रावकों को भी होना चाहिए।

जो सत्य, अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य का पालन करता है, उसके लिए अन्य नीति या कानून की आवश्यकता नहीं।

मेरी मति सन्मति हो इसकी अनिवार्यता स्वीकारता हूँ, परन्तु दूसरों की सहमति हो ही इसकी अनिवार्यता नहीं।

आ. कनकनन्दीजी गुरुदेव

जैन मतावलम्बियों की गुण विकृति एवं ह्रासोन्मुखता

स्वयं शुद्धश्य मार्गस्य बालाऽशक्त-जनाऽऽश्रयाम्।
वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति तद्वदन्त्युपगुहनम्।। (15 र.श्रा.)

स्वभाव से पवित्र मोक्ष मार्ग के अज्ञानी तथा असमर्थ जनों के निमित्त से उत्पन्न हुई निन्दा को दूर करता है, उसको उपगूहन अंग कहते हैं।

दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः।
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थिति करणमुच्यते।। (16)

सम्यक्दर्शन से अथवा सम्यक्चारित्र से भी ड़िगते हुए जीवों को उन्हें उस विषय में दक्ष एवं धर्म से प्रेम रखने वाले स्त्री-पुरूषों के द्वारा फिर उसी में स्थिर कर देना स्थितिकरण अंग कहा जाता है।

अज्ञानतिमिर व्याप्ति-मपाकृत्य यथायथम्।

जिनशासन महात्म्य-प्रकाशः स्यात्प्रभावना।। (18)

अज्ञान रूपी अंधकार के विस्तार को समुचित उपायों से दूर करके जैन धर्म का महात्म्य प्रकट करना सो प्रभावना अंग है।

जैन धर्म वस्तुस्वभावात्मक, अनेकान्तात्मक, वैज्ञानिक, परम पवित्र, परम उदार, सार्वभौम धर्म होने पर भी उसे परम्परावादि से वंशानुक्रम से या संकीर्ण-स्वार्थ सिद्धि के लिए अथवा किसी प्रकार के संकीर्ण दूषित भाव से पालन, अनुकरण/ढोने वालों से जो विकृति, शिथिलाचार, अतिचार, अनाचार, अतिक्रम, व्यतिक्रम होते हैं उसको यथार्थ ज्ञान से दूर करना उपगूहन अंग, स्थितिकरण अंग, प्रभावना अंग है।

अनादि कालीन कुसंस्कारों के कारण जीवों की अन्तरंग-विशद्धि सरलता से नहीं आ पाती है तथापि वह जिस सामाजिक परिवेश में जन्म लेता है, पलता है, बढता है उसके अनुसार उसको देखा देखी रूप से सामाजिक समायोजना के लिए तथा लोकलाज के कारण कुछ धार्मिक, सांस्कृतिक, सभ्यतागत रीति-रिवाजों को पालन करना पड़ता है। क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज के बिना उसका अस्तित्व, विकास तथा जीवन-यापन सम्भव नहीं है। भाव विशुद्धि के बिना वह धार्मिक एवं सांस्कृतिक कर्त्तव्यों को सम्यक् रूप से नहीं कर पाता है। तथापि वह अवचेतन संतुष्टि के लिए स्वकमियों को सही सिद्ध करता है। इन सब कारणों से ही धर्म में, संस्कृतियों में, परम्पराओं में, रीति-रिवाजों में, गुणों में विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती है और धर्म ह्रासोन्मुखी बनता जाता है। निम्न से उपर्युक्त प्रकरण को विभिन्न दृष्टिकोण से स्पष्टिकरण कर रहा हुँ।

(1) मोक्ष पथ से पंथवाद

समस्त प्रदूषित परिणमों से विमुक्त आत्मा के परिशुद्ध स्वभाव स्वरूप सम्यक् विश्वास, सम्यक्/समतापूर्ण चारित्र या उत्तम क्षमा, मृदुता, नम्रता, सरलता सत्यनिष्ठा,

पवित्रता, संयम, अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अनेकान्त, सहिष्णुता, उदारता, परोपकार, विश्व बन्धुत्व आदि गुण ही मोक्ष मार्ग है, शान्ति का मार्ग है, परन्तु जैन धर्मावलम्बिओं ने स्व-दोष, कषाय, कमिओं के कारण दिगम्बर, श्वेताम्बर, बीस पंथी, तेरा पंथी, मुमुक्षु पंथी आदि रूप में मोक्ष पथ को विकृत करके पंथवाद/मतवाद/सम्प्रदाय बना दिया है। इसी प्रकार संत, ग्रन्थ, संघ, संगठन, सभा, समिति आदि को लेकर और भी अनेक पंथ, मत, फुट, गूट रूप में मोक्ष पथ को खण्ड, विखण्डित, नष्ट, भ्रष्ट कर रहे हैं। इसलिए तो जो जैन धर्म को प्राचीन काल में 'वस्तु स्वभाव धर्म', 'अनेकान्तात्मक धर्म', 'श्रमण धर्म', 'निग्रन्थ धर्म' 'अर्हन् धर्म' आदि नाम से सम्बोधित किया जाता था, आज उस व्यापकता के अभाव से उसे जैन धर्म, दिगम्बर जैन धर्म, श्वेताम्बर जैन धर्म, बीस पंथी धर्म, तेरा पंथी धर्म, कांजी पंथी धर्म, वाणिओं का धर्म आदि अव्यापक/अनुदार सम्बोधन से सम्बोधित किया जाता है। आज जैन तीर्थंकरों, अनेकान्त, अहिंसा, अपरिग्रह आदि के नाम पर समस्त पंथवाद की संकीर्णता को त्याग कर संगठित नहीं होते हैं। परन्तु स्व-स्व-पंथ, परम्परा के नाम पर संगठित होते हैं, जिससे वे दूसरे पंथ, परम्परा वालों को निचा दिखा सकते है, अपना वर्चस्व का प्रदर्शन कर सकते हैं। अत एव जो धर्म विश्व मैत्री, विश्व शान्ति, विश्व कल्याणकारी धर्म है, आज स्वयं को जैन धर्मावलम्बी कहने वालों में भी परस्पर में प्रेम, शान्ति, संघठन नहीं है।

(2) भाव की पवित्रता से भाव की दरिद्रता

जैन धर्मानुसार आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य, पाप, सुख, दुःख आदि के लिए भाव को मुख्य कहा गया है, अतः भाव की पवित्रता ही जैन धर्म का सार/प्राण/लक्ष्य/प्राप्तय/साध्य है। जिस प्रकार भात बनाने के लिए चावल मुख्य है, और पानी, अग्नि आदि सहायक है। परन्तु चावल के अभाव में अग्नि, पानी, बर्तन से भी भात नहीं बन सकता है। इसी प्रकार भावशुद्धि के बिना केवल बाह्य क्रिया-काण्ड, रीति-रिवाज, पंथ-परम्परा, ताम-झाम आदि आत्म कल्याण, धर्मप्रभावना, विश्वकल्याण के लिए पर्याप्त नहीं है। जैन धर्मानुसार क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा, चोरी, असत्य, परिग्रह, अब्रह्मचर्य आदि, दूषित भाव/कार्य से रहित भाव को पवित्र भाव कहते हैं। और उपर्युक्त दूषित भाव/कार्य से सहित भाव को दरिद्रता

कहते हैं। इस द्ररिदता के कारण ही व्यक्ति, परिवार, समाज, संघ, संगठन, राष्ट्र, विश्व, आदि दरिद्र होते हैं। क्योंकिः-

उन्नत मानसं यस्य तस्य भाग्यं समुन्नतम्।

नोन्नत मानसं यस्य तस्य भाग्यं असमुन्नतम्।।

अर्थात् जिसका मानसिक/भावात्मक स्तर उन्नत है, उसका भाग्य भी समुन्नत है, और जिसका भाव/मन उन्नत नहीं है, उसका भाग्य उन्नत नहीं है। इसलिए महान् ज्ञान, विज्ञान, संस्कृति, सभ्यता, गणित, इतिहास, न्याय, नीति से समृद्ध जैन धर्म को अपनाने वालों में भी परस्पर में प्रेम, संघठन, सहयोग नहीं पाया जाता है। क्योंकि वे भी परस्पर पंथ, मत, संत, ग्रन्थ, सत्ता, सम्पत्ति, प्रभुता, प्रसिद्धि आदि को लेकर भावात्मक हिंसा स्वरूप ईर्ष्या, द्वेष, विषमता, घृणा, भेदभाव ऊँचनीच, तेरा-मेरा करते रहते हैं।

(3) व्यवहार में ह्रासोन्मुखता (क्रमहानि)

जैन धर्म के अनुसार क्रमविकास करता हुआ जीव ही जिनेन्द्र बनता है, आत्मा ही परमात्मा बनता है, खुद ही खुदा बनता है। मिथ्यात्व रूपी अत्यन्त निम्न भावात्मक स्थान से जीव क्रम विकास करता हुआ, सम्यक् दृष्टि रूपी जैन बनता है। पाँचों पापों को आशिंक रूप से त्याग करता हुआ ''श्रावक'' बनता है। पाँचों पापों को पूर्ण रूप से त्याग करता हुआ ''श्रमण'' बनता है। और अन्तरंग कषायों को क्षीण से क्षीण करता हुआ, आध्यात्मिक सोपान स्वरूप गुणस्थान आरोहण करता हुआ ''अरिहन्त सिद्ध भगवान्'' बनता है। परन्तु प्राचीन आगम, मध्य कालिक साहित्य तथा वर्तमान के अनुभव से ज्ञात होता कि क्रम विकास के परिवर्तन में क्रम हानि हुई है। यथा-

A) प्राचीन काल में अनेकान्त रूपी भाव अहिंसा, स्यादवाद् रूपी वाचनिक अहिंसा, अपरिग्रह रूपी सामाजिक अहिंसा, दूसरों की सुरक्षा रूपी व्यवहारिक अहिंसा को अधिक महत्व दिया जाता था। परन्तु वर्तमान काल में केवल बाह्य द्रव्य अहिंसा को ही यत्किंचित् महत्व दिया जाता है। किन्तु अन्य अहिंसा को कम महत्व दिया जाता है जिससे स्व-संक्लेश, गृह-कलह से लेकर युद्ध तक होता है।

B) पहले श्रावक के अष्ट मुल गुणों में-(1) मद्य (2) मांस (3) मधु का

त्याग (4) अहिंसाणव्रत (5) सत्याणुव्रत (6) अचौर्यणुव्रत (7) अपरिग्रहाणुव्रत (8) ब्रह्मचर्याणुव्रत को महत्व दिया जाता था। परन्तु वर्तमान में तीन मकार, पाँच उदुम्बर फल के त्याग को महत्व दिया जाता है। पाँच उदूम्बर फल प्रायः अनुपलब्ध है। कोई सेवन नहीं करते हैं। इसके कारण पंच अणुव्रत जो जीवन विकास के लिए अधिक महत्वपूर्ण है उसकी प्रायः उपेक्षा हो रही है।

C) प्राचीन काल में श्रावकों के दैनिक कर्त्तव्यों में (1) देवपूजा (2) गुरुसेवा (3) स्वाध्याय (4) संयम (5) तप (6) दान को महत्व दिया जाता था, परन्तु वर्तमान में (1) देवदर्शन (2) पानी छान के पीना (3) रात्रि भोजन त्याग को महत्व दिया जाता है जिसका भी पालन सहीं रूप में नहीं करते। इसके कारण गुरुसेवा, स्वाध्याय, संयम, तप, दान गौण हो गये, जिससे श्रावक स्व कर्त्तव्य में शिथिलाचारी बन गये हैं जिससे साधुओं की व्यवस्था समुचित नहीं होने के कारण साधु में भी कुछ शिथिलाचार प्रवेश कर रहा है।

D) प्राचीन काल में बाह्य तप, उपवास, प्रभावना, पर्व आदि अन्तरंग शुद्धि, सादा जीवन उच्च विचार, संयम, प्रेम, संगठन, परोपकार आदि के लिए करते थे, परन्तु वर्तमान में वे सब बाह्य आड़म्बर, दिखावा, फैशन अपव्यय, दूसरों को नीचा दिखाना, अनर्थ दंड़, असंयम, आत्म-प्रसिद्धि, स्वार्थ सिद्धि, धन-संग्रह, मत-पंथ, कषाय पुष्टि के लिए हो रहे हैं।

E) जैन की मुख्य पहले समता, सहिष्णुता, रत्नत्रय, क्षमा, सरलता, सहजता, निस्पृहता, वीतरागता, सत्यनिष्ठा, लोकज्ञता, उन्नतशीलता, शालीनता थी परन्तु वर्तमान में ख्याति, पूजा, लाभ, प्रसिद्धि, लोकेष्णा, वित्तेषणा, पंथवाद, मतवाद, मन्दिर-मठ निर्माण प्रमुख होते जा रहे हैं।

F) पहले साधुओं को श्रमण, मुनि, तपस्वी, गुरु शब्द से तो साध्विओं को श्रमणी, संयमी, आर्या, साध्वी शब्द से सम्बोधित किया जाता था, परन्तु अभी साधुओं को महाराज (कुछ स्थानों में रसोईया को महाराज कहते हैं) तथा साध्वी को माताजी (शिशु को जन्म देने वाली को) कहते हैं। अभी माता, पिता को मम्मी, डॅडी, तो बडे पिता, चाचा को अंकल कहते हैं। पहले हाथ जोड़कर नमोस्तु, जय जिनेन्द्र आदि कहकर गवासन आदि में बैठकर, शिर झुकाकर, चरण स्पर्श करके

प्रणाम करते थे, परन्तु अभी तो कुछ प्रणाम आदि नहीं करते है तो कुछ अनग्रभाव से टाटा, हाय, हॅलो, बाय करते हैं, तो कुछ हाथ मिलाकर इतिश्री कर लेते हैं।

(4) नव कोटी से एक कोटी धर्मः-

जैन धर्मानुसार धर्म (पुण्य) तथा अधर्म (पाप) मन, वचन, काय तथा कृत कारित, अनुमोदना से होने के कारण प्राचीन काल में धर्म (पुण्य) नव कोटी से करते थे। तथा पाप से बचने की कोशिश करते थे। अतः कभी पाप एक कोटी से होने पर भी अन्य कोटी से न हो ऐसा यत्न करते थे। अतः धर्म अधिक होता था, तथा पाप कम परन्तु वर्तमान में जो स्वयं धर्म (कृत) करते हैं वे भी दूसरों के अच्छे कार्य (धर्म/पुण्य) को भी मन, वचन, काय से भी अच्छा नहीं मानते हैं अनुमोदना नहीं करते हैं। किन्तु अत्यन्त दुःख के साथ लिखना पडता है कि वे भी दूसरों के गलत कार्य (अधर्म, पाप, धन संग्रह, विवाह आदि) की भी मन, वचन, काय से अनुमोदना करते हैं। अतः कहना पडता हैः-

पुण्यस्य फलमिच्छिन्ति पुण्यं न कुर्वन्ति मानवाः।
पापस्य फलनेच्छिन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः।।

अर्थात् मानव पुण्य का फल सुख चाहता है, परन्तु पुण्य नहीं करता है किन्तु पाप का फल दुःख नहीं चाहता है परन्तु पाप यत्नपूर्वक करता है।

पूर्वाचार्यों ने कहा है कि पुण्य करना सरल है, क्योंकि भाव को शुभ रखना, शुभ बोलना और दूसरों के शुभ कार्यों की प्रशंसा करना और अनुमोदना करने के लिए शारीरिक श्रम नहीं करना पड़ता है, तथा घन आदि की भी आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसी प्रकार पाप करना भी सरल है, क्योंकि भाव को दूषित रखना और दूसरों से ईर्ष्या, द्वेष करना सरल है परन्तु प्रायोगिक रूप से अनुभव में आता है कि अधिकांश व्यक्ति पाप से ही अधिक करते हैं।

(5) आशा की किरणें

जिस प्रकार घन बादल से व्याप्त घन अन्धकार में भी बिजली की चमक रूपी प्रकाश होता है, उसी प्रकार वर्तमान में घन घोर निराशा रूपी परिस्थिति में भी कुछ नई आशा की किरणें प्रस्फुटित हो रही है। यथा-वर्तमान के कुछ गृहस्थ-श्रावक,

विद्वान साधु-संत उदारवादी, मिलनसार, प्रगति-शील, संगठन प्रिय, परोपकारी, शांतिप्रिय, विचारशील पायें जाते हैं। वें स्व सिद्धान्त के साथ साथ दूसरों के दर्शन, विचारों का भी अध्ययन करते हैं, मनन करते हैं और समन्वय करते हैं, कुछ गृहस्थ से लेकर साधु-संत आधुनिक उच्च शिक्षा प्राप्त हैं। वे जैन धर्म का वैज्ञानिक एवं समन्वय दृष्टिकोण से अध्ययन, लेखन शोध-बोध एवं प्रसार-प्रचार कर रहे हैं। वे संकीर्ण पंथ वाद, रूढ़ि वाद, परम्परा वाद से रहित होकर सत्य, समता, शान्ति के लिए प्रयासरत हैं। वर्तमान समय में पहले से भी अधिक साहित्यों का प्रकाशन, सर्वधर्म सम्मेलनों में योगदान, प्रेम, संगठन को अधिक महत्व दे रहे हैं। अभी की नई पीढ़ी भी उदार वादी, शान्तिप्रिय, प्रगतिशील है। नई पीढी में भी जो विज्ञान, गणित आदि की उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं वे अधिक उदारवादी पायें जाते हैं। विज्ञान के नव-नवीन शोध-बोध, आविष्कार के कारण जैन धर्म अधिक सत्य, वैज्ञानिक, विश्व कल्याणकारी सिद्ध होता जा रह है जिससे देश-विदेश के प्रबुद्ध जैन धर्म के अनेकान्त, अहिंसा, शाकाहार, कर्म सिद्धान्त, गणित, कार्य-कारण सिद्धान्त से प्रभावित है, यह सब शुभलक्षण है, विकास के सूचक है, इन सब शुभ विचारों, कार्यों एवं व्यक्तियों को प्रोत्साहित करना सहयोग देना, उनकी प्रशंसा करना और उन कार्यों के साथ-साथ आगे बढ़ना सबका पवित्र कर्त्तव्य है, इससे स्व-पर, विश्व कल्याण सम्भव है।

जैन धर्म की प्रभावना के प्राचीन एवं आधुनिक उपाय

आत्मा प्रभावनीयो, रत्नत्रय तेजसा सततमेव।
दान-तपो-जिनपूजा-विद्याऽतिशयैश्च जिनधर्मः।। (30)

व्यवहारनय से सम्यक्दृष्टि भव्यों के द्वारा दान, तप, जिनपूजा अतिशय विद्या के द्वारा स्याद्वाद से अंकित जिनधर्म की प्रभावना करनी चाहिए अर्थात् अतिशय से उसको बढ़ाना चाहिए। पुनः रत्नत्रय रूपी तेज से दर्शन, ज्ञान, चारित्रात्मक आत्मा को सतत उद्योतन करना चाहिए। प्रभावना का अर्थ हैं (प्र+भावना) अर्थात् प्रकृष्ट, निर्मल भावना, सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र तपो से जिनशासन का उद्योतन करना, आत्म प्रकाशन करना प्रभावना है। प्रकृष्ट/उत्कृष्ट/उदार/निर्मल/पवित्र/साम्यभाव को प्रभावना कहते हैं। प्रभावना पहले स्वयं से होती है, उसके अनन्तर उसका प्रचार-

प्रसार विभिन्न माध्यम से किया जाता हैं। रत्नत्रयरूपी प्रकाश से पहले स्वयं को प्रकाशित करना चाहिए उसके बाद दूसरो को प्रकाशित करना चाहिए, जैसे जो दीपक स्वयं पहले प्रकाशित होता है वही दीपक दूसरो को प्रकाशित करता है। बुझा हुआ दीपक न स्वयं को प्रकाशित कर सकता है, न दूसरों को प्रकाशित कर सकता है। प्रभावना के अनेक कारण/कारक/उपाय होते हैं। जैसे दान, पूजा, उपवास, ज्ञान/उत्सव/सांस्कृतिक कार्यक्रम/रथ यात्रा/पंचकल्याण वेदी प्रतिष्ठा/तीर्थयात्रा/सत्साहित्य/धार्मिक पत्रिका आदि। परन्तु पवित्र प्रकृष्ट भावना या महान्-उदार उद्देश्य के बिना उपरोक्त कारक/कारण भी वस्तुतः प्रभावना के अंग/उपाय नहीं बन सकते है। जैसे अंकुरोत्पत्ति शक्ति से रहित बीज से अंकुरोत्पत्ति नहीं हो सकती है। अन्तरंग अच्छी भावना से रहित बाह्य प्रभावना की शोभा उसी प्रकार है जिस प्रकार शवयात्रा की शोभा हैं। विशेष ध्यान देने योग्य विशेष यह है कि जैन धर्म की धारा पंचमकाल के अंत तक अविच्छिन्न रूप से चलती रहेगी। अतः स्वतः सिद्ध हों जाता हैं कि इसमें भी धार्मिक व्यक्ति होते रहेंगे भले ही उनकी संख्या एवं मात्रा कम क्यों न हो। इस विपरीतकाल में भी जो व्यक्ति सच्चे हृदय से धर्मपालन करेंगे वें अत्यन्त महान् है। क्योंकि अनकूल स्रोत में नौका को खेकर ले जाना सरल है, परन्तु प्रतिकूल स्रोत में खेकर ले जाना दुष्कर हैं। इसलिए पूर्वाचायों ने कहा है कि चतुर्थ काल की 1000 वर्ष की तपस्या के बराबर पंचमकाल की 1 वर्ष की तपस्या है अर्थात् चतुर्थकाल में जिस धर्म कार्य को करने से जितना फल मिलता था वर्तमान में उस धर्म कार्य का एक सहस्त्रांश करने पर वही फल मिलेगा। इसलिए पूर्वाचार्यों ने कहा है-

धन्या भारतवर्ष सम्भवजना योऽद्यापि काले कलौ।
निस्तीर्थकर केवले निरवद्यो भ्रश्यन्मनः पर्यये।
त्रुट्यच्छोत्र विशेष संपदि भव दौर्गत्य दुखापदि।
श्री जिनेन्द्रवचोनुरागवशतः कुर्वित धर्मोद्यतम्।।

वर्तमान घोर पंचम कलिकाल में तीर्थंकर, केवली, अवधि, मनः पर्याय ज्ञान का अभाव है, योग्य श्रेताओं का भी अभाव है, विशेष वैभव से रहित, दरिद्रता आदि संकट से सहित कलियुग के मनुष्य है। इसी प्रकार विपरीत (विषम) कलियुग में भी श्री जिनेन्द्र देव के वचनानुसार धर्म में जो उद्यत होते हैं वे अत्यन्त अभिवन्दनीय एवं धन्यवाद के पात्र हैं।

वर्तमान आधुनिक वैज्ञानिक संचार युग में जैनधर्म को अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र पर प्रचार प्रसार करने के लिए कुछ भावनाएँ, परिकल्पनाएँ, सुझाव निम्न प्रकार से प्रस्तुत कर रहा हूँ।

(1) जैन धर्म का विदेश में प्रचार प्रसार

प्रत्येक द्रव्य परिणमनशील है। उत्सर्पिणी के बाद अवसर्पिणी और अवसर्पिणी के बाद उत्सर्पिणी, दिन के बाद रात, रात के बाद दिन होना स्वभाविक है। जैसे प्रातः काल सूर्य पूर्व में उदय होता है, और उसकी किरणें पूर्व दिशा से दशों दिशाओं में फैलती है परंतु जब धीरे-धीरे पश्चिम दिशा में अस्त होता है तब उसकी किरणें पश्चिम दिशा से दशों दिशाओं में फैलती हैं। इसी प्रकार प्राचीन काल में समस्त ज्ञान, विज्ञान, सभ्यता-संस्कृति रूपी सूर्य का उदय भारत रूपी पूर्व दिशा में हुआ था और यहाँ से दशों दिशाओं में उसका प्रभाव रूपी प्रकाश फैला था परन्तु अभी अनुभव में आता है कि वह सूर्य संभवतः पश्चिम दिशा में/पाश्चात्य देश में प्रकाशित हो रहा है। जैसा कि आधुनिक ज्ञान विज्ञान, अभियांत्रिकी, राजनैतिक, सामाजिक क्रांति, वैज्ञानिक उपकरण, कानून, पर्यावरण, शाकाहार, योगा (ध्यान), धूम्रपान निषेध, कर्त्तव्यनिष्ठा, समयानुबद्धता, सादा जीवन उच्च विचार, अनुशासन, सद्व्यवहार, नैतिक व्यवहार आदि का शोध, बोध एवं प्रचार प्रसार पाश्चात्य देशों में हो रहा है और उसका अनुकरण भारतीय कर रहे हैं। हमारे ही महान् सिद्धान्त, परम्परा, संस्कृति को भारतीय नकारते हैं, घृणा की दृष्टि से देखते हैं, उसे दकियानुसी पिछडापन मानते हैं, परंतु जब पाश्चात्य लोग उसको सही मानते हैं, अपनाते हैं तब भारतीय लोग पुनः उसको आधुनिकता, प्रगतिशीलता के नाम से स्वीकारते हैं। संभवतः भारत जो सैकड़ों वर्षो से गुलाम रहा है उसका परिणाम राजनैतिक गुलामी के साथ साथ सांस्कृतिक, बौद्धिक, भाषागत गुलामी में भारतीय जकड गये है और अभी तक बंधन मुक्त नहीं हो पाए है। इसीलिए तो रवीन्द्रनाथ ठाकुर की मूल गीतांजलि जो बंगला भाषा में थी उसको कोई महत्व नहीं देते थे परंतु जब इस गीतांजलि का अंग्रेजी अनुवाद हुआ, विदेशियों ने पढा तथा उन्हें नोबल पुरस्कार मिला तब भारतीय लोग गीतांजली को व रवीन्द्रनाथ ठाकुर को महत्व देने लगे। ऐसी ही दुर्घटना विवेकानन्द, अरविन्द, जगदीशचंद्र बसु, वैज्ञानिक हरगोविन्द खुराना, महान् गणितज्ञ रामानुज और अभी भी अनेक जीवंत प्रतिभाओं के साथ तथा अनेक भारतीय श्रेष्ठ

सत्य तथ्य पूर्ण वैज्ञानिक, सार्वभौम, ज्ञान-विज्ञान, सभ्यता, संस्कृति, परंपरा के लिए हो रहा है। इसीलिए हमें इस गतिचक्र से प्रवाह की दिशा को समझकर तदनुकूल धर्म प्रचार करने के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए अर्थात् जैन धर्म के साहित्यों का, सिद्धान्तों का अनुवाद, प्रस्तुतिकरण, वैज्ञानिक, आधुनिक प्रणाली में पाश्चात्य भाषाओं में होना चाहिए। विदेशों में जाकर ऐसे आधुनिक वैज्ञानिक एवं पाश्चात्य भाषा ज्ञान से युक्त प्रबुद्ध व्यक्तियों के द्वारा उसका प्रचार प्रसार होना चाहिए जिससे पाश्चात्य जगत् के सत्याग्राही, वैज्ञानिक आदि जैन सिद्धान्त का अध्ययन मनन करके उसका शोध, बोध, प्रस्तुति करण, प्रायोगिक करण कर सकेंगे और जिससे वास्तविक जैन धर्म का प्रचार प्रसार होगा। जिस प्रकार की ध्यान का प्रस्तुतिकरण शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य के लिए हो रहा है तो अहिंसा का शाकाहार, पर्यावरण के लिए हो रहा है। अनेकान्त सिद्धान्त का प्रायोगिक करण सापेक्ष सिद्धान्त में हो रहा है। अपरिग्रह का सामाजिक समरसता एवं समाजवाद के लिए हो रहा है। पुद्गल के सिद्धान्तों का भौतिक रासायनिक, अणुसिद्धान्त, विद्युत् ऊर्जा, सॅटेलाइट, टी.वी, कम्प्यूटर आदि में हो रहा है। इसी प्रकार भारत में और विषेश कर जैन धर्म में और भी अनेक महान् सिद्धान्त है उनका ऐसे ही वैज्ञानिक प्रयोगिककरण होना चाहिए। यथा कर्म सिद्धान्त का D.N.A., R.N.A. आनुवांशिक, जीन्स में, भावपरिस्कार का पर्यावरण में शोध-बोध प्रायोगिककरण होना चाहिए। उपरोक्त ऐसे कार्य जो विज्ञान को भी अविज्ञात है उसका शुभारंभ हमने स्वयं कर लिया है तथा भारतीय विषेशकर जैनों को इस कार्य में तन, मन, धन, समय, श्रम लगाना चाहिए।

(2) वैज्ञानिक पद्धति एवं उपकरणों का आवलम्बन

वर्तमान के 24 तीर्थंकरों में से भगवान् आदिनाथ प्रथम एवं अन्तिम भगवान् महावीर की कथन-पद्धति एवं अन्य 22 तीर्थंकरों की पद्धति अलग थी। उसका कारण श्रोताओं की योग्यता, परिस्थिति, भावस्थिति, को देखकर उसे सम्बोधित करते थे, मार्गदर्शन करते थे। इसलिए कुन्दकुन्द देव ने समयसार में कहा है कि यदि म्लेच्छों को सम्बोधित करना है तो म्लेच्छ भाषा का प्रयोग करना चाहिए एवं आर्यजन को सम्बोधित करने के लिए आर्य भाषा का प्रयोग करना चाहिए। इसलिए पूर्वाचार्यों ने कहा है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को लेकर ध्यान, अध्ययन, धर्म

प्रचारादि करना चाहिए। इसे ही स्वपर चतुष्टय कहते हैं। विज्ञान में इसे चतुःआयाम सिद्धान्त कहते हैं। वीरसेन स्वामी ने धवला-जयधवला रूपी अपनी टीका में विभिन्न भाषाओं, विभिन्न सिद्धान्तों, विभिन्न ग्रन्थों, विभिन्न मतों, विभिन्न आचार्यों का समन्वय एवं समीक्षा की है। उन्होंने कहा है कि उपाध्याय को स्वमत, परमत का एवं तात्कालिक ज्ञान से युक्त होना चाहिए। ऐसे ही वर्तमान काल में हमें जैन धर्म को वैज्ञानिक पद्धति एवं वैज्ञानिक उपकरणों से जैसे टी.वी, वेबसाइट, ई-मेल, ईन्टरनेट, फॅक्स, कम्प्यूटर आदि के द्वारा प्रचार प्रसार करना चाहिए। जैसा कि तीर्थंकर के समय में भी कुछ देव दूसरे भव्यों को समोवशरण में आने के लिए प्रेरित करते थे और दिव्यध्वनि को दूर-दूर तक फैलाने में सहयोग करते थे। स्वयं इन्द्रादि देव धर्म प्रचार के लिए अर्थात् दिव्यध्वनि के प्रचार के लिए समोवशरण आदि की रचना करते थें। इसी प्रकार हमें आधुनिक टी.वी. कम्प्यूटर आदि के माध्यम से जैन धर्म के सिद्धान्त, साधु-सन्तों के प्रवचनों का प्रचार-प्रसार देश-विदेश में सरलता व व्यापकता से करना चाहिए। इसलिए जो धन, समय, श्रम अन्य क्षेत्र में लगाते हैं उनमें से कुछ कम करके इस महान् कार्य में लगाना चाहिए।

(3) धर्म के सर्वोदयी एवं सार्वभौमीकरणः-

वस्तुतः धर्म तथा विशेषता जैन धर्म वस्तुस्वभावात्मक, वैश्विक, सर्वजनहितकारी, सर्वजीव सुखकरी, सर्वोदयी हैं। परन्तु जिस प्रकार धरती को विभिन्न राष्ट्र, प्रदेश, ग्राम, नगर, गृह आदि में विभक्त करके उस-उस भाग में व्यक्ति अपना वर्चस्व कायम करता है और उसके लिए भेदभाव, अपना-पराया से लेकर शुद्ध कलह करता है। उसी प्रकार धर्म के लिए भी हो रहा हैं। ऐसे संकीर्णतापूर्ण भेदभाव से युक्त, अन्धविश्वास से ग्रसित धर्म जो केवल रीति-रिवाज, पूजा-पाठ, परम्परा, रुढ़ी रूप में प्रचलित धर्म हैं, उससे स्वपर, विश्व कल्याण के परिवर्तन में अकल्याण ही हो रहा हैं। इसलिए वर्तमान की आवश्यकता है, जैन धर्म को जन धर्म बनाना और केवल मत, ग्रन्थ और मन्दिर में बन्धन पड़े हुए जैन धर्म को मुक्त करके उसका सार्वजनिक करण एवं वैश्विककरण करना है। इसलिए जैन धर्म की आधुनिककरण एवं समसामयिक रूप में प्रस्तुत करके प्राथमिक कक्षा से लेकर विश्वविद्यालय के उच्चतम कक्षा तक के इतिहास, भौतिक, रासायनिक, गणित, जीव

विज्ञान, मनोविज्ञान, शिक्षा विज्ञान, योगासन, ध्यान, पर्यावरण, शाकाहार, कानून, राजनीति, अर्थशास्त्र, वाणिज्य, शिल्प, कला, दर्शन, कला, दर्शन शास्त्र, प्रोद्योगिकी, चिकित्सा विज्ञान, कर्म सिद्धान्त पारिस्थितिकी आदि विषय में प्रशिक्षण देना चाहिए। इतना ही नहीं इन सभी विषयों का शोध कार्य भी होना चाहिए। ये सब कार्य मैं स्वयं बहुत वर्षों से कर रहा हूँ, जिसमें मुझे सफलता भी मिली है और मेरे कार्यों में तीव्रता भी आई है। अनुभव में आता है कि प्रथम कक्षा से लेकर विश्वविद्यालय स्तरीय प्रशिक्षण एवं उसके आगे के भी शोध कार्य जैन विद्यार्थी से लेकर जैन विद्वान लौकिक इतिहास, कला, वाणिज्य आदि के ऊपर करते हैं। तब वे जीवन में गहराई से जैन धर्म के सिद्धान्त से जुड़ नहीं पाते हैं और उसका ज्ञान भी गहराई से नहीं कर पाते हैं। इतना ही नहीं यत्किंचित जो जैन धर्म का अध्ययन विद्यार्थी से लेकर विद्वान, साधु-सन्त भी करते हैं, उसमें भी गहनता, सार्वभौमिकता कम पाई जाती हैं। इसलिए जैन सिद्धान्त अलग-थलग उपेक्षित पड़ा हुआ है। उसका प्रायोगिकीकरण नहीं हो पा रहा हैं। जिसके कारण भी जैन धर्म का प्रचार-प्रसार समुचित रूप से नहीं हो पा रहा हैं।

(4) समन्वय एवं सहयोग

जैन तीर्थंकरों से लेकर महात्मा बुद्ध सामाजिक कार्यकर्ता आदि ने किसी भी महान् कार्य के लिए समन्वय एवं सहयोग का आवलम्बन लिया है। वर्तमान काल में तो संगठन एवं समन्वय की बहुत ही आवश्यकता हैं। क्योंकि वर्तमानकाल समन्वय वादी ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' वाला युग है। वर्तमान धरती एक परिवार रूप में परिणित हो गई हैं। चतुर्थ काल में महापुरुष में जिस प्रकार की अधिक योग्यताएँ, क्षमताएँ होती थी, अभी ऐसी योग्यताएँ, क्षमताएँ किसी में भी नहीं हैं। इसलिए महान् कार्य के लिए जो योग्यताएँ एवं क्षमताएँ चाहिए वह समन्वय एवं सहयोग से ही सम्भव हैं। इसलिए कहा है ''संगे शक्ति कलौ युगे'' अर्थात् कलयुग में संघ/संगठन/एकता में ही शक्ति है। इसलिए कहा है By Uniting we stand by dividing we fall अर्थात् संगठन से हम उन्नति कर सकते हैं, प्रभावना कर सकते हैं, जीवित रह सकते हैं एवं विघटन से मर जायेंगे, मिट जायेंगे। इसलिए मेरी कृति संगठन के सूत्र में मैंने लिखा है-

संगठन है अमृततत्त्व, जीने और जिलाने का।

विघटन है ऐसा तत्त्व, मरने और मारने का।।

मैंने जो भारत तथा विषेश करके जैन धर्म अनुयायियों के दुर्बल बिन्दुओं का अनुभव किया है वह है असंगठन/अप्रेमभाव/फूट/अन्तःकलह। इसलिए तो कर्नाटक के अजैन बन्धु जैनियों को उलाहना देते हुए कहते हैं कि ''डोम्बरू कूडदिल्ला केट्टरू जैनरू कूडिदाग केट्टरू''। अर्थात् डोम्ब यदि मिलेंगे नहीं तो खेल नहीं दिखा सकते हैं इसलिए नहीं मिलना संगठित नहीं होना उनके लिए आपत्ति जनक है परन्तु जैन मिलेंगे तो झगड़ा करते है अतः उनका एकस्थान में इकट्ठा होना अयोग्य है इसलिए जैनियों को एक साथ नहीं मिलना चाहिए। इसलिए संगठन के लिए मैंने निम्नोक्त दोहा बनाया है-

हम सबके, सब हमारे यही एकता का नारा है।

आत्मवत् भाव सर्व भूतेषु, यही मंत्र सबसे प्यारा है।।

धर्म की प्रभावना के लिए अनेक जैन पत्रिकायें निकलती है परन्तु उसमें विशेषतः स्व की प्रशंसा एवं दूसरों की निन्दा निकलती है तथा विज्ञापन की आड़ में धन प्रभावनार्थव्यसन प्रभावना करते हैं और चुटकी, गुटखा, शीतल पेय आदि से अलौकिक सुख व ताजगी दिलाना चाहते हैं। किसी की भुल सुधार करना अवश्य चाहिए परन्तु पत्रिका में नाम देकर निन्दात्मक लेख नहीं निकालना चाहिए। इससे स्वयं तो दोषी बनते हैं, धर्म की अप्रभावना होती है। जैसे माता, पुत्री आदि के गुप्तांग में रोग होने पर उनकी योग्य चिकित्सा एकान्त में करना चाहिए परन्तु सबके सन्मुख उस अंग को खोलकर नहीं दिखाना चाहिए। सामान्य रूप से नाम दिए बिना गुण दोष की समीक्षा, समाधान पत्रिका में देना चाहिए। इससे रचनात्मक मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है परन्तु नाम देने से विपरीत प्रभाव पड़ता है।

जब मन में अनेकान्तात्मक 'भाव-अहिंसा' होगी, कथन में स्याद्वाद रूपी 'वाचनिक-अहिंसा' होगी, अपरिग्रह रूपी 'सामाजिक-अहिंसा' होगी तथा दूसरों के साथ सद्व्यवहार रूपी 'व्यावहारिक-अहिंसा' होगी तब ही जाकर समन्वय होगा और समन्वय से ही संगठन संभव होगा ऐसे समन्वय एवं सहयोग से शारीरिक, आर्थिक, मानसिक समय एवं श्रम का संगठन होगा जिससे प्रखर एवं प्रबल ऊर्जा

की सृष्टि होगी और उससे महान् से महानतम् कार्य सम्भव हो पाएगा। इसलिए जैन धर्म की प्रभावना के लिए हमें संपूर्ण मत, पंथ, ग्रन्थ, संत, पूजा-पाठ, संप्रदाय, रीति-रिवाज, जाति की संकीर्णता से संगठित होना पडेगा। मेरा अनुभव है कि अभि भारत में कुछ प्रबुद्ध व्यक्ति तथा नई पिढ़ी उसे उपर्युक्त महान् कार्य के लिए रूचि रखती है, और उसके लिए तत्पर भी है। यह जैन धर्म के लिए राष्ट्र के लिए, विश्व के लिए मंगल सूचक एवं शुभावह है। आओ! हम सब स्व-पर राष्ट्र विश्व कल्याण के लिए समस्त मानसिक, अंधपरम्परागत, ग्रन्थियों को, बन्धनों को तोडकर, अनन्त, सत्य, शांति, सुख के लिए पुरुषार्थ करें और तब तक पुरुषार्थ को जारी रखे जब तक हमारा महान् लक्ष पूरा न हो जावे।

धार्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से हिंसा-अहिंसा का फल

(हिंसा-अहिंसा का प्रतिफल है विनाश एवं विकास)

प्राकृतिक रूप से स्वभावतः विश्व के प्रत्येक चेतन एवं अचेतन तत्व स्वतंत्र सत्ता संपन्न होते हुए भी वे परस्पर सहयोग/उपकार करते हुए अन्तर्सम्बन्ध से युक्त होते हैं। उसे ही विश्व व्यवस्था/पारिस्थितिकि/परस्परोपग्रहो जीवनाम्/प्रकृति के नियम/जीव जीवस्य रक्षणम्/प्रकृति या पर्यावरण की सुरक्षा कहते हैं। नैतिक या धार्मिक दृष्टि से इसे अहिंसा, प्राणी रक्षा, दया-दान, परोपकार, सेवा-सहयोग, करूणा आदि कहते हैं। प्रत्येक चेतन-अचेतन द्रव्य में अनन्त गुणधर्म अवस्थायें होने के कारण उसका प्रभाव भी अनन्त होता है। अतः किसी भी द्रव्य की क्षति/हानि/हत्या/विकृति से भी उसका दुष्प्रभाव भी अनन्त होना स्वभाविक है। इसे ही क्रिया प्रतिक्रिया सिद्धान्त, कर्म सिद्धान्त, कार्य-कारण सिद्धान्त कहते हैं। इन सब रहस्यों को हमारे महान् आध्यात्मिक वैज्ञानिक तीर्थंकर, बुद्ध, ऋषि, मुनिओं ने बहुत प्राचीन काल से ही शोध-बोध, प्रबोध, प्रचार-प्रसार किया और उसे ''धर्म'' विशेषण से विशेषित किया। भले शनैः शनैः धर्म में विकृति विपरीतता, अन्धश्रद्धा प्रवेश करती गई तथा बाह्य क्रिया-काण्ड, रीति-रिवाज, बाह्याड़म्बर को धर्म मानते गये एवं धर्म, धन, सत्ता, सम्पत्ति, प्रसिद्धि के लिए हिंसा शोषण, चोरी, धोखा-धड़ी, आक्रमण, युद्ध आदि को अपनाते ही चले गये। परन्तु यह सब प्राकृतिक धर्म-स्वभाव-व्यवस्था से विपरीत

होने के कारण उससे जीवों को सुख शान्ति प्रगति-समृद्धि नहीं मिल पाती है।

जिसकी श्रेष्ठता, जेष्ठता, गुणवत्ता, प्रभावोत्पादकता जितनी अधिक होगी उसकी सुरक्षा, सम्बृद्धि से उसका सुप्रभाव उतना ही अधिक होगा तथा उसकी क्षति से भी उसका दुष्प्रभाव उतना ही अधिक होगा। न्यूटन के 3 गति सिद्धान्तानुसार "To every action there is an equal and opposite reaction." अर्थात् जहाँ क्रिया होगी वहाँ पर उसकी प्रतिक्रिया भी होगी एवं प्रतिक्रिया उस क्रिया की विपरीत समानुपाती क्रिया होगी। परन्तु यह नियम केवल स्थूल भौतिक वस्तु में ही संभव हो सकता है नैतिक आध्यात्मिक, कर्मसिद्धान्त से यह नियम अपर्याप्त है। क्योंकि जो पुण्य और पाप एक समय में बन्धता है उसका फल उससे संख्यात, असंख्यात समय तक मिलता है। इसलिए भौतिक स्थूल जगत् में जो क्रिया-प्रतिक्रिया होती है उससे अधिक क्रिया-प्रतिक्रिया सूक्ष्म-भौतिक जगत् में होती है। उससे भी अधिक गुणित क्रिया-प्रतिक्रिया मानसिक जगत् में होती है, उससे भी अधिक क्रिया-प्रतिक्रिया आध्यात्मिक जगत् में होती है। जिस प्रकार स्थूल शब्दतरंग से सूक्ष्म शब्दतरंग अधिक शक्तिशाली, भेदक व दुरागामी होती है तथा जिस प्रकार स्थूल प्रकाश से भी सूक्ष्म प्रकाश अधिक शक्तिशाली, भेदक, दुरागामी होता है उसी प्रकार स्थूल भौतिक से लेकर आध्यात्मिक क्रिया-प्रतिक्रिया के बारे में जान लेना चाहिए। कम-बुद्धि, अनुभव, संवेदना, ज्ञान से युक्त व्यक्ति भले उपर्युक्त अनुभव नहीं कर सकते हैं तथापि वह सिद्धान्त वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक सिद्धान्त है।

शास्त्रों में पाया जाता है कि तीर्थंकर, महात्मा बुद्ध, राम, कृष्ण, अवतारी पुरुष, ईसा मसीह, पैगम्बर मोहम्मद आदि जब जन्म लेते हैं, जहाँ निवास एवं विचरण करते हैं तब वहाँ का वातावरण, प्रकृति तथा पशु-पक्षी के ऊपर भी उसका सुप्रभाव पड़ता है। तीर्थंकर जब जन्म लेते है उसके छः महीने पहले से ही रत्नों की वर्षा होती है, गन्धोदक की वर्षा होती है, जन्म लेने पर तीन लोक में क्षण भर के लिए शान्ति फैल जाती है। केवली अवस्था में जहाँ से विचरण करते हैं वहाँ एक साथ चारों दिशाओं में सौ-सौ योजन में सुभीक्ष होता है, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, महामारी, युद्ध कलह आदि नहीं होते हैं। इससे भी सिद्ध होता है कि धर्म पुण्य, अहिंसा, अच्छी भावना का प्रभाव दूसरे जीव-जन्तु एवं प्रकृति पर भी मंगलमय,

आनन्दमय व सुखमय होता है। तीर्थंकर के समवशरण में तो केवल एक साथ लाखों करोड़ों मनुष्य, देव ही प्रेम एवं शान्ति से बैठ़कर उपदेश नहीं सुनते बल्कि जन्मजात वैरत्व को रखने वाले भक्ष-अभक्ष सम्बन्ध को रखने वाले पशु-पक्षी यथा-शेर-गाय-सर्प-नेवला आदि हजारों जीव बैठ़कर शान्ति से धर्मोपदेश सुनते हैं तथा तीर्थंकर के शिष्यत्व को ग्रहण करते हैं। तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' में कहा है-

दैहिक दैविक भौतिक तापा राज राज्य माहिँ काहुँ न व्यापा।
सब दुःख वर्जित प्रजा सुखारी धरमशील सुन्दर नर नारी।।

अर्थात् राम राज्य में राम राजा तथा प्रजा धर्मशील होने के कारण रामराज्य में शारीरिक, मानसिक, भौतिक, प्राकृतिक आपत्तियाँ विपत्तियाँ नहीं होती थी।

प्राचीन भारतीय साहित्य से लेकर विदेश के साहित्य तथा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से तथा अनुभव से ज्ञात होता है कि जहाँ पर दया, करूणा, परोपकार, समता, सद्व्यवहार होता है, वहाँ पर शक्ति, समृद्धि होती हैं। इसके विपरीत जहाँ पर हिंसा, क्रूरता, शोषण, पापाचार, भ्रष्टाचार, व्याभिचार, अत्याचार होता है वहाँ पर विषमता, समस्या, अशान्ति, युद्ध, कलह, महामारी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प आदि होते हैं।

भाव में जो दूषित परिणाम होता है वह भावहिंसा है और उस परिणाम से जो दूसरों को क्षति पहुँचती है वह द्रव्यहिंसा है। दूषित परिणामों के कारण जो भावात्मक कंपन/तरंगे निकलती है उससे स्व के साथ-साथ दूसरे भी दूषित रूप में प्रभावित होते हैं। और सूक्ष्म अनंतानंत कर्म परमाणु आकर्षित होकर उस जीव के आत्म प्रदेशों में जैविक-रासायनिक प्रक्रिया से बँध जाते हैं। यही कर्म परमाणु आगे जाकर समय प्राप्त करके उस जीव को विभिन्न प्रकार के कष्ट देते हैं। अन्यजीव को जब कष्ट दिया जाता है और उससे जो पीड़ात्मक कंपन/तरंगे निकलती है वे तंरगें विपरीत प्रभाव प्रकृति एवं दूसरों पर ड़ालती है। शास्त्रों में वर्णन पाया जाता है कि राजा वसु ने जब आकाश स्फटिक मणि निर्मित सिंहासन पर बैठकर यह मिथ्या कथन किया कि यज्ञ में अज अर्थात् बकरा की बलि चढानी चाहिए तब वह सिंहासन फट गया और दूसरी बार वही हिंसात्मक मिथ्या वचन बोलने के कारण पृथ्वी फट गई और वह राजा भी पृथ्वी में धस गया और मरकर के नरक गया। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि उस हिंसात्मक पाप के विचार से एवं कथन से जो तीव्र दूषित तरंगे निकली वे

तरंगें इतनी तीव्र थी की विशाल स्फटिक मणि के सिहांसन को तोड़ ड़ाली एवं धरती को भी फाड़ डाली। इस सिद्धान्त को ही आगे हमारे भारतीय वैज्ञानिकों Bisology के रूप में सिद्ध किया है। जिसका वर्णन विस्तार से मैंने मेरे ग्रन्थ में किया है।

शास्त्रों में वर्णन पाया जाता है कि दिगम्बर जैन मुनि संघ एक नगर से होकर विहार कर रहा था और वहाँ के साठ हजार व्यक्तियों ने साधुओं की हँसी उड़ाई और कुछ ने अनुमोदना की, और एक व्यक्ति ने ऐसा करने के लिए मना किया तथा उसने साधुओं कि प्रशंसा की। आगे जाकर उस नगर में आग लग गई और पूरा नगर विध्वंस हो गया और साठ हजार व्यक्ति भी जलकर भस्म हो गए परन्तु वह व्यक्ति बच जाता है जिसने दुर्व्यवहार करने के लिए मना किया था। इससे विज्ञान के क्रिया-प्रतिक्रिया सिद्धान्त और Bisload सिद्धान्त को समर्थन मिलता है।

आचार्य कनकनन्दी

मुंगाणा-2003 (प्रथम संस्करण से)

आध्यात्मिक शोधपूर्ण कविता...

पराश्रित है पराधीन, स्वाश्रित है स्वाधीन

(भौतिक उपलब्धि है परतन्त्र, स्व उपलब्धि है स्वतन्त्र)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : 1. बता मेरे यार सुदामा रे!... 2.क्या मिलिए... 3.चाँदी की दीवार न तोड़ी... 4.चाँद सी मेहबूबा...)

क्यों तू धर्म-धर्म करता रे!...तू तो धर्म जाना ही नहीं...

धर्म तो वस्तु स्वभाव है...तू तो वस्तु को जाना ही नहीं...(ध्रुव)...

सत्य स्वरूप होता है धर्म...परम सत्य है स्व शुद्धात्मा द्रव्य...

सत्य समता शुचि शान्ति है धर्म...आत्मविश्वास ज्ञान चरण धर्म...

तू क्यों ''मैं'' ''मैं'' करता रे!...तू तो 'मैं' को जाना ही नहीं...

''णिरञ्जण सो अहं भणियो''...शुद्ध (बुद्ध) परमात्मा को 'मैं' कहा है...(1)...

देह जीव को एक गिने सो...बहिरातम तत्त्व मुधा है...

'मेरा' 'मेरा' तू क्या करता रे!...स्व-देह भी तो तेरा ही नहीं...

'मैं' स्वरूप जब स्व शुद्धात्मा जानेगा...तब जानोगे ''मैं''('मेरा') स्व गुण...

'मेरा' है स्व अनन्त ज्ञान दर्श सुख...वीर्य अस्तित्व-वस्तुत्व आदि गुण...(2)...

'साक्षरी' भी तू कहाँ हुआ रे!...''अक्षर'' स्वरूप स्व शुद्धात्मा को जाना ही नही...

'वैज्ञानिक' भी कहाँ से तू हुआ...वीतराग-विज्ञान जाना ही नहीं...

'पूजक' भी तू कहाँ हुआ रे!...पूजा, पूजक, पूज्य, फल तो जाना ही नहीं...

शुद्धात्मा के गुणों को जाने बिन...पूजा, पूजक, पूज्य, फल जानेगा नहीं...(3)...

शुद्धात्मा हैं पूज्य...उनके अनुगामी हैं पूजक...

''वन्दे तद्गुण लब्धये'' पूजा व प्रतिफल...

ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि (वर्चस्व)...चाहने वालों की न पूजा व फल...

''ध्यान'' ''ध्यान'' क्या करता रे! तू...ध्यान को तू जाना ही नहीं...

ध्यान-ध्याता-ध्यान फल न जाना...राग-द्वेष-मोह-तृष्णा न छोड़ा...(4)...

''मैं'' 'मेरा', साक्षरी, वैज्ञानिक, पूजक...बनने पर तू बनेगा ध्यानी...

ध्यानी ही परम्परा से बने शुद्ध-बुद्ध...मानव से महामानव व भगवान्...

भौतिक सम्पत्ति चाहने वाला...तू नहीं है स्वार्थी...

तू तो है तृष्णावान्...परिग्रही पापी...

आत्मिक सम्पदा (धन) चाहने वाला...है यथार्थ स्वार्थी...

स्व-आत्म वैभव प्रयोजक है...है यथार्थ परमार्थी...(5)...

सांसारिक भोग करने वाला...तू न यथार्थ भोगी...

आत्म वैभव त्यागने वाला...तू है सही त्यागी...

सांसारिक भोग त्यागने वाला...होता है यथार्थ भोगी...

आत्मिक सुख भोगते...वे होते सही योगी...(6)...

आलसी प्रमादी तू न है निकम्मा...अष्ट कर्म रिक्त सिद्ध निकम्मा...

यशःकीर्ति उपभोक्ता तू न है प्रसिद्ध...शुद्ध-बुद्ध परमात्मा ही प्रकृष्ट सिद्ध...

उक्त गुणों से रहित यदि तू हो...आत्म जागृति से वञ्चित तू हो...

भले तू हो किसी जाति-धर्म के...देशी-विदेशी भाषा-भाषी हो...(7)...

रूप-रंग-वेश-भूषा-राजा-रंक हो...मूर्ख-चतुर प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध हो...

आत्मिक शान्ति न तुझे सम्भव...भले तुझे हो भौतिक उपलब्धि...
भौतिक उपलब्धि सभी पराश्रित...पर सापेक्ष-परावलम्बन है...
स्व-उपलब्धि से बनो तू परमेश्वर...'कनक' का लक्ष्य बनना परमेश्वर...(8)

शुभ-अशुभ आदि भावना-अनुमोदना के फल

(रागीद्वेषीमोही सरल सहज शुभभावना अनुमोदना करे बिना अशुभभावना व अनुमोदना से पाप करके दुःख भोगते)

(चालः 1.जय हनुमान... 2.क्या मिलिए...)

शुभाशुभ भावना-अनुमोदना को जानो,
उनके फल को भी सही पहचानो।
शुभ से पुण्य तो अशुभ से पाप मानो,
पुण्य से सुख तो अशुभ से दुःख जानो।। (1)
रागद्वेष मोहकाम क्रोधमद व लोभ,
ईर्ष्या तृष्णा घृणा वैर विरोध अशुभ।
पंचपाप सप्त-व्यसन व फैशन,
परनिन्दा अपमान शोषण है अशुभ।। (2)
अन्याय अत्याचार भ्रष्टाचार है अशुभ,
मिलावट ठगी कामचोरी भी अशुभ।
ये सभी करना व अनुमोदना भी अशुभ,
मनवचकाय कृतकारित अनुमत भी अशुभ।। (3)
यथा मांस खाना पकाना परोसना अशुभ,
जीवों को मारना बेचना अनुमोदना अशुभ।
तथाहि समस्त अशुभ भावना-अनुमत
पाप-स्वरूप उस के फल भी दुःख दायक।। (4)
श्रीपाल पूर्व भव में कहा साधु को कोढी-कोढी,
सात सौ वीरों ने भी उनकी अनुमोदना की।
उस पाप से वे सभी बने गलित कुष्ठ रोगी,

तथाहि सगर चक्री के साठ हजार पुत्र भी दुर्गति।। (5)

अशुभ त्याग से शुभभावना व अनुमोदना,
आत्मश्रद्धा प्रज्ञा चर्या भावना अनुमोदना।।
पंचव्रत सप्त व्यसन त्याग दशधर्म पालन
दयादान सेवा परोपकार भावना व अनुमोदना।। (6)

इस से होते पाप दूर व सातिशय पुण्यास्रव,
स्वर्ग से ले परम्परा से मिलता मोक्षसुख।
यथा वज्रजंघ श्रीमती व चार मानव चार पशु
आहार दान व अनुमोदना से पाये मोक्ष सभी।। (7)

पुण्य व पाप करना होते सरल व सुलभ,
भावाश्रित होने धनाभाव से भी संभव।
किन्तु रागी द्वेषी मोही न करते सरल शुभ-पुण्य,
अप्रयोजन करते अशुभ-भाव-अनुमोदना।। (8)

अशुभ से परे शुभ व शुभ से परे शुद्ध,
समता-शान्ति-विशुद्धि वीतरागता शुद्ध।
इस से बने शुद्ध बुद्ध आनन्दमय परमात्मा,
'कनक' करे शुभभाव-अनुमोदन बनने परमात्मा।। (9)

ग.पु. का. सागवाडा 8-3-2020 रात्रि 8.25

अनादि काल में अनन्त कुपुरुषार्थ सम्पन्न जीव प्रबल दैव के आधीन होकर संसार में परिभ्रमण कर रहा है। जब तक असम्यक्पुरुषार्थ का सिलसिला चलता रहेगा तब तक दैव की प्रचण्ड शक्ति जीव के ऊपर अनुशासन करती रहेगी। जब यह चैतन्य अनंत वीर्य युक्त आत्मा अपने पुरुषार्थ को सम्यक् रूप में परिवर्तित करके जागृत होगी तब दैव की शक्ति क्षीण होती जायेगी, जैसे घना अन्धकार भी प्रचण्ड रश्मि के धारी सूर्य के उदय से विध्वंस हो जाता है, उसी प्रकार सम्यक् पुरुषार्थ के माध्यम से दैव की शक्ति विध्वंस हो जाती है। आत्मानुशासन में कहा है-

कुबोधरागादि विचेष्टितैः फलं
त्वयापि भूयोजननादिलक्षणम्।

प्रतीहि भव्यः प्रतिलोम वृत्तिभिः

ध्रुवं फलं प्राप्स्यसि तद्विलक्षणम्।। (106) आत्मानुशासन

Thou hast suffered the consequence of false knowlege, attachment and such evil acts, in the shape of births and rebirths. Be assured that thou will act certainly attain just the opposite result (i.e. liberation) by noble acts of an opposite character (absense of attachment etc.)

हे भव्य! तूने बार-बार मिथ्याज्ञान एवं रागद्वेषादि जनित प्रवृत्तियों से जो जन्म-मरणादिरूप फल प्राप्त किया उसके विरुद्ध प्रवृत्तियों रूप-सम्यग्ज्ञान एवं वैराग्य जनित आचरणों के द्वारा तू निश्चय से उसके विपरीत फल-अजर अमर पद को प्राप्त करेगा ऐसा निश्चयकर।

रागद्वेषकृताभ्यां जन्तोर्बन्धः प्रवृत्तयवृत्तिभ्याम्।

तत्वज्ञानकृताभ्यां ताभ्यामेवेक्ष्यते मोक्षः।। (180) आत्मानुशासन

राग और द्वेष के द्वारा की गई प्रवृत्ति और शासन निवृत्ति से जीव के बंध होता है तथा तत्व ज्ञान पूर्वक की गई उसी प्रवृत्ति और निवृति के द्वारा उसका मोक्ष देखा जाता है।

द्वेषानुरागबुद्धिर्गुणदोषकृता करोति खलु पापम्।

तद्विपरीता पुण्यं तदुभयरहितं तयोर्मोक्षम्।। (181)

गुण के विषय में की गयी द्वेष बुद्धि तथा दोष के विषय में की गयी अनुराग बुद्धि इनसे पाप का उपार्जन होता है। इसके विपरीत गुण के विषय में होने वाली अनुराग बुद्धि और दोष के विषय में होने वाली द्वेष बुद्धि से पुण्य का उपार्जन होता है तथा उन दोनों से रहित-अनुराग बुद्धि और द्वेष बुद्धि के बिना उन दोनों 'पाप-पुण्य' का मोक्ष अर्थात् संवर पूर्वक निर्जरा होती है।

मोहबीजाद्रतिद्वेषौ बीजान्मूलाङ्कुराविव।

तस्माज्ज्ञानाग्निना दाह्यं तदेतौ निर्दिधिक्षुणा।। (182)

जिस प्रकार बीज से जड़ और अंकुर उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार मोह रूपी बीज से राग और द्वेष उत्पन्न होते हैं, इसलिए जो इन दोनों (राग-द्वेष) को जलाना चाहता है उसे ज्ञान रूपी अग्नि के द्वारा उस मोह रूप बीज को जला देना चाहिये।

पुराण ग्रहदोषोत्थो गभ्भीरः सगतिः सरुक्।
त्यागजात्यादिना मोहव्रणः शुद्धयति रोहति।। (183)

मोह एक प्रकार का घाव है, क्योंकि वह घाव के समान ही पीड़ाकारक होता है। जिस प्रकार पुराना (बहुत समय का) शनि आदि ग्रह के दोष से उत्पन्न हुआ गहरा, नस से सहित और पीड़ा देने वाला घाव औषधियुक्त घी (मलहम) आदि से शुद्ध होकर-पीव आदि से रहित होकर भर जाता है, उसी प्रकार पुराना अर्थात् अनादिकाल से जीव के साथ रहने वाला परिग्रह के ग्रहण रूप दोष से उत्पन्न हुआ, गम्भीर (महान्) नरकादि दुर्गति का कारण और आकुलता रूप रोग से सहित ऐसा वह घाव के समान कष्टदायक मोह भी उक्त परिग्रह के परित्याग रूप मलहम से शुद्ध होकर (नष्ट होकर) ऊर्ध्वगमन (मुक्ति प्राप्ति) में सहायक होता है।

असम्यक् पुरुषार्थ से उपजे दैव, जीव को बन्धन में डालकर विविध प्रकार कष्ट देता है। परन्तु सम्यक् पुरुषार्थ से उपजे कर्म जीव को अभ्युदय सुख के साथ साथ कर्म बन्धन को काटने के लिए सहायक होता है, जिससे जीव को स्वातंत्र्य सुख मिलता है। जैसे-चोरी आदि अनैतिक कुपुरुषार्थ करने वाले जीव के साथ पुलिस रहती है और नैतिक देश सेवा आदि सुपुरुषार्थी के पास पुलिस रहती है। चोर के साथ रहने वाली पुलिस चोर को अपने अधीन में रखती है परन्तु मंत्री के साथ रहने वाली पुलिस मंत्री के अधीन में रहती है, चोर को पुलिस बन्धन आदि में डालकर कष्ट देती है, परन्तु मंत्री की रक्षा पुलिस करती है। उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि के कुपुरुषार्थ से जो दैव संचय होते हैं वे उस जीव को बन्धन में डालकर संसार में विभिन्न प्रकार के कष्ट देते हैं परन्तु सम्यग्दृष्टि के सुपुरुषार्थ से संचित सुदैव उस जीव को स्वाधीन सुख प्राप्त करने के लिए सहायक होते हैं। भावसंग्रह में देवसेन आचार्य ने कहा भी हैः-

समादिट्ठी पुण्णं ण होई संसार कारणं णियमा।
मोक्खस्स होई हेउ जइ वि वियाणं सो कुणई।। (404) भावसंग्रह

सम्यक्त्वी का शुभपुरुषार्थ भाग्य का कारण नहीं होता अर्थात् संसार का कारण नहीं होता है। यदि वह निदान (भाग्य के अधीन में रहने की इच्छा) नहीं करता है, तो वह भाग्य परम्परा, से मोक्ष के हेतु होता है।

येनांशेन सुदृष्टिस्तेनांशेनास्य बन्धनं नास्ति।

येनांशेन तु रागस्तेनांशनास्य बन्धनं भवति।। (212) पुरुषार्थ.

जितने अंश में सम्यक्त्वपना (पुरुषार्थ) है, उतने अंश में भाग्य की पराधीनता (बंधन) नहीं है और जितने अंश में मिथ्यात्व असत्पुरुषार्थ है उतने अंश में भाग्याधीन बंधन है।

जितने अंश में सम्यग्ज्ञान रूप पुरुषार्थ है उतने अंश में भाग्य की पराधीनता (बंधन) नहीं है और जितने अंश में अज्ञान रूप असत् पुरुषार्थ है उतने अंश में भाग्याधीन बन्धन है। जितने अंश में सम्यक् चारित्र रूप पुरुषार्थ है उतने अंश में भाग्य की पराधीनता (बन्धन) नहीं है और जितने अंश में सम्यक् रूप चारित्र (कुचारित्र) है उतने अंश में दैवाधीन (बंधन) है।

येनांशेन ज्ञानं तेनांशेनास्य बन्धनं नास्ति।

येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बन्धनं भवति।। (213)

येनांशेन चरित्रं तेनांशेनास्य बन्धनं नास्ति।

येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बन्धनं भवति।। (214)

शुभ और अशुभ, पुण्य और पाप, सुख और दुख में से आत्मा के लिए हितकारक होने से आदि के तीन शुभ, पुण्य एवं सुख के आचरण के योग्य हैं। शेष तीन अशुभ, पाप और दुःख अहितकारक होने से छोड़ने के योग्य हैं। शुभ, पुण्य और सुख में से शुभ पुरुषार्थ का परित्याग करना चाहिये। तब शुभ पुरुषार्थ से उत्पन्न होने वाला पुण्य सुभाग्य एवं उसका कार्य सुख (सांसारिक सुख) ये दोनों स्वयं ही नहीं रहेंगे। इस प्रकार शुभ पुरुषार्थ को त्याग करके परम पुरुषार्थ में रमण करने से अन्त में पुरुष अपनी पुरुषार्थ सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है। भाग्य परम्परा से मोक्ष का कारण होने से व्यवहार से (एक दृष्टि) मोक्ष का कारण माना जाता है, किन्तु एकान्ततः भाग्य ही मोक्ष का कारण मानने पर मोक्ष रूपी कार्य सिद्ध नहीं हो सकता है क्योंकि भाग्य के अभाव के रूप कारण से एवं परम पुरुषार्थ रूप कारण के सद्भाव होने पर मोक्ष रूपी कार्य सिद्ध हो जाता है।

शुभाशुभेपुण्य पापे सुखदुःखे च षट्त्रयम्।

हितमाद्यमनुष्ठेयं शेषत्रयमथाहितम्।। (239) आत्मानुशासन

He whose merit adn demerit (Karmas) exhaust themselves without bearing fruit is a (true) ascetic. He will never have the karmic inflow, and will attain liberation.

जिस वीतराग के पुण्य और पाप दोनों फलदान के बिना स्वयं अविपाक निर्जरा स्वरूप से निजीर्ण होते हैं वह योगी कहा जाता है और उसके कर्मों का मोक्ष होता है किन्तु आस्रव नहीं होता है।

पुरुषार्थी भाग्य पर विजय प्राप्त करता है-

जैसे बन्धन से बंधा हुआ पुरुष उस बन्धन को काटकर मुक्त होता है, वैसे ही जीव भी कर्मबन्ध को काटकर, भेदकर, तोड़कर ही मोक्ष पा सकता है और किसी प्रकार से नहीं।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
सम दुःख सुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते।। गीता

हे पुरुष श्रेष्ठ! सुख दुःख में सम रहने वाले जिस बुद्धिमान पुरुष को ये विषय व्याकुल नहीं करते वह मोक्ष के योग्य बनता है।

दग्धे बीजे यथात्यन्तं प्रादुर्भवति नांकुर।
कर्म बीजे तथा दग्धे न रोहति भवांकुर।।

इस प्रकार बीज अंकुर न्यायवत् अनादि अनन्त असत् पुरुषार्थ एवं भाग्य की परम्परा को परम पुरुषार्थ रूपी अग्नि से जलाकर भस्म कर देने के कारण जिस प्रकार अनादि परम्परा में चले आये बीज को दग्ध कर देने पर फिर उस बीज से अनन्त काल बीत जाने पर भी अंकुर उत्पन्न नहीं हो सकता, उसी प्रकार भाग्य को दग्ध करने के बाद उस भाग्य से भाग्यांकुर (संसार) पैदा नहीं हो सकता है। उपरोक्त सिद्धान्तों से अवगत होता है कि यह संसारी जीव अनादिकाल से दैवाधीन है। जब तक आत्मविश्वास, वीतराग-विज्ञान एवं स्व में रमण करने रूप प्रचण्ड पुरुषार्थ को नहीं करता है तब तक वह दैव के अधीन रहता है। जब स्वयं में निहित सुसुप्तशक्तियों को उजागर करके आत्मविश्वास, स्व-पर विवेक करके, दैविक-शक्ति को नष्ट करने के लिए एवं स्वशक्ति को विकसित करने के लिए पुरुषार्थ करता है, तब दैविक-शक्ति क्षीण से क्षीणतर, क्षीणतम होते हुए पूर्ण रूप से विलीन हो जाती है।

जिस समय परम पुरुषार्थ की सिद्धि को प्राप्त वह भाग्याधीन (अशुद्ध) आत्मा सम्पूर्ण विभावों से (शुभ, अशुभ, भाग्य से) मुक्त होकर अपने सुदृढ़ निष्कम्प चैतन्य स्वरूप को प्राप्त होता है तब तक वह पुरुष कृतकृत्य (स्वाधीन) होता है।

अभव्य जीव अनादि से अनन्तकाल तक भाग्याधीन रहता है। मोक्षगामी जीव मिथ्यात्व अवस्था में भाग्याधीन रहता है इसलिए वह अनादि सांत काल तक भाग्याधीन रहता है। सम्यक्त्व के साथ-साथ सम्यक् पुरुषार्थ का शुभारम्भ होता है। इसलिए सम्यग्दृष्टि आंशिक रूप से स्वपुरुषार्थ से दैव की शक्ति क्षीण करते-करते चोदहवें गुणस्थान के चरम समय में दैव की शक्ति को विध्वंस करके सम्पूर्ण पुरुषार्थ स्वरूप मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। असम्यक् पुरुषार्थ से दैव बनते हैं और सम्यक् पुरुषार्थ से दैव का नाश होता है। इसलिये पुरुषार्थ की शक्ति कथञ्चित् दैव की शक्ति से अधिक है।

''सुखी होने के धार्मिक एवं वैज्ञानिक कारण''

(चालः छोटी-छोटी गैया...., शत-शत वन्दन...)

सुखी होने के कारणों को जानो, स्वयं के अन्दर उसे पहचानो।
प्रमुख कारण आत्मा ही जानो, विकार भाव दुःख ही मानो।। ध्रु.।।
सच्चिदानन्द है आत्मस्वभाव, सत्य-शिव-सुन्दर आनन्द भाव।
राग-द्वेष-मोह दुःख स्वभाव, पापकर्म से दुःख ही सम्भव।।
पावन भाव से सुख उपजे, पुण्यकर्म भी कारण दूजे।
दान दया सेवा परोपकार, ध्यान-अध्ययन श्रेष्ठ विचार।।
विज्ञान से अभी सिद्ध हुआ है, हैप्पी हार्मोंस सिद्ध हुए हैं।
डोपामाइन व सेरोटोनिन, आक्सीटोसिन व एण्ड्राफिन।।
कार्टिसोल हार्मोन्स उत्पन्न होने से, प्रसन्न भाव होता मन में।
डोपामाइन उत्पन्न होता अच्छे काम से, महान् लक्ष्य के प्राप्त होने से।।
सम्मान से होता सेरोटोनिन स्राव, जिससे विश्वास होता उद्भव।
अविश्वास या हीनभावना से, विपरीत प्रभाव होता स्राव में।
सुरक्षात्मक विश्वास भाव से, ऑक्सीटोसिन का होता स्राव है।
इसी भाव के विपरीत होने से, विपरीत स्राव होता दिमाग में।।

एण्ड्रोफिन स्राव होता हँसी से, प्राकृतिक निश्चलमय हँसी से।
दर्द समय में भी स्राव होता, जिससे दर्द कम हो जाता।
कार्टिसोल प्रेरित करता भाव को, खतरों से अगाह करता मन को।
धर्म में वर्णन विस्तार हुआ, विज्ञान में अभी कुछ शोध हुआ।
'धर्मसर्वसुखाकरो' बताया गया, संक्षिप्त में वर्णन 'कनक' किया।।

अणुव्रतमहाव्रतादि की विराधना का प्रायश्चित

अणुवयमहव्वया जे जमणियमासीलसहगुरुदिण्णा।
जे जे विराहिदा खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज।। (13) (कल्याण.)
गुरु प्रदत्त जो अणुव्रत महाव्रत यम-नियम सप्त शील भेद।
जो-जो विराधना की मैंने वे सभी मिथ्या हो मेरे दुष्कृत।।

दोष परिशोधन के उपाय-

विनिन्दनालोचनगर्हणैरहं, मनो वचः काय कषाय निर्मितम्।
निहन्मि पापं भवदुःखकारणं, भिषग्विणं मन्त्र गुणैरिवाखिलम्।।
(7) भा.द्वा.

I destroy sin, from which all ills in the cosmos processed, whether committed through mind, or word, or body, or passion by self analysis self censure, and repentance just as a doctor completely removes all effects of poision by the force of incantion.

भावार्थ-यथा मान्त्रिक वैद्य मन्त्र के गुणों के द्वारा सम्पूर्ण विष को दूर कर देता है तथा मैं मन वचन-काय तथा कषाय से निर्मित पाप जो कि संसार के दुःख के कारणभूत हैं उसे निन्दा, गर्हा, आलोचना के द्वारा नष्ट करता हूँ।

प्राप्त शिक्षाएँ-जिस प्रकार शरीर में विष प्रवेश करने पर पीड़ा से लेकर मृत्यु तक सम्भव है परन्तु मन्त्र, औषधि आदि के द्वारा उस विष को दूर/नष्ट करके स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं उसी प्रकार मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमोदना तथा क्रोध-मान-माया-लोभ से उत्पन्न पाप (कर्म) जो संसार के विभिन्न दुःखों के कारण हैं उसे दूर/नष्ट करके सांसारिक दुःखों को भी नष्ट करके अक्षय, अनन्त सुख प्राप्त कर सकते हैं। स्व-दोष को दूर करने के लिए निन्दा (आत्म साक्षी पूर्वक स्वयं-

दोष विश्लेषण) गर्हा (गुरु-साक्षी पूर्वक स्व दोष विश्लेषण), आलोचना करना चाहिए। यह आध्यात्मिक शुद्धिकरण, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, सामाजिक-न्यायिक प्रक्रिया से भी सरल-सहज-शुद्ध गुणकारी-चिरस्थायी-सर्वदोषनिवारक तथा शारीरिक-मानसिक-सामाजिक-आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए अभौतिक रामबाण औषधि है।

विविध स्तरों के दोष-

अतिक्रमं यद्विमतेर्व्यतिक्रमं, जिनातिचारं सुचरित्र कर्मणः।
व्यधामनाचार मपि प्रमादतः प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये।। (8)

O word-victor I purify myself by performing expurgation for all foolish deviations from recitutde due to indifference whether it be Atikarma Vyatikarma, Atichara and Anachara.

भावार्थ-हे जिनेन्द्र! मैंने कुबुद्धि से सुचारित्र रूपी क्रिया का प्रमाद के कारण जो अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार किया हो उसकी शुद्धि के लिए प्रतिक्रमण करता हूँ।

प्राप्त शिक्षाएँ-किसी भी अन्तरङ्ग एवं बहिरंग कारणों के वश से प्रमाद जनित भाव-व्यवहारों से ज्ञात-अज्ञात से भी कुछ न कुछ दोष उत्तम चारित्र में लगना सम्भव है। ऐसी परिस्थिति में उस दोष को दूर करना प्रत्येक सुखकामी, विकास को चाहने वाले महानुभावों का नैतिक-आध्यात्मिक कर्त्तव्य है क्योंकि जब तक जीव छद्मस्थ (असर्वज्ञ, अवीतरागी, घाती कर्म से युक्त) रहता है तब तक पूर्व के उपार्जित कर्म के उदय से दोष उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इसलिए आध्यात्मिक प्रगति, मानसिक शान्ति के लिए शारीरिक व मानसिक रोग दूर करने के लिए सामाजिक प्रतिष्ठा/सम्मान/शुद्धता आदि के लिए प्रतिक्रमण सहज सरल आध्यात्मिक उपाय है।

विविध स्तरों के दोषों के कारण-

क्षतिं मनः शुद्धि विधेरतिक्रमं व्यतिक्रमं शील व्रतेर्विलङ्घनम्।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं-वदन्त्यनाचार मिहाति सक्तताम्।। (9)

Atikarma is the defiling of the pure condition of mind, and Vyatikarma is transgression of pure mental action, Atichara, o

Lord! is indulgence in sensual desires, and Anachara is defined as excessive attachments to them.

भावार्थ-हे प्रभु! इस लोक में (1) मानसिक शुद्ध की विधि में क्षति होने को अतिक्रम, (2) शीलव्रत (सदाचार) के उल्लङ्घन को व्यतिक्रम, (3) विषयों में प्रवृत्ति करने को अतिचार, (4) विषयों में अत्यन्त आसक्त होने को अनाचार कहते हैं।

प्राप्त शिक्षाएँ-आत्मिक शुद्धि के इच्छुक दोषों के विभिन्न स्तर को जानता है/जानना चाहिए। क्योंकि दोषों के स्तर डिग्री/मात्रा के अनुसार ही उसको दूर करने के उपाय भी तदनुकूल होते हैं। ''जो पिण्डे सो ब्रह्माण्डे'', ''यथा मति तथा गति'' के अनुसार दोष या गुण का अंकुर मन-भाव से ही होता है और विकास क्रम से वृद्धिगत होता है। यदि बीज का अभाव ही हो या अंकुर होने ही नहीं दिया जाए तो आगे का विकास क्रम भी सम्भव नहीं है। इसलिए दोष के विकास क्रम को नहीं चाहने वाले महानुभाव प्रथमतः मानसिक अशुद्धता को ही उत्पन्न नहीं करता है/उत्पन्न होने को ही रोक देता है।

इससे विपरीत पापी/दोषी/अन्यायी/अत्याचारी/दूराचारी/आतंकवादी मन में उत्पन्न अशुद्धाता को नहीं रोकता है/रोकना नहीं चाहता है/या जान-बूझकर बढ़ाता है। मन में अशुद्धता का उत्पन्न होना ही (1) अतिक्रम है।

इस दोष के विकासक्रम में सदाचार का उल्लङ्घन करके (2) व्यतिक्रम के स्तर पर पहुँच जाता है। पुनः उस स्तर से बढ़ता हुआ विषयों (क्रोध-मान-माया-लोभ, हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य, परिग्रह आदि) में प्रवृत्त करता है। इस स्तर को (3) अतिचार कहते हैं।

''अभ्यास से गुणवत्ता में वृद्धि होती है'' के नियमानुसार अतिचार में प्रवृत्त करता-करता दोषों की मात्रा को बढ़ाते हुए दोष के चरमस्तर में पहुँच जाता है जिस स्तर को (4) अनाचार कहते हैं। इस अवस्था में विषयों में अत्यन्त आसक्ति होती है। इस विभिन्न स्तरों को समझने के लिए धूम्रपान, मद्यपान, नशीली वस्तुओं के सेवन करने वालों के विभिन्न स्तरों की प्रकृति-प्रवृत्ति उदाहरण के योग्य है।

ज्ञानार्जन (वाचना) सम्बन्धी दोष संशोधन

यदर्थमात्रा पदवाक्यहीनं मया-प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तम्।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी-सरस्वती केवलबोधलब्धिम्।। (10)

O Goddess Saraswati! pray excuse me if through inattention, I have uttered anything wanting in meaning, spelling word, or sense and grant me the boon of knowledge absolute.

भावार्थ-हे माता सरस्वती देवी! यदि मेरे द्वारा प्रमाद से अर्थ, मात्रा पद, वाक्य से हीन कुछ भी कहा गया हो तो मुझे उस सम्बन्धी क्षमा प्रदान करके केवलज्ञान की उपलब्धि प्रदान करें।

प्राप्त शिक्षाएँ-ज्ञानार्जन के अनेक (8) शुद्धियाँ हैं। यथा (1) काल शुद्धि (2) विनय शुद्धि (3) उपधान शुद्धि (4) बहुमान शुद्धि (5) अनिह्नव शुद्धि (6) व्यञ्जन शुद्धि (7) अर्थ शुद्धि (8) उभय शुद्धि। इन शुद्धि से युक्त ज्ञानार्जन आत्मकल्याण के लिए, केवलज्ञान प्राप्त करने के लिए कारक बनता है। अशुद्धि से सही ज्ञानार्जन नहीं हो पाता है, ज्ञानावरणीय कर्म का बन्ध होता है जिससे ज्ञान विकृत होता है, मन्द होता है। अतः यदि प्रमाद से भी अशुद्धि हो जाती है तो उसे दूर करना चाहिए। यदि शुद्धता से ज्ञानार्जन करते हैं और प्रमाद से विस्मरण भी हो जाता है तो वह ज्ञान का संस्कार पर भव में केवलज्ञान उत्पन्न करने के लिए सहायक बनता है।

इससे शिक्षा मिलती है कि केवल अध्ययन ही पर्याप्त नहीं है, अपितु क्या अध्ययन करना और कैसे अध्ययन करना अधिक महत्वपूर्ण है। जैसा कि सही फल प्राप्त करने के लिए सही बीज, काल, भूमि, पानी, सूर्य-किरण, वायु, खाद आदि चाहिए वैसा ही ज्ञान रूपी फल प्राप्ति के लिए उपरोक्त 8 शुद्धियाँ भी अनिवार्य हैं।

ज्ञानार्जन के विविध महान् उद्देश्य

बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः।
चिन्तामणि चिन्तितवस्तुदाने-त्वां वन्द्यमानस्य ममास्तु देवि।। (11)

O Goddes, thou art like the jewel Chintamani is granting all desired objects. May I, by worshipping the obtain wisdom. control,

control of mind, purity of though, realization of my own self and perfect happiness ever-lasting.

भावार्थ-माँ देवी सरस्वती! आप चिन्तित वस्तु को देने में चिन्तामणि के समान आपको वन्दन करने वाले मुझे बोधि, समाधि, परिणाम-विशुद्धि, स्वात्मा की उपलब्धि, मोक्ष सुख की सिद्धि होवे।

प्राप्त शिक्षाएँ-ज्ञानार्जन/स्वाध्याय के प्रमुख उद्देश्य जानकारी के संग्रह, ख्याति, पूजा, लाभ, धनार्जन, परीक्षा में उत्तीर्ण, प्रसिद्धि, अहंवृति, दिखावा, भाषण देना आदि नहीं है अपितु इससे विपरीत सत्य-तथ्य का परिज्ञान, आत्मलीनता रूपी समाधि, भाव की परिशुद्धता, समता, निस्पृहता, निर्लोभता, संतोष, सहिष्णुता, वीतरागता, मोक्ष ही ज्ञानार्जन/स्वाध्याय के यथार्थ फल है।

अविद्याभिदुरं ज्योतिः, परं ज्ञानमयं महत्।
तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं, तद् दृष्टव्यं मुमुक्षुभिः।। (49)

अविद्या को दूर करने वाली महान् उत्कष्ट ज्ञान ज्योति है। सो मुमुक्षुओं (मोक्षाभिलाषियों) को उसी के विषय में पूछना चाहिए और उसी की वांछा करनी चाहिए और उसे ही अनुभव में लाना चाहिए।

प्रकृष्ट सिद्धि=प्रसिद्धि=सिद्धि स्वात्मोपलब्धिः अर्थात् स्व-आत्मा की पूर्ण उपलब्धि ही प्रसिद्धि/सिद्धि/मोक्ष है।

इस परमोत्कर्ष अवस्था/पूर्ण अवस्था में आध्यात्मिक अनन्त गुणों के साथ-साथ ईश्वरत्व/प्रभुत्व आदि गुण शुद्ध रूप में, सहज रूप में, स्वभाव रूप में प्रगट होते हैं और उसका अनुभव शुद्ध जीव करते हैं।

भाव की अनन्तशक्ति

(भाव से ही संसार भ्रमण व मोक्षगमन)

(चाल : देहाचि तिजोरी, जय हनुमान, यमुना किनारे)

भाव की शक्तियों को पहचानो, भाव से संसार व मोक्ष भी जानो।
अशुभ-शुभ व शुद्ध भी जानो, संख्यात असंख्यात अनन्त मानो।।(1)
भाव से निगोदिया होते महान् पापी, क्षुद्र शरीर सहित होने पर भी।
स्थूल पंचपाप सप्त व्यसन रिक्त भी, असिमसिकृषि वाणिज्य रिक्त भी।(2)

भाव कलंक प्रचुर होने से ही, अनादिकाल से निगोदवास ही।
एक श्वास में छत्तीस बार जन्म, मरण, अनादि(अनन्त) काल से नित्यनिगोद वास ही।(3)
ऐसे जीव नारकी क्रूर सिंह से भी, अधिक पापी है मांस भक्षण रिक्त भी।
तथा ही यथायोग्य अन्यान्य जीव भी, पापी होते स्व-स्वभाव कलंक से ही।।(4)
इससे विपरीत क्षायिक सम्यग्दृष्टि, राम पाण्डव चक्रवर्ती आदि भी।
युद्ध आदि करके भी निगोद सम न पापी, तद्भव में स्वर्ग, मोक्ष गये भी।।(5)
सप्त व्यसनी भी गये स्वर्ग मोक्ष, पशु-पक्षी भी गये हैं स्वर्ग तक।
युद्ध क्षेत्र में भी बने है मुनि तक, युद्ध के अनन्तर साधु बनते सहस्र तक।।(6)
केवल साधु निंदा से बने कुष्ठ रोगी, निंदानुमोदना से बने कुष्ठ रोगी।
साधु निंदा से जल मरे साठ हजार, निंदा प्रतिकार से बने भागीरथी वीर।।(7)
महामत्स्य सम तंदुल मत्स्य नारकी बना, एक भी जीव न खाये (न मारे) सप्तम नरक गया।
यमपाल चांडाल भी स्वर्ग सिधारा, सिंह क्रमशः भगवान् वीर बना।।(8)
रागद्वेष मोह क्रोध काम मद से, भाव हिंसा होती बिना जीव हिंसा से।
जहाँ प्रमाद वहाँ निश्चय हिंसा, जीव मरे या न मरे निश्चय हिंसा।।(9)
जहाँ प्रमाद वहाँ पाँचों ही पाप, निश्चय से वहाँ होते सप्त व्यसन।
प्रमाद रहित जहाँ वहाँ न पंच पाप, न वहाँ सप्त व्यसन व सभी फैशन।।(10)
अन्तरंग शुद्धि से अवश्य बाह्य शुद्धि, बाह्य शुद्धि से बढे अन्तरंग शुद्धि।
किन्तु बाह्य शुद्धि से ही नहीं अन्तः शुद्धि, बाह्य शुद्धि से भजनीय अंतरंग शुद्धि।।(11)
ये हैं परम आध्यात्मिक रहस्य, कर्म सिद्धान्त गुणस्थान रहस्य।
अंतरंगशुद्धि बिन बाह्य धर्म भी व्यर्थ, अन्तरंग शुद्धि हेतु 'कनक' करे पुरुषार्थ।।(12)

गलि.पुन. काँ दि. 11-3-2020 रात्रि 9:18

संदर्भ-

भावो हि पढ़मलिंगं, च ण दव्वलिंगं जाण परमत्थं।
भावो कारणभूदो, गुणदोसाणं जिणा विंति।।2।। भाव.पाहु.

निश्चयसे भाव जिनदीक्षा का प्रथम लिंग है, द्रव्यलिंग को तू परमार्थ मत जान, भाव ही गुणदोषों का कारण है ऐसा जिनदेव कहते हैं।

भावविसुद्धिणिमित्तं, बाहिरगंथस्स कीरए चाओ।

बाहिरचाओ विहलो, अब्भंतरगंथजुत्तस्स।।3।।

भावशुद्धि के कारण ही बाह्यपरिग्रह का त्याग किया जाता है। जो आभ्यंतर परिग्रह से युक्त है उसका बाह्य परिग्रह त्याग निष्फल है।

भावरहिओ ण सिज्झइ, जइ वि तवं चरइ कोडिकोडीओ।

जम्मंतराइ बहुसो, लंबियहत्थो गलियवथो।।4।।

भावरहित जीव यदि करोड़ों जन्मतक अनेक बार हाथ लटका कर तथा वस्त्रों का त्याग कर तपश्चरण करें तो भी सिद्ध नहीं होता।

परिणाममि असुद्धे, गंथे मुंचेइ बाहिरे य जई।

बाहिरगंथच्चाओ, भावविहूणस्स किं कुणइ।।5।।

यदि कोई यति भाव अशुद्ध रहते हुए बाह्य परिग्रह का त्याग करता है तो भावहीन यति का वह बाह्य परिग्रहत्याग क्या कर सकता है? कुछ नहीं।

जाणहि भावं पढमं, किं ते लिंगेण भावरहिएण।

पंथिय शिवपुरिपंथं, जिणउवइट्ठं पयत्तेण।।6।।

हे पथिक! तू सर्वप्रथम भाव को ही जान। भावरहित वेष से तुझे क्या प्रयोजन? भाव ही जिनेंन्द्र देव के द्वारा प्रयत्नपूर्वक शिवपुरीका मार्ग बतलाया गया है।

भावरहिएण सपुरिस, अणाइकालं अणंतसंसारे।

गहिउज्झियाइं बहुसो, बाहिरणिग्गंथरूवाइं।।7।।

हे सत्पुरुष! भावरहित तूने अनादिकाल से इस अनंत संसार में बाह्य निर्ग्रंथ रूप -- द्रव्यलिंग अनेक बार ग्रहण किये हैं और छोड़े हैं।

भीसणणरयगईए, तिरियगईए कुदेवमणुगईए।

पत्तोसि तिव्वदुक्खं, भावहि जिणभावणा जीव।।8।।

हे जीव! तूने भयंकर नरकगति में, तिर्यंचगति में, नीच देव और नीच मनुष्यगति में तीव्र दुःख प्राप्त किये हैं, अतः तू जिनेंद्रप्रणीत भावना का चिंतवन कर। यद्यपि बाहुबली स्वामी शरीरादि से विरक्त होकर आतापन से विराजमान थे परंतु 'मैं भरत की भूमि पर खड़ा हूँ' इस प्रकार सूक्ष्म मान विद्यमान रहने से केवलज्ञान प्राप्त

नहीं कर सके थे। जब उनके हृदय से उक्त प्रकार का मान दूर हो गया था तभी उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ था।

इससे सिद्ध होता है कि अंतरंग की उज्ज्वलता के बिना केवल बाह्य त्याग से कुछ नहीं होता।

महुपिंगो णाय मुणी देहा हारादिचत्तवावारो।
सवणत्तणं ण पत्तो, णियाणमित्तेण भवियणुव।।45।।

हे भव्य जीवों के द्वारा नमस्कृत मुनि! शरीर तथा आहार का त्याग करने वाले मधुपिंग नामक मुनि निदानमात्र श्रमणपने को प्राप्त नहीं हुए थे।

अण्णं च वसिट्ठमुणी, पत्तो दुक्खं णियाणदोसेण।
सो णत्थि वासठाणो, जत्थ ण ढुरुढुल्लिओ जीवो।।46।।

और भी एक वशिष्ठ मुनि निदान मात्र से दुःख को प्राप्त हुए थे। लोक में वह निवास स्थान नहीं है जहाँ इस जीव ने भ्रमण न किया हो।

सो णत्थि तं पएसो, चउरासीलक्खजोणिवासम्मि।
भावविरओ वि सवणो, जत्थ ण ढुरुढुल्लिओ जीवो।।47।।

हे जीव! चौरासी लाख योनि के निवास में वह एक भी प्रदेश नहीं है जहाँ अन्य की बात जाने दो, भावरहित साधु ने भ्रमण न किया हो।

भावेण होइ लिंगी, ण हु लिंगी होइ दव्वमित्तेण।
तम्हा कुणिज्ज भावं, किं कीरइ दव्वलिंगेण।।48।।

मुनि भाव से ही जिनलिंगी होता है, द्रव्यमात्र से जिनलिंगी नहीं होता। इसलिए भावलिंग ही धारण करो, द्रव्यलिंग से क्या काम सिद्ध होता है?

दंडअणयरं सयलं, डहिओ अब्भंतरेण दोसेण।
जिणलिंगेण वि बाहू, पडिओ सो रउरवे णरये।।49।।

बाहु मुनि जिनलिंग से सहित होने पर भी अंतरंग के दोष से दंडक नामक समस्त नगर को जलाकर रौरव नामक नरक में उत्पन्न हुआ था।

अवरो वि दव्वसवणो, दंसणवरणाणचरणपब्भट्ठो।
दीवायणुत्ति णामो, अणंतसंसारिओ जाओ।।50।।

और भी एक द्वैपायन नामक द्रव्यलिंगी श्रमण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से भ्रष्ट होकर अनन्तसंसारी हुआ। भावलिंगी मुनि विचार करता है कि मैं निर्ममत्व भाव को प्राप्त होकर ममता बुद्धि को छोड़ता हूँ और आत्मा ही मेरा आलंबन है, इसलिए अन्य समस्त पदार्थों को छोड़ता हूँ।।

आदा खु मज्झ णाणे, आदा मे संवरे जोगे।
आदा पच्चक्खाणे, आदा मे संवरे जोगे।।58।।

निश्चय से मेरे ज्ञान में आत्मा है, दर्शन और चारित्र में आत्मा है, प्रत्याख्यान में आत्मा है, संवर और योग में आत्मा है।

एगो मे सस्सदो अप्पा, णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा।।59।।

नित्य तथा ज्ञान दर्शन लक्षणवाला एक आत्मा ही मेरा है, उसके सिवाय परद्रव्य के संयोग से होने वाले समस्त भाव बाह्य हैं- मुझसे पृथक् हैं।

भावेह भावसुद्धं, अप्पा सुविसुद्धणिम्मलं चेव।
लहु चउगइ चइऊणं, जइ इच्छसि सासयं सुक्खं।।60।।

हे भव्य जीवों! यदि तुम शीघ्र ही चतुर्गति को छोड़कर अविनाशी सुख की इच्छा करते हो तो शुद्ध भावों के द्वारा अत्यंत पवित्र और निर्मल आत्मा की भावना करो।

जो जीवो भावंतो, जीवसहावं सुझावसंजुत्तो।
जो जरमरणविणासं, कुडइ फुडं लहइ णिव्वाणं।।61।।

जो जीव अच्छे भावों से सहित होकर आत्मा के स्वभाव का चिंतन करता है वह जरामरणका विनाश करता है और निश्चय ही निर्वाण को प्राप्त होता है।

जीव ज्ञानस्वभाववाला तथा चेतना सहित है ऐसा जिनेंद्र भगवान् ने कहा है। वह जीव ही कर्मक्षय का कारण जानना चाहिए। जिसके मन में जीव का सद्भाव है उसका सर्वथा अभाव नहीं है। वे शरीर से भिन्न तथा वचन के विजय से परे होते हैं।

अरसमरूवमगंधं, अव्वत्तं चेयणागुणमसद्दं।
जाणमलिंगग्गहणं, जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।।64।।

जो रस रूप गन्ध रहित है, अव्यक्त है, चेतना गुण से युक्त है, शब्द रहित

है, इन्द्रियों के द्वारा अग्राह्य है और आकार रहित है उसे जीव जान। जो मुनि पुण्य का श्रद्धान करता है, प्रतीति करता है, उसे अच्छा समझता है और बार-बार उसे धारण करता है उसका यह सब कार्य भोग का ही कारण है, कर्मों के क्षय का कारण नहीं है।

अप्पा अप्पम्मि रओ, रायादिसु सयलदोसपरिचत्तो।
संसारतरणहेदू, धम्मोत्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं।।85।।

रागादि समस्त दोषों से रहित होकर जो आत्मा आत्मस्वरूप में लीन होता है वह संसार समुद्र से पार होने का कारण धर्म है ऐसा श्री जिनेंद्रदेव ने कहा है।

अह पुण अप्पा णिच्छदि, पुण्णाइं करेदि णिरवसेसाइं।
तह वि ण पावदि सिद्धिं, संसारत्थो पुणो भणिदो।।86।।

जो मनुष्य आत्मा की इच्छा नहीं करता-आत्मस्वरूप की प्रतीति नहीं करता वह भले ही समस्त पुण्यक्रियाओं को करता हो तो भी सिद्धि को प्राप्त नहीं होता है। वह संसारी ही कहा गया है।

एएण कारणेण य, तं अप्पा सद्दहेहि तिविहेण।
जेण य लभेह मोक्खं, तं जाणिज्जह पयत्तेण।।87।।

इस कारण तुम मन वचन काय से उस आत्मा का श्रद्धान करो और यत्नपूर्वक उसे जानो जिससे कि मोक्ष प्राप्त कर सको।

मच्छो वि सालिसिक्थो, असुद्धभावो गओ महाणरयं।
इय णाउं अप्पाणं, भावह जिणभावणं णिच्चं।।88।।

अशुद्ध भावों का धारक शालिसिक्थ नामका मच्छ सातवें नरक गया ऐसा जानकर हे मुनि! तू निरंतर आत्मा में जिनदेव की भावना कर।

बाहिरसंगच्चाओ, गिरिसरिदकंदराइं आवासो।
सयलो णाणज्झयणो, णिरत्थओ भावरहियाणं।।89।।

भावरहित मुनियों का बाह्य परिग्रह का त्याग, पर्वत, नदी, गुफा, खोह आदि में निवास और ज्ञानके लिए शास्त्रों का अध्ययन यह सब व्यर्थ है।

भंजसु इंदियसेणं, भंजसु मणोमक्कडं पयत्तेण।
मा जणरंजणकरणं, बाहिरवयवेस तं कुणसु।।90।।

तू इंद्रियरूपी सेना को भंग कर और मनरूपी बंदर को प्रयत्नपूर्वक वश कर। हे बाह्यव्रत के वेष को धारण करने वाले! तू लोगों को प्रसन्न करने वाले कार्य मत कर।

जग सुहितकर सब अहितहर सुगुरुवचन V/S जग अहितकर सब सुहितहर कुगुरुवचन

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल : 1. देहाची तिजोरी... 2. आत्मशक्ति... 3. हरिगीत छन्द...)

जग सुहितकर सब अहितहर, श्रुतिसुखद सब संशय हरै।
भ्रमरोगहर जिनके वचन, मुखचन्द्र तैं अमृत झरैं।। छ.ढा.।।
गुरु होते विश्वबन्धुत्व वाले, अतः गुरु देते उपदेश जग को।
जग के सभी जीव सुखी होवे, सब अहित दूर होवे सभी जीव के।।
सब जीव को मानते स्वआत्मसम, सभी में हैं शक्ति परमात्मा सम।
शुद्ध दृष्टि से देखते सभी को, ''सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया'' से।।(1)
सभी जीव शुद्धबुद्धआनन्द बने, ऐसी भावना से देते वे उपदेश।
इस हेतु सभी संशय भ्रम को, दूर करने हेतु उपदेश।।
ऐसा ही उपदेश अमृत है, वह मुख ही मुखचन्द्र है।
ऐसा गुरु ही तरण-तारण है, ऐसा गुरु ही ब्रह्मा विष्णु महेश है।।(2)
शिष्यों के निर्माता से ब्रह्मा है, शिष्यों के पालक से विष्णु है।
शिष्यों के अज्ञाननाशक महेश, माता पिता बन्धु भी गुरु ही है।।
हितकर वचन ही प्रमुख है, मित प्रिय वचन गौण है।
समझाने हेतु बोलते अमित(अधिक) भी, अनुशासन हेतु अप्रिय (कठोर) भी है।।(3)
अन्यथा जो गुरु न वे सच्चा गुरु, शिष्यों के जो आत्महित न करे।
स्व-ख्याति पूजा लाभ हेतु ही, जो शिष्यों का दुरुपयोग करे।।

हित रहित प्रिय वचन बोले, ठग चोर वेश्या सम मधुर बोले।
गोमुखव्याघ्र व बगुला सम,''मुहँ में प्रभुनाम बगल में छूरी'' धरे।।(4)
ढोंग पाखण्ड मायाचारी द्वारा, मंत्र यंत्र तंत्र टोना टोटका करे।
तप त्याग ज्ञान वैराग्य ब्याज से, लोकसंग्रह व धनार्जन करे।।
भोगविलास व ठाठबाट में, विविध चमत्कार के ढोंग से।
कायक्लेश रूपी विविध स्वांग से, ठगते अन्य को नाना ब्याज (माया) से।।(5)
आत्मशुद्धि बिना प्रसिद्धि से, वीतराग बिना वित्तराग से।
मोक्षपथ बिना पंथमोह में, सत्ता-सम्पत्ति व वर्चस्व में।।
विघटन करते हैं संगठन से, भ्रष्ट हो जाते विश्वबन्धुत्व से।
भय भ्रम संशय फैलाते जग में, गोमुखव्याघ्र से जहर झरैं।।(6)
समताधारक निस्पृह साधक, उदार आध्यात्मिक गुरु महान्।
विषमताधारक धन जन संग्राहक, अनुदार पंथाग्रही गुरु दुर्जन।।
गुरुपावक गुरुगुणधारक, स्वपरविश्वहितकारक।
गुरु वन्दनीय तद्गुणलब्धये, सद्गुरुउपासक ''सूरी कनक''।।(7)

झूठ वचन से हिंसा होती

सर्वस्मिन्नप्यास्मिन्, प्रमत्त योगैक हेतु कथनं यत्।
अनृत वचनेऽपि तस्मान्नियतं हिंसा समवतरति।।(99) पु.सि.

Pramatta Yoga, the one (Chief) cause (of Himsa) is present in all these (speeches) here. Therefore Himsa comes in, certainly in falsehood also.

उपर्युक्त समस्त कथन से सिद्ध होता है कि समस्त अनृत वचन में प्रमत्त योग रूप प्राण व्यपरोपणात्मक हिंसा होने से समस्त असत्य वचन में हिंसा का अवतरण होता है।

अप्रमत्त परिणाम में हिंसा नहीं

हेतौ प्रमत्त योगे, निर्दिष्टे सकल वितथ-वचनानाम्।
हेयाऽनुष्ठानादेः अनुवदनं भवति नासत्यम्।।(100)
प्रमत्तयोगे सकल-वितथ वचनानां हेतौ निर्दिष्टे सति हेयाऽनुष्ठानादेः

अनुवदनं असत्यं न भवति। प्रमत्त योगे सत्यपि सकलाश्च ते वितथ वचना-असत्य-वचनाश्च तेषां हेतौ कारणे निदिष्टे सति, हेयस्य त्याज्यस्य अनुष्ठानं कथनं तदेव आदिर्यस्य तस्य अनुवदनं कथनं असत्यं न भवति। भावार्थोऽयम्। प्रमत्तयोगेऽपि सत्यपि त्याज्य वस्तु कथने असत्यं न। तथा शिष्यस्य मार्ग-भ्रष्टस्य क्रूरवचनेनाऽपि शिष्या प्रदानं दीयते। यदा तदा सत्यमेव भवति। असत्यं न भवतीत्यर्थ।

Pramatta Yoga having been stated to be the cause of all false speech a sermon preaching the renouncement (of vices) and the performance of religious duties, would not be a falsehood, (even it if should be distateful, or cause mental pain of the listener).

व्याख्या-भावानुवादः- प्रमत्त योग समस्त असत्य वचन के लिए कारण होने से हेय अनुष्ठान हिताहित का कथन करने पर असत्य नहीं होता है। यथा- मार्ग भ्रष्ट शिष्य को गुरु कठोर अनुशासनात्मक वचन बोलते हैं तथापि यह वचन असत्य नहीं है, हिंसात्मक नहीं है क्योंकि इसमें गुरु का भाव रहता है कि शिष्य कुमार्ग से हटकर सुमार्ग पर चले। ऐसी परिस्थिति में गुरु के भाव में प्रमत्त अथवा हिंसात्मक परिणाम न होकर शुभ परिणाम होता है। इसलिए ऐसे हितकर परन्तु कठोर वचन भी अहिंसात्मक वचन ही हैं।

समीक्षाः- सामान्यतः हित मित प्रिय वचन को सत्य वचन कहा जाता है। परन्तु गुरु के लिए मित या प्रिय वचन की अनिवार्यता नहीं है। उनके लिए हित वचन की अनिवार्यता है। कहा भी हैः-

रूसउ वा परो मा वा, विसं वा परियतउ।
मासियव्वा हिया भासा सपक्खगुण करिया।।

जिसे उपदेश दिया जाता है, वह चाहे रोष करे, चाहे वह उपदेश को विष रूप से समझे परन्तु उपदेशक को हितरूप वचन अवश्य कहना चाहिए।

न भवति धर्मः श्रोतुः सर्वस्यैकान्ततो हित श्रवणात्।
ब्रुवतोऽनुग्रह बुध्या वक्तुस्त्वेकान्ततो भवति।।

उपदेश सुनने वाले सभी श्रोताओं को पुण्य नहीं होता है। क्योंकि जो उपदेश अच्छी भावना से सुनता है उसे पुण्य होता है। जो शुभ भावना से नहीं सुनता है उसे पुण्य नहीं होता है। परन्तु जो परोपकार की भावना से अनुग्रह बुद्धि से हितकर उपदेश करता है उसे अवश्य ही पुण्य होता है।

धर्मनाशेः क्रियाध्वंसे सुसिध्दांतार्थ विप्लवे।
अपृष्टैरपि वक्तव्यं तत्स्वरूप प्रकाशने।।

जब जहाँ सत्य धर्म का नाश होता है, यथार्थ क्रिया का विध्वंस होता हो समीचीन सिद्धान्त अर्थ का अपलाव/विनाश होता हो उस समय सम्यक् धर्म, क्रिया और सिद्धान्त के प्रचार-प्रसार सुरक्षा के लिए बिना पूछे भी सज्जनों को बोलना चाहिए। क्योंकि इससे धर्म की रक्षा होती है जिससे स्व-पर, राष्ट्र, विश्व की सुरक्षा समृद्धि होती है।

अवद्य मुक्ते पथि यः प्रवर्तते पवर्तयत्यन्य जनं च निः स्पृहः।
स एव सेव्यः स्वहितैषणा गुरुः स्वयं तरंस्तारयितुक्षमः परम्।।13।। सिंदूर प्र.

आत्म हित के चाहने वाले पुरुषों को वह गुरु ही सेवन के योग्य है। वह कौन? जो हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह रूप समरंभ समारम्भ, आरम्भ का मन, वचन, काय, कृत, कारित-अनुमोदना से त्याग करते हैं और जो स्वयं को धर्म मार्ग में प्रवर्तन कराते हैं तथा अन्य जीवों को धर्म मार्ग में लगाते हैं। अंतरंग और बाह्य परिग्रह की इच्छा रहित होते हैं। गुरु स्वयम् को धर्म रूपी नौका में बैठकर पार लगाते हैं तथा दूसरों को भी भवार्णव से पार कराने में समर्थ हैं। कहा भी है-

हीणस्स विशुद्ध परूवगस्स पाण हियस्स कायव्वं।
जण चित्तग्गाहत्थं करंति लिंगाविसेसं तु।।1।।

अर्थ- जो चरित्र से हीन है वह विशुद्धता से रहित है, जो ज्ञानादि से रहित है जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चरित्र से हीन हैं वे सब कुगुरु हैं। यद्यपि वे दूसरों के चित्त को शीघ्र ही आकर्षित करते हैं परन्तु-

दंसण भट्टा भट्टा दंसण भट्टस्य णत्थि णिच्वाणं।
सिज्झति चरित्र भट्टा दंसण भट्टा ण सिज्झंति।।2।।

सम्यग्दर्शन को जिन्होंने प्राप्त नहीं किया है वे सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हैं ऐसा समझना

क्योंकि सम्यग्दर्शन के अभाव में ज्ञान चारित्रादि की प्राप्ति नहीं होगी तो मोक्ष की प्राप्ति कैसे होगी। जिनका सम्यग्दर्शन विशुद्ध है, ज्ञान भी है परन्तु चारित्र से भ्रष्ट हैं वे जब चारित्र को धारण करेंगे तभी वे निर्वाण सुख को प्राप्त कर सकेंगे। दर्शन बिना आराधना की सिद्धि नहीं है। इस कारण से जैसा भगवान् सर्वज्ञ ने कहा वैसा कथन करने वाला जिनाज्ञा का धारक हो वह गुरु आदर करने योग्य है। जमाली आदि जो कुलिंगी हैं वे कुगुरु है इसलिए वे सेवन करने योग्य नहीं है। जो स्वच्छन्दता से भ्रमण करते हैं और जिन मार्ग के विपरीत भाषण करते हैं, जो अपनी मति के अनुसार कल्पित सूत्रों को रचने वाले हैं; जिनाज्ञा का पालन न करने वाले मायावी हैं वे सब कुगरु हैं। इस प्रकार हे भव्य प्राणी! इस प्रकार जानकर अपने मन में विवेक लाकर जिनाज्ञा के धारक गुरुओं की ही सेवा करो। जो ऐसे गुरुओं की सेवा, वैयावृत्ति करते हैं उनको विशेष पुण्य लाभ होता है, पुण्य के प्रभाव से सब अमंगल नष्ट हो जाते हैं और मंगलों की माला प्राप्त होती है।

विदलयति कुबोधं बोधयत्यागमार्थं।
सुगति कुगति मार्गौ पुण्य पापे व्यनक्ति।।
अवगमयति कृत्याकृत भेदं गुरुयों।
भव जल निधि पोतस्त बिनानास्ति कश्चित्।।14।।

गुरु की सेवा का फल कहते हैं। हे भव्य जीवों! उन गुरुओं के सिवाय अन्य कोई संसार सागर से पार करने वाले नहीं हैं। गुरु ही नौका के समान पार करने वाले हैं ये गुरु मिथ्याज्ञान का नाश करते हैं और आगम के अर्थ को प्रकाशित करते हैं। गुरु ही पाप, पुण्य और धर्म अधर्म के स्वरूप को प्रकट करते हैं। पुण्य पाप से क्या होता है! पुण्य से शुभ गति-देव व मनुष्यगति में जाने का मार्ग और पाप से दुर्गति-नरक गति और तिर्यंच गति का मार्ग प्राप्त होता है। कृत्य और अकृत्य के भेद को प्रकट करते हैं! ये ही गुरु वैयावृत्ति करने योग्य तथा सेवन करने योग्य हैं। उनकी भाव सहित वन्दना कर पुण्य का सम्पादन करो क्योंकि पुण्य से इच्छित वस्तु की प्राप्ति होती है तथा भक्ति से मलों के गल जाने से महती पुण्य की और मंगल माला की प्राप्ति होती है। जिन जीवों ने भगवान सर्वज्ञ द्वारा कथित जिन वचन व जिनागम को कभी कानों से सुना नहीं है, क्या विशेषता है? समय-शास्त्र जो दया रूपी रस से युक्त है। उस मनुष्य के जन्म को पंडित जन निष्फल ही कहते हैं। यह जिनवाणी, प्राप्त

और अप्राप्त पदार्थों का स्वरूप बतलाती है ऐसी जिनवाणी को जो मन में धारण नहीं करता है उनको मन का प्राप्त होना व कानों का निर्माण होना निष्फल कहा गया है। उनको गुण और दोषों का विचार करना और धारण करना दुर्लभ है। जो नरक रूपी कुआँ लताओं तथा घास से आच्छादित है उसमें गिरने से प्राणी को बचाने में कौन समर्थ होगा? अर्थात् कोई नहीं। जिनको जिनवाणी के पढ़ने से विवेक बुद्धि प्राप्त हुई है उन्हीं को मुक्ति श्री प्राप्त हो सकती है परन्तु जिन्होंने कभी जिनवाणी को सुना ही नहीं उनको मुक्ति श्री की प्राप्ति होना दुर्लभ है, ऐसा पंडित जन कहते हैं।

द्वेषोपि बोधकपचः श्रवणंविधायस्याद्रौहिणेयइव जन्तुरुदार लाभः।
क्काथोऽप्रियोऽपि सरूजां सुखदो रविर्वा संतापकोऽपि जगदंभृतां हिताय।।1।।

यह जिनवाणी भव्य जीवों के हित और अहित को प्रकट कर दिखाती है और दुःखों से निकालकर सुख के स्थान में रखती है। यह सुनने में बहुत ही कटुक लगती है परन्तु जो अपने में हृदयांगम करते हैं उनके लिए अत्यन्त रस से भरी दिखायी देती है। जिस प्रकार ज्वर ग्रस्त रोगी को कडुवा काढ़ा अत्यन्त अप्रिय दिखाई देता है और देखते ही शरीर काँप जाता है किन्तु जब वह मन को कठोर करके उसको पी लेता है जो ज्वर निकल जाने से शांति प्राप्त होती है जिससे भोजन पान भी स्वादिष्ट लगने लगता है।

निराडम्बर सहज प्रभावनाकारी सिद्धचक्र विधान सम्पन्न ग्रन्थ विमोचन - द्वय आचार्य श्री संघ का वात्सल्य मिलन

भारतवर्ष की पावन पुण्य धरा वाग्वर अञ्चल के आध्यात्मिक क्रान्ति का केन्द्र सागवाड़ा की ग.पु. कॉलोनी में प्रवासरत स्वाध्याय तपस्वी वैज्ञानिक श्रमणाचार्य श्री कनकन्दी गुरुवर श्रीसंघ की पावन निश्रा में ज्ञान-विज्ञान-स्वाध्याय-दान-भावना-भक्ति-साहित्य सृजन-गुण-कला-कौशल आदि बहुआयामी उपलब्धियों से यहाँ के आबाल-वृद्ध-वनिता अत्यन्त उत्साहित-आह्लादित व अभिप्रेरित होकर ज्ञान-गुणों में अग्रगामी हो रहे हैं। स्वप्रेरणा आध्यात्मिक भक्ति भावना दान से आयोजित अष्ट दिवसीय सिद्धचक्र महामण्डल विधान सानन्द सम्पन्न हुआ जो कि धर्मक्षेत्र

में व्याप्त विकृतियों व विषमताओं के निरसन का हेतु सहज प्रभावनाकारी निराडम्बर अनुष्ठान बना। विगत दिनों में आचार्य श्री द्वारा देखे गए स्वप्न-शकुन-अंग-स्फुरण के परिणाम स्वरूप कॉलोनी व अञ्चल के जन-गण-मन का शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक विकास होना यहाँ के भाविक जनों में हर्ष व उत्साह का सञ्चार कर नवआयामों को प्राप्त करा रहा है। गुरुदेव ने उक्त विधान के माध्यम से आध्यात्मिक भावों की महत्ता का विशेष बोध कराया। होली पर्व की कविता के माध्यम से भावों के चैन रिएक्शन भाव तरंग, भाव की शक्ति गति, बटर फ्लाइ इफेक्ट आदि आयामों का वैज्ञानिक व धार्मिक दृष्टि से महत्व प्रतिपादित करते हुए शुभभावों से अशुभ को त्यागकर शुद्ध भाव प्राप्ति का सारभूत सोपान बताया। सिद्धचक्र विधान की निराडम्बरता से प्राप्त शिक्षा-प्रेरणा-उत्साह-शान्ति व आनन्द से जन-गण-मन प्रमुदित हुए। आचार्य श्री विभवसागर जी गुरुदेव ससंघ के आगमन से वात्सल्य प्रभावना हुई। विभवसागर जी ने अपने प्रारम्भिक उद्बोधन में आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव के प्रति श्रद्धा व विनय प्रगट करते हुए बताया कि गुरुदेव सृजित कृति ''मिथ्यात्व अकिञ्चित्कर...'' के माध्यम से आचार्य विद्यासागर जी के आगम विपरीत एकान्त मत के खण्डन से उक्त विषय का सत्य-तथ्य आज से प्रायः 27 वर्ष पहिले ज्ञात हुआ जिससे धर्म क्षेत्र में सत्य चेतना का सञ्चार हुआ। विधान के उपलक्ष्य में आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव सृजित कृति 1. ''भाव द्रव्य प्रदूषणः समस्या समाधान'',ग्रंथांक-329 व 2.''परम रहस्य/चरम विकास'', ग्रंथांक 330 का विमोचन हुआ।

अनुमोदक - श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

❖❖❖